भूमिका

आधुनिक युग के व्रज-भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि स्व० श्री बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर के काव्य-ग्रंथों और कविताओं का यह संग्रह हिंदी-पाठकों के सामने रखा जाता है। यद्यपि रत्नाकर जी ने गद्य मे भी बहुत से लेख आदि लिखे थे और ऐसे लेख भी लिखे थे जिनके कारण हिंदी-संसार में आंदोलन सा मच गया था, तो भी इसमे संदेह नही कि रत्नाकर जी कवि ही थे और बहुत ऊँचे दरजे के कवि थे। उनका सारा महत्त्व कवि के नाते ही था और इसी लिए इस संग्रह में उनके सब काव्य और कविताएँ ही रखी गई हैं। आशा है, रत्नाकर जी की कृतियों का यह संग्रह—रत्नाकर जी का यह सर्वस्व—हिंदी-संसार में उचित आदर और सम्मान प्राप्त करेगा।

रत्नाकर जी की सबसे प्राचीन कविता-पुस्तक "हिंडोला" है। यह प्रबंध-काव्य है और पहले पहल संवत् १९५१ में प्रकाशित हुआ था। दो तीन वर्ष बाद रत्नाकर जी ने इसका संशोधन किया था और स्थान स्थान पर इसमें कुछ पाठ-भेद भी किया था। आपकी दूसरी रचना "समालोचनादर्श" है जो अनुवाद है, और नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के प्रथम वर्ष के प्रथम अंक में प्रकाशित हुआ था। इसके उपरांत आपने "हरिश्चंद्र" नाम का एक छोटा काव्य लिखा था जो सबसे पहले काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित "भाषासारसंग्रह" नामक पाठ्य-पुस्तक में छपा था। इस बीच में आपने "कल-काशी" नामक एक काव्य की रचना आरंभ की थी जिसमें काशी का वर्णन था। पर दुख है कि उसे आप समाप्त न कर सके और वह अधूरा ही रह गया। यहाँ तक कि उसके अंतिम छंद की चौथी पंक्ति भी नहीं लिखी गई। आप समय समय पर "उद्धव-शतक" की भी रचना करते चलते थे और उसके बहुत से छंद आपने रच भी डाले थे, पर उनकी संख्या सौ से कुछ कम ही थी कि उसकी कापी आपके यहाँ से चोरी हो गई। उसमें के बहुत से छंद तो आपने अपनी स्मृति की सहायता से ही फिर से लिख डाले और शेष छंदों की पूर्ति फिर से नये सिरे से की। यह ग्रंथ प्रयाग के रसिक-मंडल-द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके उपरांत श्रीमती महारानी अयोध्या की प्रेरणा से आपने अपने सुप्रसिद्ध काव्य "गंगावतरण" की रचना आरंभ की। यह गंगावतरण पूरा हो जाने पर प्रयाग के इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ और इसके लिए आपको प्रयाग की हिंदुस्तानी एकेडेमी से ५००) पुरस्कार मिला था।

रत्नाकर जी का विचार था कि एक रत्नाष्टक लिखा जाय जिसमें १४ अष्टक हों और ८-८ कविताओं के देवाष्टक और वीराष्टक भी लिखे जायँ। पर इन अष्टकों का आप बहुत ही थोड़ा काम कर सके थे और इस संबंध की आपकी इच्छा काल के कुटिल प्रहार के कारण पूरी न हो सकी। प्रत्येक अष्टक के जितने छंद आप लिख सके थे, उतने ही छंद उन्हीं अष्टक-नामों के शीर्षक में इस संग्रह में दिये गये हैं। अंत में आपके फुटकर छंदों का संग्रह है। जिन रचनाओं का काल ज्ञात हो सका, उनके साथ वह काल दे दिया गया है, शेष का

अज्ञात होने के कारण छोड़ दिया गया है। रत्नाकर जी के यहाँ इधर-उधर बिखरी हुई जो सामग्री प्राप्त हो सकी, उसी के आधार पर यह फुटकर संग्रह प्रस्तुत किया गया है। संभव है कि इनके अतिरिक्त और भी बहुत से छंद आदि हों जो या तो लिखे न गये हों और या हमें न मिले हों। जिन सज्जनों के पास ऐसे छंद आदि हों जो इस संग्रह में न आये हों, वे यदि कृपापूर्वक वे छंद आदि हमें लिख भेजें तो इस सग्रह के आगामी संस्करण में उनका समुचित सदुपयोग किया जायगा।

रत्नाकर जी की जो कृतियाँ इस संग्रह में संगृहीत हैं, इनके अतिरिक्त उनकी और दो बहुत बड़ी और सबसे अधिक महत्त्व की कृतियाँ हैं। इनमें से पहली कृति "बिहारी-रत्नाकर" है जो बिहारी-सतसई की सबसे बड़ी और सबसे उत्कृष्ट तथा बहुमूल्य टीका है। पर वह कृति इस संग्रह में नहीं ली गई है और इसका मुख्य कारण यही है कि वह टीका है—रत्नाकर जी की स्वतंत्र या मौलिक कृति नहीं। दूसरी और इससे भी बड़ी तथा चिरस्थायी कृति "सूर-सुषमा" है। रत्नाकर जी ने बहुत दिनों तक बहुत अधिक परिश्रम करके और अपने पास का बहुत सा धन व्यय करके सूर-सागर का संग्रह और संपादन किया था। वह कार्य आप पूरा नहीं कर सके थे और उसका केवल तीन चतुर्थांश करके ही स्वर्गवासी हो गये थे। जितना अंश आपने ठीक किया था, उसमें भी अभी कुछ काम बाकी था। इस संबंध में उन्होंने जो कुछ काम किया था और जो सामग्री आदि एकत्र की थी, वह सब उनके सुयोग्य पुत्र श्रीयुक्त राधाकृष्णदास जी ने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को समर्पित कर दी और अब सभा उसे ठीक करके उसके प्रकाशन की व्यवस्था कर रही है। आशा है, बहुत शीघ्र इसका प्रकाशन आरंभ हो जायगा और "रत्नाकर" का यह सबसे बड़ा रत्न हिंदी संसार को अपने प्रकाश से चकित और विस्मित कर देगा।

रत्नाकर जी के इस प्रथम वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर उनके ४० वर्ष पुराने मित्र की यह श्रद्धांजलि उनकी स्वर्गीय आत्मा के सुख और शांति के लिए परम आदर और स्नेहपूर्वक समर्पित है। आशा है, इससे हिंदी-प्रेमियों का यथेष्ट मनोरंजन और उपकार होगा और अमर रत्नाकर की कीर्ति सदा स्थायी तथा अक्षुण्ण बनी रहेगी। एवमस्तु।

काशी
१ जून १९३३

श्यामसुंदरदास

प्रस्तावना

विगत वर्ष इन्हीं दिनो जब "रत्नाकर" जी के स्वास्थ्य-समाचार की प्रतीक्षा करते हुए हरिद्वार से उनके स्वर्गवासी होने का तार मिला, तब मर्माहत होकर भी एक क्षणिक कल्पना के प्रकाश में हमने देखा कि हमारे कविमित्र के निधन से हरिद्वार का रूढ़िबंधन छूट गया है और गंगावतरण की पंक्ति—"करि हरिद्वार कौ अति सुगम द्वार अगम हरिलोक कौ" सार्थक हो गई है। रत्नाकर में हरि का निवास कहा जाता है। तो उनके द्वार पर जगन्नाथदास की यह सद्गति स्वाभाविक ही हुई। "भाव कुभाव अनख आलसहू" नाम लेते ही जब दिशाएँ मंगलमयी हो जाती हैं, तब रत्नाकर जी को यह सिद्धि सुलभ ही समझनी चाहिए। नास्तिकता और नवीनता के इस अग्रगामी युग मे यह कवि जिस आशा और विश्वास के स[illegible] पुरानी ही ताने छेड़ने में लगा रहा, उसका प्रतिफल इसे अवश्य ही [illegible]लेगा। इसने हमें पहले के सुने, पर भूलते हुए, गान फिर से गाकर सुनाए, पिछली याद दिलायी और हमारे विस्मृत स्वर का संधान किया। इसका यह पुरस्कार कम नहीं है। यह काशीवासी रत्नाकर पुरातन व्रजजीवन की स्वच्छ भावनाधारा मे स्नात, एकाधार में भाषा और काव्य-शास्त्र का पंडित, कलाविद् और भक्त हो गया है। अपने कतिपय श्रेष्ठ सहयोगियों और समकालीनो मे, जो व्रजभाषा-साहित्य का शृंगार कर रहे थे, रत्नाकर की विशिष्ट मर्यादा माननी पड़ेगी। भारतेंदु हरिश्चंद्र में अधिक प्रतिभा थी; किंतु उन्हें अवसर न मिला। कविरत्न सत्यनारायण अधिक ऊँचे दरजे के भावुक और गायक थे; किंतु उनका न तो इतना अध्ययन था और न उनमे इतनी कला-कुशलता थी। श्रीधर पाठक व्रजभाषा से अधिक खड़ी बोली के ही आचार्य हुए। वर्तमान और जीवित कवियों में कोई ऐसा नहीं जो आजीवन इनकी धाक न मानता रहा हो। विक्रम की बीसवीं शताब्दी अब समाप्त हो रही है। अतः जब आगामी शताब्दी के आरंभ मे पुराने कवियों और उनकी कृतियों की जाँच-पड़ताल की जायगी, तब रत्नाकर को इस क्षेत्र में शीर्ष स्थान देते हुए, आशा है, किसी को कुछ भी असमंजस न होगी।

परंतु यह शीर्ष स्थान नवीन प्रासाद-निर्माण का पुरस्कार नहीं है, केवल पुरानी पच्चीकारी का पारिश्रमिक है। पुरातन और नूतन का यह अंतर समझ लेना ही रत्नाकर का यथार्थ मूल्य आँकना होगा।

व्रजभाषा

भाषा तो भाषा ही है, चाहे वह व्रज हो या खड़ी बोली। कवि की अभिव्यक्ति के लिए हर एक भाषा उपयुक्त हो सकती है। वह तो साधन मात्र है, साध्य नहीं। इस प्रकार की विवेचना वे ही कर सकते हैं, जो यह परिचय नहीं रखते कि भाषाओं की भी आत्मा होती है। अथवा उनके जीवन की भी एक गति होती है। प्रत्येक भाषा की प्रगति का एक

क्रम होता है जो सूक्ष्म दृष्टि से देखा जा सकता है। भाषा केवल हमारे भावों तथा विचारों की वाहन नहीं है जो ठोंक-पीट कर सब समय काम में लाई जा सके। उसका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व और वातावरण भी होता है। हमारी ही तरह उसकी भी शक्ति, इच्छा और संस्कार होते हैं। समय के परिवर्तनशील पटल पर उसकी भी अनेक प्रकार की आकृतियां बनती रहती हैं। उन्हें पहचानना कविजनों के लिए उपयोगी ही नहीं, आवश्यक भी है। जो व्रजभाषा भक्तों की भावनाओं से भर कर रीति-कवियों की साज-सज्जा से चटकीली हो रही है, उसके साथ आलाप करना या तो किसी बड़े कलाभिज्ञ का ही काम है और या किसी निपट अनाड़ी का ही। जो भाषा अपनी संपूर्ण प्रौढ़ प्रतिभा और देशव्यापी प्रभाव के रहते हुए भी अपनी ही परिचारिका खड़ी बोली को अपना सौभाग्य सौंप कर विवश पड़ी हो, उस मानिनी को सांत्वना देने के लिए उसके किसी अनन्य प्रेमी की ही आवश्यकता होगी। व्रज की वह सभ्य सुंदरी जब ग्रामीण और अनुपयोगी कही जा रही हो, तब उसके रोष-दीप्त मुख के अश्रु-मुक्ताओं को सँभालने के लिए बहुत बड़ी सहानुभूति आपेक्षित है।

जो लोग भाषाओं की यह परिवर्तित परिस्थिति नहीं समझते, वे सच्चे अर्थ मे कविता-रसिक नहीं कहे जा सकते। उनके लिए तो सभी भाषाएँ सभी वेषों और सब कामों में लगाई जा सकती है। परंतु वास्तव में भाषा के प्रति यह बहुत ही निर्दय व्यवहार है। बहुत दिन नही हुए जब हिंदी की एक पुस्तक मे पढ़ा था कि—व्रजभाषा और खड़ी बोली मे कोई अंतर नहीं है। दोनों ही हिंदी हैं। दोनों को मिला-जुला कर व्यवहार करना ही हिंदी की सच्ची सेवा है। इनका पृथक् अस्तित्व न मानना ही इनका झगड़ा दूर करना है।" आदि। इसके लेखक महोदय अपने को व्रजभाषा का समर्थक और उपकारी मानते हैं और उन्होंने अपनी कविता-पुस्तक की भूमिका में ये बातें लिखी हैं। उनकी पद्य रचनाएँ पढ़ने पर विदित हुआ कि उन्होंने खिचड़ी भाषा लिखकर अपनी भूमिका को चरितार्थ भी किया है। विषय भी उन्होंने कुछ नए और कुछ पुराने चुनकर अपना सिद्धांत सोलह आने सार्थक करने का प्रयास किया है। पर हमारे देखने मे उनको यह सारी चेष्टा व्यर्थ हो गई है। उनकी कविता में न तो व्रजभाषा का उन्नत शब्द-सौंदर्य है और न उसकी चिर दिन की अभ्यस्त भंगिमाएँ। उनकी खड़ी बोली भी मानों शिथिल होकर लेटे लेटे चलना चाहती हो। जब रचना में रस ही नहीं आया, तब उससे क्या लाभ ?

हम यह नहीं कहते कि व्रजभाषा का व्यवहार नए विषयों के वर्णन में किया ही नहीं जा सकता; परंतु इसके लिए प्रचुर प्रतिभा चाहिए। भारतेंदु हरिश्चंद्र को छोड़कर व्रजभाषा के और किसी उपासक को इस युग में वह प्रतिभा कदाचित् ही मिली हो। अँगरेजी शिक्षा के प्रचार और अँगरेजी कविता के अध्ययन-अभ्यास से खड़ी बोली चैतन्य गति से हमारे हृदय चुराकर चल रही है। पर व्रजभाषा को वह सौभाग्य न मिल सका। यद्यपि नवलता ही जगत के आह्लाद का हेतु है, परंतु पुरानी कलाएँ भी चिरंतन आनंद की विषय बनी रहती हैं। यदि जनता की परिवर्तित रुचि के कारण व्रजभाषा समय का साथ देने में असमर्थ हो अथवा यदि कोई ऐसा कवि न हो जो अपनी अपूर्व

क्षमता से उसका नवीन रूप-विन्यास करके उसे आधुनिक जीवन की सहचरी बना सके, तो भी उसके लिए अपनी पूर्व-संचित कांति सुरक्षित रखने में कोई बाधा नहीं है। यदि व्रजभाषा केवल मध्यकालीन विषयों और भावों की व्यंजना के लिए ही उपयुक्त मान ली जाय तो भी वह स्थायी और स्मरणीय होगी। यदि बोलचाल की भाषा का पद ग्रहण करके खड़ी बोली जन साधारण को आकर्षित कर रही है तो शताब्दियों तक देश की आत्मा की रक्षा और उन्नति करनेवाली व्रजभाषा अपनी वर्तमान स्थिरता में भी सम्राज्ञी के पद का गौरव बढ़ा रही है।

तात्पर्य यह कि यदि भाषा के स्वभाव को न समझकर बेसुरी तान छेड़नेवालों को छोड़ दिया जाय तो भी साहित्य के पंडितों में इस समय व्रजभाषा विषयक दो विशेष विचार फैल रहे हैं। एक तो यह कि व्रजभाषा अब भी नवीन जीवन के उपयुक्त बनाई जा सकती है और नव्य संदेश सुना सकती है। दूसरा यह कि वह अपनी विगत शोभा को ही सँवारकर अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकती है। उसे नवीन विषयों की ओर झुकाने में कोई लाभ नहीं है। यह भी वैसा ही मतभेद है—जैसा प्राचीन अजंत की चित्र-विद्या के संबंध में है। एक ओर तो बंगाल के कलाविद् उसे नवीन उपकरणों में प्रयुक्त करते हैं और दूसरी ओर कुछ लोग इस मिश्रण का विरोध करते हैं। वस्तुतः यह भाषा के स्थिर सौंदर्य और चलित सौंदर्य का विवाद है। बहुतों की यह ऐषणा होती है कि हमारी प्राचीन परिचिता हमारे दैनिक जीवन में सदैव साथ रहे; पर बहुतों को उसे यह कष्ट देना इष्ट नहीं होता। वे उसकी केवल स्मृति ही रक्षित रखना चाहते हैं। इस उदाहरण पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि व्रजभाषा हमारी प्राचीन परिचिता ही नहीं है; वह तो आज भी व्रज में बोली-चाली जाती है। परन्तु यहाँ हम साहित्यिक व्रजभाषा की बात कह रहे हैं जो शताब्दियों की पुरानी है और खड़ी बोली के नवीन उत्थान की तुलना में प्राचीन ही कही जायगी। हम उस व्रजभाषा की चर्चा कर रहे हैं जो सारे उत्तर भारत पर एक-छत्र शासन कर चुकी है और देश के ओर-छोर तक अपनी कीर्ति-कौमुदी का प्रसार कर चुकी है। यहाँ व्रज की प्रादेशिक बोली से हमारा अभिप्राय नहीं है। अस्तु इन द्विविध मतों में से रत्नाकर जी दूसरे मत के अवलंबी थे। यद्यपि आरम्भिक जीवन में उन्होंने अँगरेज कवि पोप के "समालोचनादर्श" को व्रजभाषा-पद्य मे अवतरित करने की चेष्टा की थी, किंतु अपनी शेष रचनाओं में उन्होंने ठीक ठीक व्रज की काव्य-कला का ही अनुसरण किया था।

काशी और अयोध्या में रहकर व्रज की काव्य-कला का अनुसरण बिना गंभीर अध्ययन के साध्य नहीं है। रत्नाकर जी का अध्ययन बहुत विस्तृत और बहु-वर्ष-व्यापक था। इनके पिता बा० पुरुषोत्तमदास जी फारसी भाषा के विद्वान् थे और उनके यहां फारसी तथा हिंदी कवियों का जमघट लगा रहता था। बाबू हरिश्चंद्र उनके मित्रों में से थे। बालक रत्नाकर में कविता के संस्कार इसी सत्संग से उत्पन्न हुए। एक धनिक परिवार मे जन्म लेने के कारण उनके अध्ययन में सैकड़ों बाधाएं आ सकती थीं और इसी लिए बिना विक्षेप बी० ए० तक पहुँच जाना और पास कर लेना इनके लिए एक असाधारण घटना प्रतीत होती

भाषा-शास्त्री

है और इसे हम उनके अध्ययन की उत्कट अभिरुचि ही कह सकते हैं। यद्यपि इन्हें व्रजभाषा के अनुशीलन का सुयोग कुछ दिनों बाद प्राप्त हुआ था, तथापि रत्नाकर-ग्रंथावली के अध्ययन से प्रकट होता है कि व्रजभाषा पर इनका अधिकार व्यापक और निर्विकल्प था। आरंभ की रचनाओं मे भी व्रजभाषा का एक सुष्ठु रूप है; किंतु प्रौढ़ कृतियों में, विशेष कर उद्धव-शतक में, रत्नाकर का भाषा-पांडित्य प्रखर रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। संस्कृत की पदावली को इतने अधिकार के साथ व्रज की बोली मे गूँथ देना मामूली काम नहीं है। यही नहीं, रत्नाकर जी ने अपनी काशी की बोली से भी शब्द ले लेकर व्रजभाषा के साँचे मे ढाल दिए हैं जो एक अतिशय दुष्कर कार्य है। यदि रत्नाकर जैसे मनस्वी व्यक्ति के सिवा किसी दूसरे को यह कार्य करना पड़ता तो वह अपनी प्रांतीय भाषा को व्रज की टकसाली पदावली में मिलाते समय सौ बार आगा-पीछा करता। बहुतो ने इस मिश्रण कार्य मे विफल होकर भाषा की निजता ही नष्ट कर दी है। पर रत्नाकर 'अजगुतहाई', 'गमकावत', 'बगीची', 'धरना', 'पराना' आदि अविरल देशी प्रयोग करते चलते हैं और कहीं वे प्रयोग अस्वाभाविक नहीं जान पड़ते। उनकी भाषा की नाड़ी की यह पहचान बहुतों को नहीं होती। कहीं कहीं 'प्रत्युत', 'निर्धारित' आदि अकाव्योपयोगी शब्दों के शैथिल्य और 'स्वामि-प्रसेद', 'पात-थल', 'वद-उम्मस' आदि दुरूह पद-जालों के रहते हुए भी उनकी भाषा क्लिष्ट और अग्राह्य नहीं हुई। फुटकर पदों और कृष्णकाव्य मे वह शुद्ध व्रज और गंगावतरण मे संस्कृत मिश्रित होती हुई भी किसी न किसी मार्मिक प्रयोग की शक्ति से व्रज की माधुरी से पूरित हो गई है। दोनो का एक एक उदाहरण लीजिए—

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्है
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुँह आवत सो विबस बयात हौ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं ही तुम आपही सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ
ब्रह्म ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥

(शुद्ध व्रज)

स्यामा सुघर अनूप रूप गुन सील सजोली।
मंडित मृदु मुखचंद मंद मुसक्यानि लजीली॥
काम बाम अभिराम सहस सोभा सुभ धारिनि।
साजे सकल सिँगार दिव्य हेरति हिय हारिनि॥

(संस्कृत-मिश्रित)

फारसी के अच्छे पंडित होते हुए भी रत्नाकर जी ने बड़े संयम से काम लिया है; और न तो कहीं कठिन या अप्रचलित फारसी शब्दों का प्रयोग किया है और न कहीं नैसर्गिकता का तिरस्कार ही किया है। गोपियाँ कृष्ण के लिए दो एक बार "सिरताज" का प्रयोग करती हैं। पर वह उपयुक्त और व्यवहार-प्राप्त है, कठोर या खटकनेवाला नहीं।

पिछले दिनों "सूरसागर" का संपादन करते हुए रत्नाकर जी ने पद-प्रयोगों और विशेषतः विभक्ति-चिह्नों के संबंध में जो नियम बनाए थे, वे उनके व्रजभाषा-आधिपत्य के स्पष्टतम सूचक हैं। भाषा पर इस प्रकार अनुशासन करने का अधिकार बहुत बड़े वैयाकरण ही प्राप्त कर सकते हैं। व्याकरण के साथ रत्नाकर जी का संबंध बहुत ही साधारण था, तथापि उनकी वे विधियाँ बहुत अंशों में संभवतः सदैव मान्य ही समझी जायँगी; और यदि किसी कारण से मान्य न भी समझी जायँ, तो भी उनसे रत्नाकर जी की वह अधिकार-भावना तो प्रकट ही होती रहेगी जिसके बल पर उन्होंने वे विधियाँ बनाई हैं।

छंदों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकर जी की अधिकार-पूर्ण कलम स्वीकार की गई है—विशेषतः इनके कवित्त बेजोड़ हुए हैं। हिंदी

कलाविद्

और अँगरेजी के कवियों की भ्रांत तुलनाएं अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलती हैं; परंतु भाषा-सौंदर्य, संगीत और छंद-संघटन में—कविता की कला पक्ष की सुघरता में—यदि रत्नाकर की तुलना अँगरेज कवि टेनीसन से की जाय तो बहुत अंशों में उपयुक्त होगी। टेनीसन की कारीगरी भी रत्नाकर की ही भांति विशेष पुष्ट और संगीत से अनुमोदित हुई है। इन दोनों कवियों की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यही भाषा-चमत्कार और छंदों की रमणीयता स्थापित करने में है। चाहे इन दोनों में भावना की मौलिकता अधिक व्यापक और उदात्त न हो, तो भी रचना-चातुरी में ये दोनों ही पारंगत हुए हैं। आधुनिक खड़ी बोली में भी कवित्त छंद बने हैं और बन रहे हैं, परंतु उन्हें रत्नाकर जी के कवित्तों से मिलाते ही दोनों का भेद स्पष्ट हो जाता है। नवीन हिंदी के कवियों को "रत्नाकर" की यह कला वर्षों सीखने पर भी आ सकेगी या नहीं, इसमें संदेह ही है। खड़ी बोली में अनूप के कवित्त कुछ अधिक प्रौढ़ हैं, पर उनके एक सुंदर कवित्त से रत्नाकर के किसी छंद को मिलाकर देखिए—

> आदिम बसंत का प्रभात काल सुंदर था
> आशा की उषा से भूरि भासित गगन था।
> दिव्य रमणीयता से भासमान रोदसी में
> स्वच्छ समालोकित दिगंगना सदन था॥
> उच्छल तरंगों से तरंगित पयोनिधि था
> सारा व्योम-मंडल समुज्ज्वल अघन था।
> आई तुम दाहिने अमृत बाएं कालकूट
> आगे था मदन पीछे त्रिविध पवन था॥
>
> (अनूप)

> कान्ह हूँ सौं आन ही विधान करिवै कौं ब्रह्म
> मधुपुरियानि की चपल कँखियाँ चहैं।
> कहै रतनाकर हँसैं कै कहौ रोवैं अब
> गगन अथाह थाह लेन मखियाँ चहैं॥

अगुनै सगुन फंद बंद निरवारन कौं
धारन कौं न्याय की नुकीली नखियाँ चहै ।
मोर-पँखियाँ कौ मौरवारौ चारु चाहन कौं
ऊधौ अँखियाँ चहैं न मोर-पखियाँ चहैं ॥
(रत्नाकर)

प्रथम कवित्त में वह असाधारण दृढ़ता है जो खड़ी बोली के कम कवित्तो में मिलेगी; पर उस अंतरंग गहन संगीत की ध्वनि नहीं जो दूसरे कवित्त से पद पद पर प्रकट हो रही है, यह केवल शब्द-सौंदर्य की बात नहीं है। छंद के घटन-जन्य सौंदर्य की पक्ति पंक्ति की, एक से दूसरी की सन्निधि की, और उस सन्निधि मे सन्निहित संगीन की बात है। यहां रत्नाकर की व्रजभाषा और नवीन खड़ी बोली का भेद बहुत कुछ प्रकट हो जाता है। यही उस पुरानी पच्चीकारी की बात है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। नवीन प्रासाद-निर्माण के कार्य मे और इस मीनाकारी में जो अंतर है, वह यहाँ थोड़ा बहुत स्पष्ट हो जाता है। खड़ीबोली के कवित्त में कलम पकड़ते ही लिख चलने का सुभीता है; पर व्रजभाषा के कवित्त के लिए रियाज और तैयारी चाहिए। इसी कारण इन दिनों खड़ी बोली मे भावना का अधिक सत्य रूप और व्रज मे अधिक आकर्षक रूप उतरने की आशा की जाती है।

रत्नाकर जी के छदों की चर्चा करते हुए हमने उनकी जिस रचना-चातुरी की प्रशंसा की, वह काव्य का चरम लाभ नहीं है। वह तो कवियो की वह श्रम-लभ्य कला है जिसकी सहायता से वे अद्वितीय चमत्कार की सृष्टि करके सुख-सचार करते हैं। बहुधा प्रथम श्रेणी के जगद्विख्यात कवियों मे यह कला कम देखी जाती है और मध्यम श्रेणी के पारखी कवि उन अवसरों पर इसका अधिक प्रयोग करते हैं जब उन्हे वास्तविक काव्य-भावना के अभाव की पूर्त्ति करनी होती है। इस अनमोल उपाय से कविगण अपना उत्कर्ष साधन करते हैं। अँगरेजी कवियो मे टेनीसन ने इसी की सहायता से अपनी मर्यादा भाषा के श्रेष्ठ कवियों के समकक्ष स्थापित की थी। उसमे चॉसर और कोलरिज की सी स्वच्छ रचना की मौलिक शक्ति नही; स्पेंसर का सा बहुत भारी और व्यापक विषय का ग्रहण-सामर्थ्य नही; शेक्सपियर की सहज विश्वजनीनता नहीं; न वह उत्थान, न वह विस्तार, न वह सर्व-गुण-संपन्नता है; मिल्टन की गंभीर स्वर भी उसे नहीं मिला; न वर्ड्सवर्थ की आध्यात्मिक प्रकृति-प्रियता; न शैली की आधिदैविक भावना; न कीट्स का स्वच्छंद सरस प्रवाह। फिर भी टेनीसन काव्य-कला के आश्चर्य-प्रदर्शन के द्वारा शेक्सपियर को छोड़कर शेष सबके समकक्ष आसन पाने का अधिकारी हुआ है। हम देखते हैं कि रत्नाकर मे भी काव्यकला का वही प्रदर्शन, सर्वत्र नहीं तो कम से कम कवित्तों मे अवश्य, दृष्टिगोचर है। इनकी अधिकांश भावना भक्तो से ली हुई हैं, परंतु भक्तों में इनकी तरह कविता-रीति नहीं थी। वे तो भजनानंदी ही अधिक थे। उनके उपरांत जो रीति-कवि हुए, उनमें अनुभूति की कमी और भाषा-शृंगार अधिक हो गया। इस कवि-परंपरा में पद्माकर अन्यतम समझे जाते हैं और रत्नाकर जी इस विषय में अपने को पद्माकर से प्रभावित मानते थे। तथापि "उद्धवशतक" मे उनकी कविता पद्माकर से अधिक ओजपूर्ण और भक्ति-भावापन्न है और "गंगावतरण"

में प्रबंध का विचार पद्माकर के "रामरसायन" से अधिक प्रौढ़ है। भक्तों की अपेक्षा रत्नाकर कम रसमय किंतु अधिक सूक्तिप्रिय हैं—रीति-कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान्, अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं। हम कह सकते हैं कि भक्तों और शृंगारियों के बीच की कड़ी रत्नाकर के रूप में प्रकट हुई थी।

प्रबंध-कविता

यह नहीं कहा जा सकता कि "गंगावतरण" का प्रबंध निर्माण करते हुए रत्नाकर के सामने कौन सा आदर्श था। रामचरितमानस का प्रबंध अधिक बलशाली और दुरतिगम्य है। बालकांड और उत्तरकांड के आदि तथा अंत में तुलसीदास ने अपने काव्य पर से देश और काल के बंधन हटा देने की चेष्टा की है। पात्र का बंधन भी उन्होंने दूर किया है। परंतु इस विषय में उन्हें सफलता केवल राम के संबंध मे हुई है। मानस मे राम का वास्तविक रूप अरूप ही है। शेष पात्रों को तुलसीदास ने रूप-रेखा दी है और उनमे गुणों का आरोप भी किया है। केवल राम मे वह बात नहीं है। कवि ने आकाश-पाताल एक कर दिए हैं; क्योंकि हनूमान पाताल में पैठकर महिरावण का वध करते हैं और आकाश से उड़कर लंका-पार जाते हैं—पहाड़ उठा लाते हैं। राम के अवतार के कई प्रसंग गिनाकर काल-संकलन का निर्वाह करने की चेष्टा की गई है। तुलसी के इस महत् अनुष्ठान से प्रायः सभी परवर्ती कवि प्रभावित हुए हैं, यद्यपि यह प्रभाव परिस्थिति के अनुसार भला और बुरा दोनों पड़ा है। "गंगावतरण" को देखने से उसमे भी मानस की छाया मिलेगी। सगर-सुतों का पाताल-प्रवेश, गंगा का स्वर्ग से आगमन—आकाश-पाताल की खबर यहाँ भी लाई गई है। समय-संकलन में रत्नाकर जी अवश्य चूक गए हैं। सगर-सुतों के भस्म होने के कई पीढ़ियों बाद उनके मोक्ष का जो कार्य भगीरथ ने किया, वह उतना प्रभाव नहीं डालता। यदि "गंगावतरण" का मुख्य आशय यही मोक्ष माना जाय तो रत्नाकर जी को मोक्ष-व्यापार के प्रति अधिक दत्तचित्त होने की आवश्यकता थी। आरंभ में यदि इतना विलंब हो गया था तो कार्य की गुरुता और विफल प्रयासों का अधिक महत्त्वपूर्ण वर्णन अपेक्षित था। रत्नाकर जी काव्य की नियताप्ति के साथ अधिक तन्निष्ठ क्यो नही हुए। संभवतः "मानस" की छाया पड़ी है। परंतु मानस में नियताप्ति की चेष्टा का अभाव स्वाभाविक है, क्योंकि उसमे नियत (सीमा) कुछ है ही नहीं। उसमें तो उसका सब ओर से अतिक्रमण ही अभीष्ट जान पड़ता है। गंगावतरण के कवि यहाँ उसका अनुकरण करते समय यदि अधिक सावधान रहते तो अच्छा होता। रामचरितमानस भाषा-साहित्य के कानन का वह विशाल वट है जिसकी शाखा-प्रशाखाएं नितांत अनिर्दिष्ट दिशाओं में फैलकर छाया-दान करती हैं। इस अक्षयवट की यह स्वाभाविकता है कि जहाँ तहाँ इसके बरोह क्षेपकों, अंतर्कथाओं और प्रसंग-विपर्यय के रूपों मे डालों से निकलकर भूमि मे गड़े देख पड़ते हैं। यदि ये बरोह दूसरे पेड़ों में हों तो मानों ऐसा जान पड़ेगा कि वे वृक्ष उखड़ गए हैं और उनको टिकाने के लिए उनके नीचे टेक लगे हुए हैं, रामचरितमानस मे जो बात परम स्वाभाविक जान पड़ती है, वही लघुतर रचनाओं में किमाकार अथवा असंभव सी हो जाती। गंगावतरण की कथा भी रामचरित की ही भाँति पौराणिक होने के कारण अलौकिक चित्रों

से युक्त है। दोनों की कथा में ही इतना आकर्षण है कि घटना-अनुक्रम और सूक्ष्म कला का प्रदर्शन उतना आवश्यक नहीं रह जाता। रत्नाकर जी ने गंगा के अवतार की जो विशद, ओजपूर्ण और रहस्यमयी वर्णना की है, वह पौराणिक काव्य के उपयुक्त ही हुई है। पर यदि आरंभ के सर्गों को संक्षिप्त करके उत्तर सर्गों को कुछ विस्तृत कर दिया जाता तो यह प्रबंध-काव्य और भी अधिक उत्कृष्ट श्रेणी का बन जाता। फिर भी अपने प्रस्तुत रूप मे भी मध्य के कतिपय सर्ग स्थायी सौंदर्य से समन्वित हुए हैं।

यदि "शृंगार लहरी" और "उद्धवशतक" को मिला दिया जाय तो कृष्णकाव्य की एक संक्षिप्त, पर अच्छी कथा बन सकती है। इनमें "शृंगार-लहरी" यद्यपि कुछ परवर्ती रचना है, तो भी "उद्धवशतक" उससे अधिक प्रौढ़ और मर्मस्पर्शी हुआ है। यही शतक रत्नाकर जी की सर्वश्रेष्ठ कृति कही जा सकती है। इसका संगीत हमारी भावनाओं पर अधिकार करने में समर्थ है।

"उद्धवशतक" की श्रेष्ठता

इसका पाठ करते समय भावो की मौलिकता और उक्तियों की नवीनता का अपूर्व आनंद आता है और सूर के पद स्मरण हो आते हैं। यह कोई साधारण विशेषता नहीं है, वरन् इसे रत्नाकर जी की सबसे बड़ी विशेषता समझनी चाहिए। ऊपर कह चुके हैं कि भक्तों मे भावुकता अधिक है और रत्नाकर जी में सूक्तिप्रियता अधिक। परंतु "उद्धवशतक" की सूक्तियाँ भी एक अंतर्निहित रस मे डूबी हुई जान पड़ती हैं। इसका अर्थ यही है कि इन छंदों मे रत्नाकर जी का कवि-हृदय कारीगरी की खोज करता हुआ भी अपना वह व्यापार भूल गया है और मानों शिथिल होकर उन्हीं भावनाओ में विश्राम चाहने लगा है। रत्नाकर जी की इससे अधिक तन्मयी काव्य-साधना दूसरी नहीं मिलती। भवभूति की प्रसिद्ध पंक्ति—"एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्" भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न भिन्न मात्रा मे मान्य होगी। महा कवि रवींद्रनाथ ने एक स्थान पर कहा है "हमारे सुख-शृंगार के संपूर्ण साज मे दुख की एक प्रच्छन्न छाया मिली हुई है।" रत्नाकर जी भी शृंगार-प्रिय व्यक्ति थे; उन्होंने अधिकांश शृंगारी कविता ही लिखी है। उनके जीवन-व्यापी शृंगार मे छिपी हुई दुख की छाया ही मानो "उद्धवशतक" का केंद्र पाकर साकार हो गई है। सच ही है—"हमारी श्रेष्ठतम कविता वही है जो करुणतम कथा कहे।"

प्रकृति-वर्णन के कुछ अच्छे स्थल "हिंडोला", "हरिश्चंद्र काव्य" और "गंगावतरण" मे आए हैं। जिनमे स्वर्ग से उतरकर गंगा का पृथ्वी पर आना सबसे अधिक प्रभावपूर्ण और चमत्कारी है। तो भी वह वास्तविक नहीं। यथार्थ और शुद्ध प्राकृतिक वर्णन का संपूर्ण व्रजभाषा काव्य मे प्रायः अभाव ही है। उसकी तो वहाँ परिपाटी ही नही चल पाई। तथापि गंगावतरण मे गंगा के हिमालय से निकलकर समतल की ओर बढ़ने के ये दृश्य—

कहुँ काउ गह्वर गुहा माहिँ घहरति घुसि घूमति।
प्रबल वेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति॥
कढ़ति फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति।
मानहु उड़ति सुरंग गूढ़ गिरि-सृंगनि चूरति॥
... ...

हरिन चौकड़ी भूलि दरिनि दौरत कदराए।
तरफरात बहुसृंग सृंग फाड़िनि अरुझाए॥
गहत प्लवंग उतंग सृंग कूदंत किलकारत।
उड़ि विहंग बहु रंग भयाकुल गगन गुहारत॥

... ...

गुफा फारि फहराइ चलत फैलत बर वारी।
मानहु दुख-द्रुम-दलन-काज विधि रचत कुठारी॥
गंगोत्तरि तैं उतरि तरल घाटी मैं आई।
गिरि-सिर तैं चलि चपल चंद्रिका मनु छिति छाई॥

चाहे कुछ लोगों को भाषा की अतिरंजना के कारण यथार्थ न जान पड़ें, किंतु फिर भी बहुत कुछ स्वाभाविक हैं और उत्प्रेक्षाएँ भी प्रायः सर्वत्र चित्रोपम हैं। व्रजभाषा की उसी प्रसिद्ध—"कहूं.. .. कहूं", "कोउ...कोउ" द्वारा गिनती गिनानेवाली प्रथा के अनुरूप भी कुछ पंक्तियाँ हैं। यथा—

कोउ दूरहिं तैं दबकि भूरि जल पूर निहारत।
कोउ गहि बाँहि उमाहि बढ़त बालक कौं बारत॥

हमने गणना करके देखा तो पृष्ठ २८७ मे ७,२८८ मे १० और २८९ मे ६ 'कोउ' आए हैं। इसे व्रजभाषा का जन्मसिद्ध अधिकार समझना चाहिए। "हिंडोला" में साज-सज्जा और झूले का वर्णन और "हरिश्चंद्र काव्य" मे मरघट-वर्णन भी अच्छे हैं, परंतु परंपरा उनमे भी टूट नहीं सकी है।

चहुँ दिसि तै घन घोरि घेरि नभ मंडल छाए।
घूमत झूमत झुकत औनि अतिसय नियराए॥
दामिनि दमकि दिखाति, दुरति पुनि दौरति लहरैं।
छुटि छबीली छटा छोर छिन छिन छिति छहरैं॥
मानहुँ सचि सिंगार हास के तार सुहाए।
धूप छाँह के बीनि वितान अतन तनवाए॥
कहुँ तिनकैं बिच लसति सुभग बगपाँति सुहाई।
मुकता सर की मनौ सेत झालर लटकाई॥

(हिंडोला)

अलंकार की छटा यहाँ भी छहर रही है। केवल मरघट मे वह नहीं है।

हरहरात इक दिसि पीपर कौ पेड़ पुरातन।
लटकत जामैं घट घने माटी के बासन॥
बरषा रितु के काज औरहू लगत भयानक।
सरिता बहति सवेग करारे गिरत अचानक॥

... ...

भई आनि जब साँझ घटा आई घिरि कारी।
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी॥
भए एकठा तहाँ आनि डाकिनि पिसाच गन।
कूदत करत किलोल किलकि दौरत तोरत तन॥

(हरिश्चंद्र काव्य)

सच्चे प्रकृति-वर्णन की यह विरलता ब्रजभाषा के काव्य मात्र में है। इसके कारण का अनुसंधान करते हुए पंडित रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ब्रजभाषा का विकास उस काल में हुआ था, जब संस्कृत का अलंकृत रूप अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गया था। काव्य की स्वाभाविक गति के लिए स्थान ही नहीं रह गया था। परंतु स्वाभाविक अस्वाभाविक की बात उतनी नहीं है। हमारे विचार से सबसे प्रमुख कारण भक्ति और दर्शन की वे भावनाएँ थीं जो ब्रजभाषा-साहित्य पर ही नहीं, देश की अपार जनता पर भी अधिकार जमा चुकी थीं और उसकी मनोवृत्ति ही बदल चुकी थी। अनंत और असीम की आकांक्षा मे सारा देश एक प्रकार से निमग्न सा हो गया था और जब कभी सीमा के सौंदर्य का—राम, कृष्ण अथवा उनसे संबद्ध परिस्थितियों के सौंदर्य का—वर्णन किया जाता, तब भी उसमे अपार निस्सीम शोभा की ही ध्वनि भरी होती थी। जीवन की साधारण घटना और लौकिक जगत की घरेलू सुषमा पर दृष्टि पड़ने का अवसर कम ही रहा। सामाजिक अत्याचार और राजनीतिक बधन से ऊबकर मानों हमारी दृष्टि पृथ्वी पर पड़ती ही न थी, आँखें आकाश की ओर ही ताकती रहती थीं। जिन लोगों ने प्रकृति पर कुछ ध्यान दिया, वे "घाघ-भड्डरी" कहलाए। उनकी अशिष्ट परंपरा मानी गई।

घटना और पात्रो का निर्वाह करने की चिंता में ब्रजभाषा के कवियों को प्रबंध क्षेत्र के भीतर तो प्रकृति-वर्णन की सुविधा मिली ही नहीं; मुक्तकों में भी ऋतु-वर्णन अधिकतर नायक-नायिका के ही प्रसग से किया गया। अतः वर्णन की दृष्टि से ऋतुएँ अयथार्थ और नीरस ही रहीं।

मुक्तक

सेनापति आदि कुछ कवियों ने अवश्य वास्तविकता से काम लिया, परंतु वह भी बहुत दूर तक नहीं जाती। प्रत्येक ऋतु की एक सुखद या दुःखद भावना ही प्रस्फुटित होकर रह जाती है, प्रकृति के अन्य प्रभावशाली रहस्य प्रकट ही नहीं होते। अँगरेज कवि वर्ड्सवर्थ की-सी प्रकृति की सजीव सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति पुरानी हिंदी के किसी कवि को प्राप्त नहीं हुई। रत्नाकर जी के मान्य और आदरणीय पद्माकर की "गुलगुली गिलमे" और उनके साथ के सरंजाम देखे ही जा चुके हैं और "मद मंद मारुत महीम मनसा" को महिमा भी मालूम ही है। विश्व के ओर-छोर तक फैली हुई प्रकृति की प्रसन्न विभूति और कवित्तो की कवायद मे बहुत बड़ा अतर है। रत्नाकर जी ने भी फुटकर पदों में ऋतु सबधी अष्टक लिखे हैं जो ब्रजभाषा के प्रकृति-वर्णन की तुलना में बहुत कुछ और आगे बढ़े हुए हैं। यथा—

फूली अवली हैं लोध लवली लवगनि की,
धवली भई है स्वच्छ सोभा गिरि सानु की।
कहै रतनाकर त्यौं मरुवक फूलनि पै,
झूलनि सुहाई लगै हिम परमानु की॥
साँझ तरनी औ भोर तारा सी दिखाई देति,
सिसिर कुही मैं दबी दीपति कृसानु की।
सीत भीत हिय मैं न भेद यह भान होत,
भानु की प्रभा है कै प्रभा है सीतभानु की॥

(शिशिर)

छाई छवि स्यामल सुहाई रजनी-मुख की,
रंच पियराई रही ऊपर मुरेरे के।
कहै रतनाकर उमगि तरु छाया चली,
बढ़ि अगवानी हेत आवत अँधेरे के॥
घर घर साजैं सेज अंगना सिंगारि अंग,
लौटत उमंग भरे बिछुरे सबेरे के।
जोगी जती जंगम जहाँ ही तहाँ डेरे देत,
फेरे देत फुदकि बिहंगम बसेरे के॥
(संध्या)

इन अष्टकों मे तथा सैकड़ों फुटकर कवित्तों में रत्नाकर जी का कलाविद् रूप अधिक स्पष्ट है। ये वे कवित्त हैं जो उनके जीवन काल में सैकड़ो बार कवि-सम्मेलनो मे श्रोताओं की वाहवाही प्राप्त कर चुके हैं। क्यों न हो। इनकी कारीगरी ऐसी ही है। रत्नाकर जी को छोटे छोटे कवि-सम्मेलन अधिक प्रिय थे। कवि-सम्मेलन नही, उन्हे कवि-मंडली कहना अधिक उपयुक्त होगा। इन्ही मे वे अपनी मँजी कलम के निखरे कवित्त सुनाया करते थे। इन कवित्तों का संगीत "उद्धवशतक" की कोटि का नहीं है, उससे अधिक हलका और उत्तेजक है और उतना मनोरम तथा वेदनामय भी नही। इन्हीं में उनके वीराष्टक के कवित्त भी हैं जिन्हें पढ़कर एक पत्र-संपादक ने लिखा था कि—"रत्नाकर जी भूषण के युग में रहते हैं।" परंतु यह रत्नाकर जी की प्रकृति का विपर्यय है। उनके वीररस के छंदो मे अधिकांश अनुभूतिहीन हैं। यह युग "भूषण का युग" कहा जा सकता है। पर वीरता के उत्थान के अर्थ में; हिंदू-मुस्लिम-वैमनस्य के अर्थ मे नही, जैसा कि उक्त पत्रिका-संपादक का संकेत जान पड़ता है। तथापि रत्नाकर जी को भूषण-युग का कवि कहना केवल हँसी की बात है। किसी कवि के दो चार पदों को लेकर एक सिद्धांत की स्थापना कर चलना ठीक नहीं।

नए नए सिद्धांतो का निरूपण और आविष्कार करनेवालों मे से चाहे कोई उन्हे भूषणकाल का और चाहे कोई उमर खैयाम का प्रतिस्पर्द्धी बतलाये, परंतु साहित्यिक और सामाजिक इतिहास के जानकार और रत्नाकर जी के परिचित उन्हे इस रूप मे नही देखते। रत्नाकर जी के उद्धवशतक में उद्धव के जोगतंत्र को गोपियों की भक्ति-भावना से पराजित करने की योजना नवीन नही है। उनकी उक्तियाँ भी अनेक अंशों मे सूरदास, नंददास आदि की उक्तियों से मिलती-जुलती हैं, यद्यपि उनमें रत्नाकर जी की एक निजता अवश्य है। सगुण और निर्गुण भक्ति की यह रसमयी रागिनी वैष्णव साहित्य की एक सार्वजनिक विशेषता है। कृष्णायन संप्रदाय के प्रायः सभी कवियों ने इस रागिनी में अपना स्वर मिलाया है। ऐसी अवस्था में यदि कोई कहे कि रत्नाकर जी की गोपियों की उक्तियाँ नवीन युग के व्यक्तिवाद का संदेश सुनाती हैं अथवा भावी अनीश्वरवाद का संकेत करती हैं, तो यह प्रसंग के साथ अन्याय और रत्नाकर जी की प्रकृति से अपरिचय प्रकट करना ही होगा। इससे चमत्कार की सृष्टि भले ही हो, सत्य की स्थापना नही होगी।

रत्नाकर जी तो मध्ययुग की मनोवृत्ति लेकर मध्ययुग के ही वातावरण मे निवास करते थे। आधुनिकता के प्रति उनकी कोई विशेष रुचि न थी। मध्ययुग हिंदी का सुवर्णयुग था और रत्नाकर जी उसी में रमे हुए थे। उनकी भाषा और उनके वर्ण्य विषय सब तत्कालीन ही हुए। उनके आचार-व्यवहार तक मे उसी समय की मुद्रा थी। उस युग की कल्पना को वास्तविक बनाकर रत्नाकर जी उसमे पूरे प्रसन्नभाव से रहते थे। अँगरेजी मे ऐसे लेखकों और कवियों को 'क्लैसिक' कहने की चाल है जो स्वभावतः अपने भावो, पात्रों और भाषा आदि को प्राचीन यूनान तथा रोम की साहित्य-शैली में ढालते हैं और वहीं से अपनी साहित्यिक स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। धीरे धीरे ऐसे क्लैसिक कवियों की वहाँ एक परंपरा बन गई है जिसकी विशेषताओ को श्रेणीबद्ध करते हुए समीक्षकों ने लिखा है कि वे कवि प्राचीन वातावरण को पसंद करते, पुरानी ग्रीक लैटिन अथवा अँगरेजी के काव्य-ग्रंथों का अध्ययन करते और उन्हीं की शैली को अपनाते हैं। पौराणिक और धार्मिक ग्रंथो के पात्रों का ही चित्रण करने की इनकी प्रवृत्ति होती है और ये भाषा को ही नहीं, उपमा, रूपक आदि साहित्यालकारों को भी प्राचीन परिपाटी के अनुसार ही रखने की चेष्टा करते हैं। मिल्टन से लेकर अब तक अँगरेजी में इस प्रकार के अनेक 'क्लैसिक' रचनाकार हो गए हैं, जिनमे मेथ्यू आर्नल्ड अंतिम प्रसिद्ध क्लैसिक समझा जाता है और जिसके होमर-शैली के रूपकों की अच्छी ख्याति है। यह साहित्यिक वर्ग भाषा मे प्रौढ़ता और अलंकरण तथा भावों मे संयम और गंभीरता का आग्रह करता है। इस विचार से रत्नाकर जी सच्चे अर्थ में हिंदी की 'क्लैसिक' कविता के अनुयायी और स्वयं अंतिम 'क्लैसिक' हो गए हैं तथा उनके अवसान से यह क्षेत्र सूना हो गया है।

परंपरा के रूप मे प्रचलित हो जाने पर इस क्लैसिक वर्ग के लेखकों के विरुद्ध नवीन साहित्यिक उन्मेष की आवश्यकता समझी जाती है और नवीनतावादी लेखक क्रांति करते हैं। भावों मे अस्वाभाविकता और अनुभूति का अभाव भाषा मे व्यर्थ का भार और रूढ़िगत चरित्र-चित्रण आदि का दोष लगाकर ये नवीन क्रांतिकारी पुराना तख्त उलट देने का आंदोलन करते हैं। परंतु इससे उस शैली का अंत नहीं होता; उलटे वह अपनी सीमा के अंदर नवीन आकर्षण उत्पन्न करने में समर्थ होती है और बहुत से नए समालोचक प्राचीनों के पक्ष मे जोरदार प्रचार करने को तैयार हो जाते हैं। यूरोपीय साहित्य मे इन दिनों नए सिरे से प्राचीन पक्ष के अनुकूल हवा बहती हुई देखी जाती है। हमारी हिंदी में अभी ब्रजभाषा की विरोधी शक्ति उत्थान पर है। परंतु आशा है, कुछ समय में हिंदी साहित्य-सागर का भी यह उद्वेलन स्थिरता प्राप्त करेगा और ब्रजभाषा-नौका के यात्री सकुशल पार लग सकेंगे।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि एक विशेष पथ पर परिश्रम पूर्वक चलते चलते रत्नाकर जी साहित्य में अपनी एक अलग लीक बना गए हैं। इस विचार से वे हिंदी के एक ऐतिहासिक पुरुष ठहरते हैं। यह सम्मान युग के बहुत थोड़े व्यक्तियों को प्राप्त हो सकता है। हमें ऐसे ऐतिहासिक कवि के पुराने, अंतरंग तथा अभिन्न-हृदय मित्र होने का सौभाग्य प्राप्त है। अपनी गुप्त से

गुप्त वार्ते तथा विचार भी वे हमसे स्वच्छ हृदय से कह देते थे और साहित्यिक विषयों मे तो हमें सदा अपने साथ रखने का संकल्प रखते थे। ऐसे एक मित्र की प्रथम वार्षिक जयंती पर उनके काव्यों का सग्रह प्रस्तुत करने मे जो कुछ हमसे बन पड़ा है, उसके द्वारा हम अपना मित्र-ऋण अंशतः चुकाना चाहते हैं और यह श्रद्धांजलि उनकी स्वर्गीय आत्मा को अर्पित करते हैं।

श्यामसुंदरदास
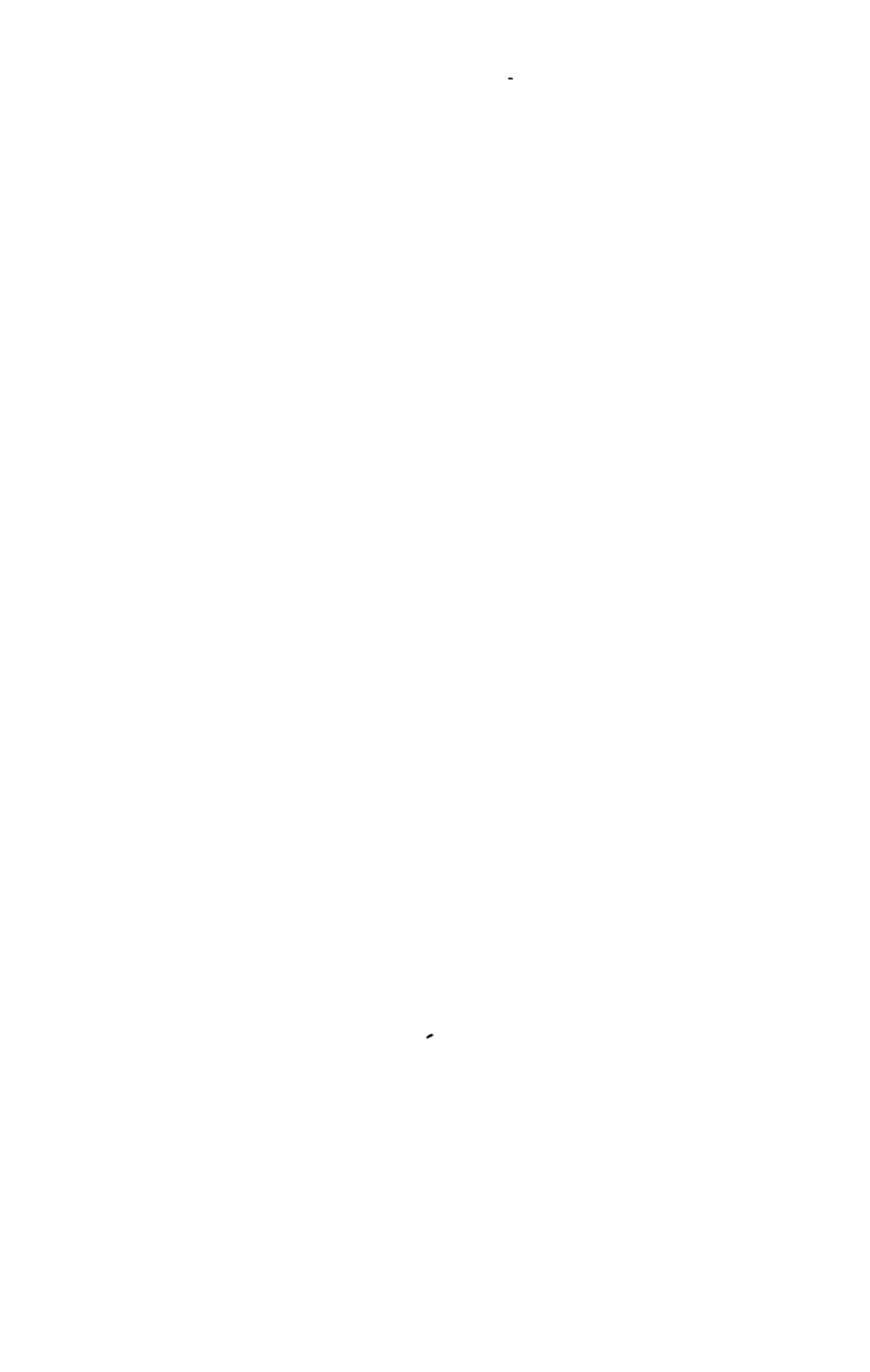
जीवनी

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का जन्म संवत् १९२३ भाद्रपद शुक्ला पंचमी को काशी में हुआ था। ये दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य थे और इनके पूर्वज पानीपत पंजाब के मूल-निवासी थे। वहाँ इनके पूर्वज मुगल-दरबार में प्रतिष्ठित पदों पर काम करते थे। पानीपत छोड़कर इनके पूर्वपुरुष लखनऊ पहुँचे थे। जहाँ इनके परदादा सेठ तुलाराम अतुल संपत्तिशाली और राजमान्य हुए। लाला तुलाराम जहाँदारशाह के दरबार मे रहते थे और लखनऊ के बहुत बड़े रईस समझे जाते थे। एक बार लखनऊ के एक नवाब साहब ने तुलाराम जी से तीन करोड़ रुपया उधार माँगा था। इस आज्ञा का पालन करने और रुपए जुटाने में इनकी संपत्ति का बड़ा अंश चला गया। फिर भी अमीर-स्वभाव न गया और उनके वंशजों तक बना चला आया। बाबू जगन्नाथदास में भी इसकी मात्रा कम न थी। सेठ तुलाराम जहाँदारशाह के साथ एक बार काशी आए थे और आकर रहने लगे थे।

बाबू जगन्नाथदास के पिता पुरुषोत्तमदास फारसी भाषा के अच्छे विद्वान् थे और हिंदी काव्य से भी पूरा अनुराग रखते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र के ये समकालीन थे और उनसे इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। अपने विनोदप्रिय स्वभाव के कारण हरिश्चंद्र इनके यहाँ भिन्न भिन्न वेश बनाकर आते थे। एक बार वे भिक्षुक का छद्मवेश बनाकर सबेरे ही बाबू पुरुषोत्तमदास के घर पहुँचे और बाहर से एक पैसे का सवाल किया। पहले तो उन्हें पैसा मिल रहा था। पर जब पहचान लिए गए तब बड़ी हँसी हुई। जगन्नाथदास जी ने भी कुछ दिन भारतेंदु का सत्संग किया था और वे इन्हें स्नेह की दृष्टि से देखते और प्रोत्साहन देते थे। कविता की ओर इनकी रुचि देखकर उन्होंने कहा था कि आगे चलकर यह बालक हिंदी की शोभा बढ़ावेगा। उनकी यह भविष्यवाणी सत्य हुई। हिंदी कविता में जगन्नाथदास ने अपना नाम "रत्नाकर" रखा। जो अनेक छंद-रत्नों की रचना के कारण सार्थक हो गया।

रत्नाकर जी के पिता के घर में फारसी और हिंदी के कवियों की भीड़ लगी रहती थी जिसका शुभ प्रभाव इन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। इन्होंने भी फारसी और हिंदी काव्य का अभ्यास आरंभ किया। अँगरेजी मे बी० ए० पास करने के समय तक इन्होंने फारसी मे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी और फारसी मे ही एम० ए० की परीक्षा देना चाहते थे। परंतु कतिपय कारणों से इन्हें परीक्षा देने का अवसर न मिल सका। इस समय तक ये अपना तखल्लुस "जकी" रखकर फारसी की थोड़ी बहुत शायरी करने लगे थे। इस विषय के इनके उस्ताद मिरजा मुहम्मद हसन फायज थे जिनके प्रति इनकी अगाध श्रद्धा थी जो फारसी कविता लिखाना छोड़ देने के बाद भी वैसी ही बनी रही। इस युग में वैसी श्रद्धा कम दिखाई पड़ती है।

हिंदी की कविता इन्होंने कुछ काल बाद आरंभ की, परंतु उसका तार बीच बीच मे टूट जाता था। इन्होंने रियासत आवागढ़ में नौकरी कर ली थी जहाँ ये खजाने के निरीक्षक के पद पर काम करते थे। पर जलवायु अनुकूल न होने के कारण दो ही वर्ष बाद नौकरी छोड़ दी और काशी चले आए। इन दिनों वर्षों तक कविता का सिलसिला चला। इनके रसिक स्वभाव ने कविता के लिए व्रजभाषा को ही अपनाया था। उस समय खड़ी बोली का आंदोलन इतना प्रबल नहीं था। व्रजभाषा का ही बोलबाला था। व्रजभाषा के कई अच्छे कवि काशी मे रहते थे जिनसे रत्नाकर जी ने शिक्षाप्राप्ति का लाभ उठाया। भारतेंदु के कविसम्मेलनो मे ये बाल्यकाल से ही जाने लगे थे। जिसके कारण यह सस्कार दृढ़ हो गया और वे कविसम्मेलनों का आयोजन करने और उनमें सम्मिलित होने में बड़ा उत्साह दिखाते थे। परतु वे चुने हुए कवितारसिकों के छोटे छोटे सम्मेलनों के पक्षपाती थे। भीड़भड़क्के से बहुत घबराते थे।

सन् १९०२ मे ये स्वर्गीय अयोध्यानरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। तब से ये स्वर्गीय महाराज के जीवनपर्यंत उसी पद पर रहे। चार पाँच वर्ष इस प्रकार बीते। सन् १९०६ में जब महाराज का देहांत हो गया तब इनकी कार्य-कुशलता और योग्यता से सतुष्ट होकर अयोध्या की महारानी साहिबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। अब उन्हें साहित्यसेवा करने का वह अवसर ही न मिलने लगा जो उन्हें अब तक मिलता आया था। राज्य के कार्य का भार सँभालने में ही इनका सब समय बीतने लगा। फलतः कवि-दरबार करने के बदले अब ये कचहरियों का दरबार देखने लगे। सन् १९०६ से १९२१ तक इनकी कविता परिस्थितिवश छूटी रही। इससे अवश्य हिंदी संसार की हानि हुई।

सन् १९२१-२२ मे जब रत्नाकर जी को साहित्य को फिर से एक नजर देखने और उस ओर आकर्षित होने का अवसर मिला तब खड़ी बोली की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। परंतु रत्नाकर जी को उसमें वह मिठास, वह रचना-चातुरी और वह कला न मिलती थी जो व्रजभाषा मे पाई जाती थी। उनकी दृष्टि में कविता, तालतुकहीन, अंगभंग और क्षीणछवि हो गई थी। अतः उन्होंने उसी 'पुरानी श्रुतिमधुर ध्वनि' का ध्यान करके दुबारा कलम उठाई। इनके हाथ से मँज कर व्रजभाषा निखरने लगी। उसके ऊपर की अशुद्ध काई छूट चली। कवित्तों और अन्य छंदों के सघटन-क्रम पर विशेष ध्यान देकर रत्नाकर जी ने अपनी कविता-कारीगरी को पहले से द्विगुणित शक्ति से बढ़ाया। ये व्रजभाषा की नैसर्गिक माधुरी का आस्वाद लेकर उसी की मनोरम परिस्थितियों में निवास करने लगे। इन्होंने अपना जीवनक्रम भी उसी के अनुकूल रखा। मध्यकालीन ठाटबाट, वेशभूषा और रुचि बना ली। दिखावट-बनावट और प्रसिद्धि की इन्हें कुछ भी चाह नही थी। इस युग की गति उन्हें नहीं व्यापी थी। उन्हें देखकर शायद ही कोई कह सकता कि उन्होंने बी० ए० तक अँगरेजी पढ़ी है।

इनका स्वभाव विनोदप्रिय सरल, उदार और सज्जनोचित था। मित्र-मंडली में ये अपने इस स्वभाव के कारण बहुत प्रिय थे। काशी मे तो ये रहते ही थे। प्रयाग, लखनऊ आदि मे भी इनके दौरे अक्सर हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर दल के दल साहित्य-सेवी, जिनमें अँगरेजी पढ़े-लिखे नवयुवकों से

लेकर पुरानी चाल के कविगण और शायर भी होते थे, इन्हें घेरे रहते थे। प्रयाग में रसिक-मंडल नामक ब्रजभाषा-कवि-समाज की स्थापना में इनकी ही विशेष प्रेरणा रही। वहाँ ये बहुधा जाया आया करते थे और ब्रजभाषा-कवियों को प्रोत्साहित किया करते थे। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के भी ये मान्य सदस्य थे और इनकी दी हुई निधि से रत्नाकर-पुरस्कार की भी व्यवस्था सभा-द्वारा की गई। सभा के आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त उन्होंने अपना पुस्तक-संग्रहालय भी सभा को प्रदान किया है। अपनी नौकरी से छुट्टी लेकर वे अंतिम दिनों में सूरसागर के शुद्ध सस्करण के प्रकाशनार्थ अथक परिश्रम और धन-व्यय कर रहे थे। दुःख है कि वह कार्य उनके जीवनकाल मे पूरा न हो सका, केवल तीन चौथाई होकर रह गया। उनके आदेशानुसार नागरी-प्रचारिणी सभा उस अधूरे कार्य की पूर्ति की व्यवस्था कर रही है। "बिहारी-रत्नाकर" नामक रत्नाकर जी द्वारा की गई बिहारी की प्रामाणिक टीका इस विषय की श्रेष्ठ और सुसपादित पुस्तक मानी जाती है। यद्यपि रत्नाकर जी ब्रजभाषा के ही अनन्य भक्त थे किंतु खड़ी बोली में भी इन्होंने दो कवित्त लिखे हैं। ये कवित्त अब तक प्रकाशित नहीं हुए। जन्म भर ब्रज की माधुरी मे निमग्न रहनेवाले इस कवि ने खड़ी बोली की कविता मे जो कुछ लिखा वह अपने अनोखे आकर्षण के कारण उद्धृत करने योग्य है।

(१)

आशा व्योममंडल अखंड तम-मंडित मे
उषा के शुभागम का आगम जनाता है।
उच्च अभिलाषा कंजकलिका अधोमुख को
प्रान फूँक फूँक मुकलित दरसाता है॥
भारत-प्रताप-भानु उच्च-उदयाचल से
कुहरा कुबुद्धि का चिरस्थित हटाता है।
भावी भव्य सुभग सुखद सुमनावली का
गंधी गंधवाहक सुगंध लिए आता है॥

(२)

नीरव दिगंगना उमंग रंग प्रांगण में
जिसके प्रसंग का अभंग गीत गाती हैं।
अतुल अपार अंधकार विश्व व्यापक में
जिसकी सुज्योति की छटाएँ छहराती हैं॥
जिसके अमंद मुखचंद के विलोके बिना
पारावार तरल तरंगें उफनाती हैं।
पाने को उसी की बाँकी झाँकी मन मंदिर मे
मंद मुसकाती गिरा गुप्त चली आती हैं॥

शब्द-योजना के इस अद्भुत आचार्य और करामाती कारीगर को ता० २१ जून १९३२ को हरिद्वार में गंगालाभ हुआ था।

विषय-सूची

स्वर्गवासी बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर

मंगलाचरण

जाकी एक बूँद कौं बिरंचि बिबुधेस, सेस, सारद, महेस हैं पपीहा तरसत हैं।
कहै रतनाकर रुचिर रुचि ही मैं जाकी मुनि-मन-मोर मंजु मोद सरसत हैं॥
लहलही होति उर आनँद-लवंगलता जासौं दुख-दुसह-जवासे झरसत हैं।
कामिनि-सुदामिनी-समेत घनस्याम सोई सुरस-समूह व्रज-बीच बरसत हैं॥

चित-चातक जाकौं लहत, होत सपूरन-काम।
कृपा-बारि बरसत बिमल, जै जै श्रीघनस्याम॥

परम रम्य आराम सुखद बृंदावन नितहीँ,
पर पावस-सुषमा असीम जानत कछु चितहीँ ।
जा पर ललकि लुभाइ भाइ भरि आनँदकारी,
बिहरत स्यामा-संग स्याम गोलोक-बिहारी ॥ १ ॥

हरित भूमि चहुँ कोद मोद-मंडित अति सोहै,
नर की कहा चलाइ देखि सुर-मुनि-मन मोहै ।
मानहु पन्ननि सिला संचि बिरची बिरंचि वर,
जेहिँ प्रभाव नहिँ करत नैंकु बाधा भव-विषधर ॥ २ ॥

इत-उत ललित लखातिँ चटक-रँग बीरबधूटी,
मनहु अमल अनुराग-राग की उपजीँ बूटी ।
दूबनि पै झलमलत बिमल जलबिंदु सुहाए,
मनु बन पै घन बारि मंजु मुक्ता बगराए ॥ ३ ॥

तरुवर तहाँ अनेक एक सौं एक सुहाए,
नाना-बिधि फल फूल फलित प्रफुलित मन-भाए ।
कहूँ पाँति बहु भाँति अमित आकृति करि ठाढ़े,
कहूँ झुंड के झुंड झुकैँ झूमैँ गथि गाढ़े ॥ ४ ॥

चंपा - गुंज-लवंग - मालती - लता सुहाईँ,
कुसुम-फलित अति ललित तमालनि सौं लपटाईँ ।
साजे हरित दुकूल फूल छाजे बनिता बहु,
निज-निज नाहैँ अंक निसंक रहीँ भरि मानहु ॥ ५ ॥

मंजुल सघन निकुंज कहूँ सोभा सरसानी,
गुंजत मत्त मलिंद-पुंज जिनपै सुखदानी।
चढ्यौ अटा छवि-छटा हेरि हिय हरष बढ़ावत,
मनु रस-राज समाज साजि कै गुन-गन गावत ॥ ६ ॥

जहँ तहँ सरवर, झील, ताल, सोहत जल-पूरित,
सलिल सिमिटि कहुँ लघु सरिता धावतिँ धरधूरित।
अति मलीन दुति-हीन विरह-आधीन छीन-तन,
मानहु खोजत फिरत जीवनाधार तिया-गन ॥ ७ ॥

एक ओर गिरिराज लसत गिरि-गौरव-कारी,
परम गूढ़ सुविलास रास-रस कौ अधिकारी।
लहलहात है हरित-गौर-स्यामल-रंग-राँचौ,
पुलकित-तन रस-सरावोर अविचल-व्रत साँचौ ॥ ८ ॥

भंजन भव-भ्रम-काच कुलिस-आगार मनोहर,
गंजन हिय-तम-तोम तरनि-उदयाचल सुंदर।
प्रेम-पयोधि-रतन-दायक मंदर कन जाके,
कंचन-करन, हरन-कलमस पारस मनसा के ॥ ९ ॥

जित तित नाचत मोर पपीहा कल धुनि गावत,
सजत सरंगी भृंग मेघ मिरदंग बजावत।
कूदत करत कलोल दरत दादुर करतारैँ,
तेहिँ सुभ सुखद समाज झाँझ झिल्ली झनकारैँ ॥ १० ॥

तोन
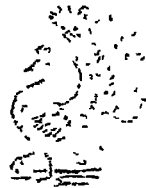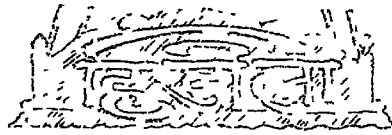
पवन-प्रसंग उमंगि देत तरु-पल्लव ताली,
चटकावति चहुँ ओर चपल चुटकी चटकाली।
मनहुँ तिहूँ पुर की सुषमा बृंदावन आई,
बनदेवी सुख-साज साजि बरतति पहुनाई॥ ११ ॥

पाइ प्रसून-प्रसंग पौन परिमल बगरावत,
दाता-ढिग सौं आइ गुनी ज्यौं जस फैलावत।
कबहुँ मंद जल-बिंदु परत कहुँ सुख-सरसाए,
आनँद-अंसु सहस्र-नैन मनु स्रवत सुहाए॥ १२ ॥

चहुँ दिसि तैं घन घेरि घेरि नभ-मंडल छाए,
घूमत, झूमत, झुकत औनि अतिसय नियराए।
दामिनि दमकि दिखाति, दुरति पुनि दौरति लहरैं,
छूटि छबीली छटा-छोर छिन छिन छिति छहरैं॥ १३ ॥

मानहु संचि सिँगार हास के तार सुहाए,
धूपछाँह के झीनि बितान अतन तनवाए।
पाइ प्रसंग प्रमोद-पौन कौ सो हलि हलकैं,
पल पल औरै प्रभा-पुंज अद्भुत-गति झलकैं॥ १४ ॥

कहुँ तिनकैं बिच लसति सुभग बग-पाँति सुहाई,
मुकता-लर की मनौ सेत झालर लटकाई।
कहूँ साँझ की किरनि करति कछु कछु अरुनाई,
मनु सिँगार की रासि राग-रुचि की रुचिराई॥ १५ ॥

ठाम एक अभिराम मंडलाकृति तहँ आवै,
जाकौ बानक बिसद बिसेस विचित्र बिराजै।
मेदिनि-मंडल-मंजु-मुद्रिका-मनि मन मानौ,
जिहिं अंकित चित होत प्रेम-पथ कौ परवानौ ॥ १६ ॥

सम उँचान के विटप वलित-वल्ली चहुँ ओरनि,
हरित-वनात-कनात कलित मानहुँ कल कोरनि।
तिनपै रंग-विरंग सुमन, पल्लव, पंछी-गन,
सो मानौ बहु चित्र विचित्र रचे मन-भावन ॥ १७ ॥

पत्र-बीच है झलकति कहूँ कलिंद-नंदिनी,
कोटि-कोटि-कलि-कलुष-करार-निगर-निकंदिनी।
रस सिंगार की सरस सरित त्रय-ताप-नसावनि,
कूर-कुपथ-गामिनि की पातक-पंक-बहावनि ॥ १८ ॥

असित-ओप असि दुख-दरिद्र-दल-गंजन-हारी,
हरि-जन-पांडव-काज लाज-द्रौपदि की सारी।
स्याम रंग सौं लिखी प्रेम-पद्धति की पंगति,
जाकी टीका सब पुरान-इतिहासनि रंगति ॥ १९ ॥

अखिल-लोक-नायक-प्रमोद-दायक-पटरानी,
प्रिय प्रीतम कैं रुचिर रंग राँची सुख-सानी।
ब्रज-रहस्य के परम तत्त्व की जो कछु पूँजी,
इक याही की कृपा-कोर ताकी कल कूँजी ॥ २० ॥

सुमन हिंडोरा लसत एक तेहिँ मंडल माहीँ,
जाकौँ बानक बिसद बिलोकि सुमन सकुचाहीँ।
सुख-सागर-तरंग-दीच्छा-गुरु राजत मानौ,
तरुनि तियनि की चल चितौनि कौ सार बखानौ ॥ २१ ॥

कैधौँ लाज मदन कैँ मध्य परयौ मध्या-जिय,
कै अभिसार-समै कलकामिनि कौ धरकत हिय।
किधौँ राग कुल कानि बीच अनुरागिनि कौ चित,
सकै न ठिकु ठहराइ जात आवत नित उत इत ॥ २२ ॥

चुनि चुनि वेला कलिनि अलिनि लर गूँथि बनाईँ,
रचि रचि रेखैँ रुचिर दुहूँ खंभनि लपटाईँ।
कहूँ फूल, कहुँ वेल, कहूँ बूटे, कहुँ तरवर,
विच विच तिनकैँ कीर, मोर, मृग औ सुरभी बर ॥ २३ ॥

बाँधि सुमन बहुरंग उमंग-समेत बनाए,
जहँ जहँ जो जो उचित रंग सोई सो लाए।
मनहुँ विविध वपु धरि निरखत छवि-छकित सुमन-गन,
सत-गुन-सहित लसत चहुँ दिसि अति मुदित मुनिनि मन ॥२४॥

तिनपै तैसिहि सुमन सजित इक धरी मयारी,
गुच्छनि के करि कलस दुहूँ दिसि सुघर-सँवारी।
रूप-गर्व, गुन-गर्व दर्पि जनु सीस उठायौ,
पुनि सुभाव-गौरव सौँ दवि अति आदर पायौ ॥ २५ ॥
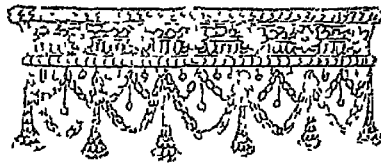
कंज-कली-आकृति, समान सब, पँच-रँग-पूरे,
लाइ सुमन बहु भाँति पाँति करि रचे कँगूरे।
लखि तीछन सोभा तिनकी यह परत जनाई,
मानहु कुसुमायुध बाननि की बाढ़ जमाई॥ २६॥

लसत बीच इक मत्त मोर सिर पुच्छ पसारे,
परत पिछान न बन्यौ सुमन चुनि बहु-रँग-वारे।
कदम-कुसुम की बंदनवार बनाइ लगाई,
झूमत जाकैं बीच एक झूमर सुख-दाई॥ २७॥
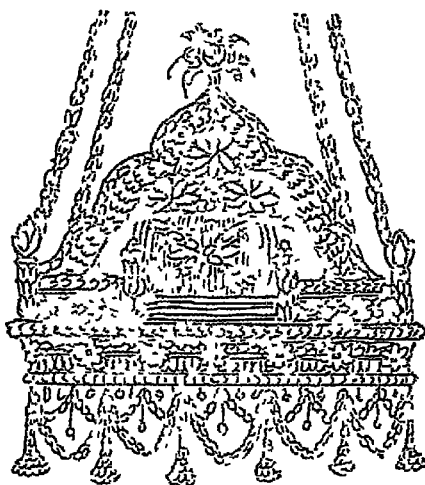
चारु चारि डोरी रेसम की लै लटकाईं,
जिनमैं फूलनि की बहु ललित लरैं लपटाईं।
पर्‍यो पाट सुख-कंद विमल चंदन कौ तिनमैं,
पसरति मंद सुगंध दंदहर बिपिन बिपिन मैं॥ २८॥
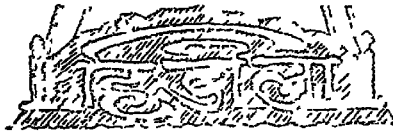
ताकैं चारौं ओर बने जँगला बेला के,
बने हंस तिन माहिँ प्रसंसनीय सुषमा के।
स्वच्छ सुघर भव-पंक-रहित मानौ संतनि मन,
विहरत पूरि प्रमोद सतोगुन कैं नंदनवन ॥ २९ ॥

कल-कोमल-धुनि-धाम घंटिकावलि सुर-साधीँ,
बढ़-घट मेल मिलाइ लसतिँ छोरनि मैं नाधीँ।
गादी ललित लाल मखमल की नरम बिछाई,
हरित दौर चहुँ ओर कोर पीरी छबि छाई ॥ ३० ॥

मनहु अमल अनुराग-भूमि सोहति सुखदाई,
हरित आस की दूब चारु चहुँ पास लगाई।
रचि पचि माली-काम परम अभिराम बनाई,
अटल प्रीति-पुखराजि-मेड़ि मंजुल मन-भाई ॥ ३१ ॥

मिलि सब साज समाज बँध्यौ इमि समौ सुहायौ,
चतुरानन जिहिँ चाहि चातुरी-गर्व गँवायौ।
हेरि हिंडोरे की सुषमा सुंदर सुघराई,
अति अद्भुत अनूप उपमा आवति अधिकाई ॥ ३२ ॥

अटल विवेक ज्ञान पर दृढ़ विस्वास धर्यो मनु,
अर्थ, धर्म अरु काम, मोच्छ ताकैं अधीन जनु।
ब्रह्मानंद अमंद परम दुर्लभ सुभकारी,
राजत तिनकैं मध्य मंजु छाजत छबि भारी ॥ ३३ ॥

झूलत स्यामा स्याम कोटि-रति-काम-प्रभाधर,
थाई रति अरु रस सिँगार जनु धारि अंग वर।
कै सुखमा सौंदर्य्य अनूप रूप रचि राजत,
मृदुल माधुरी औ लावन्य ललित कै भ्राजत ॥ ३४ ॥

सुकृति-विभूति भाग-वैभव कीरति जसुमति के,
पुन्य-प्रभा-प्रभाव वृषभानु नंद गोपति के।
सुख-संपति औ परम मान-धन व्रजबासिनि के,
सिद्धि-रासि तप-तेज-तरनि जावत जोगिनि के ॥ ३५ ॥

सुभ सोभा सौभाग्य सुभग संकर-उर-पुर के,
सकल सुमृति अरु वेद-सार सरनालय सुर के।
कलपलता चिंतामनि चारु सुकवि रसिकनि के,
जिय जानत न कहात कहा अनन्य भक्तनि के ॥ ३६ ॥

पीत-नील-पाथोज-बरन मनहरन सुहाएँ,
कोमल अमल अमोल गोल गातनि छबि छाए।
तरुन-अरुन-बारिज-बिसाल लोचन अनियारे,
रंग रूप जोबन अनूप कैं मद-मतवारे ॥ ३७ ॥

भाय-भेद-भरपूर चारु चितवनि अति चंचल,
बरुनी सघन कोर-कज्जल-जुत लसत दृगंचल।
भृकुटी कुटिल कमान सान सौं परसतिं काननि,
नैंकु मटकि मुरि मूकभाव के बरसतिं बाननि ॥ ३८ ॥

जदपि दुहुनि के नैन मैन-अभिलाष-सील-मय,
तदपि सुनहु कछु भेद गुनहु मन सूच्छम अतिसय।
उनके सफरी स्वच्छ, अच्छ पाठीन सु इनके,
उनके संध्या-कुमुद, कंज इनके पुनि दिन के ॥ ३९ ॥

उनकैं लाज सकोच लोच की कछु अधिकाई,
इनकैं हौस-हुलास-रासि की आतुरताई।
दोउनि की छबि पै दोऊ ललकत ललचौहैं,
पै इक सौंहैं लखत एक करि नैन निचौहैं ॥ ४० ॥

हरित घाँघरौ घेरदार उत दरियाई कौ,
सकल सुनहरौ साज सज्यौ सुठि सुघराई कौ।
हरी पामरी जरी-कोर-बारी कौ आछौ,
चुनि चिकनाइ चमेटि फेटि काछ्यौ इत काछौ ॥ ४१ ॥

कसी कुसुंभी कठिन कंचुकी उत मलमल की,
कलित कोर चहुँ ओर प्रभा-पूरित झलमल की।
लसत लाल बागौ बनाव-जुत इत अति नीकौ,
बन्यौ काम जामैं दुति-दाम कामदानी कौ॥ ४२॥

सारी जरतारी भारी उत चटापटी की,
लागी जामैं गोट तमामी पटापटी की।
आँचल पल्लव, औ तुरंज सब जगमग-कारी,
पीत सेत कल किरन तरनि-मद-मर्दनहारी॥ ४३॥

पंचरंग-उपट्यौ दुपटौ करेब कौ त्यौं इत,
वेल कारचोवी जामैं सोहति मोहति चित।
झलमलाति छोरनि झीनी झालर मुकेस की,
फवति फूँदननि मैं मुकतावलि मोल वेस की॥ ४४॥

चारु चंद्रिका फूलनि की सोहति उत भाई,
लालन की मति जाहि निरखि बिन मोल विकाई।
सिर चढ़ि इत इतरात मुकुट त्यौं फूलनि ही कौ,
वरवस बस करि लेनहार चित चतुर लली कौ॥ ४५॥

महमहाति उत फूलनि सौं गूथित वर वेनी,
रूप-कलपलतिका-कुसुमावलि सी सुख-देनी।
लोल सुडोल सुमन-सिरजित झूमक इत झूमत,
हुलसत विलसत गोल अमोल कपोलनि चूमत॥ ४६॥
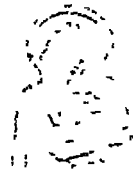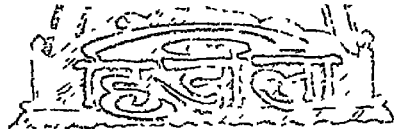
दोउनि कैं अँग फूलनि ही के लसत बिभूषन,
जिनहिँ बिलोकि हेम-मनिमय लागत जिमि दूषन।
दोउनि की बढ़ि रही ओप इमि साहचर्ज सौं,
सदा-समीपिनि सखिहुँ लखतिं अति आहचर्ज सौं॥ ४७॥

चहुँ दिसि करतिं कलोल लोल-लोचनि आलीगन,
नाचतिं गावतिं बिबिध बजावतिं बाद मुदित-मन।
सकल रूप-जोबन-अनूप-गुन-गर्ब-गसीली,
जुगल-रसासव-मत्त राग-रँग-रच रसीली॥ ४८॥

करतिं चंद-दुति मंद अमल मुखचंद-उजारी,
मुनि-मन-माहिँ मनोज-मौज उपजावनहारी।
चचल चपल चलाँक चुलबुली चेटकहाईं
चुहुल चोचले चोज चाव कैं चाक चढ़ाईं॥ ४९॥

नख-सिख नव-सत सजे बैस नव-सत सुखदाई,
निधि नव, सत अपसरनि सुमति लखि जिनहिँ लजाई।
आपुस मैं करि छेड़छाड़ ऐंड़तिं इतरातीं,
पिय प्यारी की ओर हेरि हिय हुलसि सिरातीं॥ ५०॥

कोउ पद के बहु भेदनि सौं रौंदति हठि हिय कौं,
करि हस्तक बहु भाँति करति कर मैं कोउ जिय कौं,
नैन-सैन सौं लेति कोऊ हरि सैन नैन कौ,
सीस फिराइ फिराइ देति कोउ सीस मैन कौ॥ ५१॥
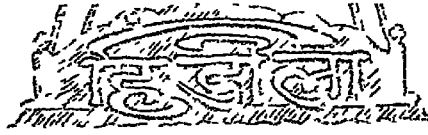
लंक लचाइ अप्सरनि की लंकहिँ कोउ तोरति,
मुख मरोरि कोउ गंधर्बनि के मुखहिँ मरोरति।
उच्च कुचहिँ उचकाय कोऊ संकर-उर सालति,
ग्रीव हलाइ संकोच-भार कोउ सुर-गर घालति ॥ ५२ ॥

जानु-भेद-जाह्नवी जानु सौँ कोउ प्रगटावति,
ऊरु-भेद-रंभा कोउ ऊरुनि सौँ उपजावति।
किंकिनि, कंकन, नूपुर की धुनि धूम मचावति,
अतन पंचसायकहिँ घेरि बहु नाच नचावति ॥ ५३ ॥

गाइ मल्हार छाइ आनँद कोउ सारँग-नैनी,
कल कल्यान-मेघ-झर लावति कोकिल-बैनी।
लेति देस की ललित तान कोउ ऐरावत-गति,
दमकावति गूजरि मुद मंगल सौदामिनि-तति ॥ ५४ ॥

सुभ सुघरइ-दीपक-लौ सी कोउ गोप-कुमारी,
भूपाली सौँ देति कान्हरायहिँ सुख भारी।
ध्रुवपद सौँ इक ध्रुव-पद करति राग रागिनि कौँ,
सरिगम सौँ इक निधिप करति स्तुति बड़-भागिनि कौँ ॥ ५५ ॥

अलबेली इक तान-जोड़ के परी ख्याल मैँ,
आरोही अवरोही करति अलाप-चाल मैँ।
कोउ गमकावति गमक ठमकि कोउ तमकि तराना,
कोउताननि के तनति तरल बहु ताना-बाना ॥ ५६ ॥
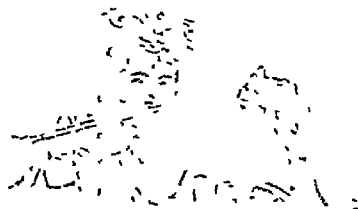
सुभ अवसर जिय जानि मानि मन मोद महाई,
केती मिलि स्रुति-धारिनि की ज्यौनार जमाई।
कोऊ पखावज-कलस लियै सनमान-जतावति,
परन-नीर लै जगत-पीर सौं हाथ धुवावति ॥ ५७ ॥

कोऊ तानपूरा की लै कर माहिँ सुराही,
मधुर सुखद सुर-सरबत मंजुल देति उमाही।
कोउ काँधे पर लिए बीन-बहँगी वर नारी,
षट-रस व्यंजन रागनि के परसति रुचिकारी ॥ ५८ ॥

लिए सरंगी की किसती कोऊ सुकुमारी,
मृदु मोदक, कतरी काटति ताननि की ढारी।
देति ताल-चटनी कोउ लै मंजीर-कटोरी,
सकल सवाद सवाँरन के हित आनँद-बोरी ॥ ५९ ॥

लै मुहचंग उमंग भरी कोउ विनय सुनावति,
जेवँहु जेवँहु जेवँहु जेवँहु की धुनि लावति।
कोऊ पाकसासन-समाज पर ताल बजावति,
कोउ सुर-बनितनि कौं चट चुटकिनि माँझ उड़ावति॥ ६० ॥

दोउ दिसि ह्वै ह्वै धन्य जन्म जिनके सुर मानत,
सेवतिँ रुचि अनुसार भाव भृकुटी सौं जानत।
लखतिँ गूढ़ अति भाव सुनतिँ आपुस की बातैं,
लहतिँ स्रौन-दृग-लाहु लाड़िली-लाल-कृपा तैं ॥ ६१ ॥

एक ओर ललिता औ दूजी ओर बिसाखा,
प्रेम-पदारथ-देनहारि सुर-तरु की साखा।
दंपति-सुख-संपति-अनूप-निधि की रखवारिनि,
कृपा-कलित मुसक्यानि मंद की नित अधिकारिनि॥ ६२॥

जिनकौ कछु न कहाइ जदपि स्रुति सेस बखानैं,
चहन लहन अरु कहन आपुनी आपुहिं जानैं।
काछि कछौटा बाँधि फेंट पटुली पर ठाढ़ी,
लंक लचाइ देतिं मचकी दुहरी अति गाढ़ी॥ ६३॥

बढ़ि झोंटा अति तरल भए लाग्यौ पट फहरन,
लग्यौ पाट द्रुम-बेलिनि के झुंडनि मैं झहरन।
पल्लव पुहुप प्रतेक पैं। मैं कछु लगि आवत,
परि परि भूमि पाँवड़े लौं परमादर पावत॥ ६४॥

कबहुँ लतनि मैं लगि कोउ अंग उघारति सारी,
चौंकि चकाइ तुरत तिहिं सकुचि सम्हारति प्यारी।
लखति लाल की ओर लाज-स्नेहसित नैननि सौं,
कछु जाननि की चाह जाति जानी सैननि सौं॥ ६५॥

पै उनकौं लखि लखत ताहि दिसि मृदु मुसुकौंहैं,
कहि कछु बात बनाइ लेति करि नैन निचौंहैं।
तब कछु बोलि ठठोलि लाल यह ख्याल बनावत,
हँसि निज ओर लखाइ लाड़िलिहुँ हरखि हँसावत॥ ६६॥

एक बेर निज ओर पंग की होत उँचाई,
सम्हरि न सकी सयानि सरकि पीतम-उर आई।
लियौ लाल भरि अंक रंक संपति जनु पाई,
भौचक सी ह्वै रही कही मुख बात न आई ॥ ६७ ॥

सावधान ह्वै छूटि भुजनि सौं पुनि बिलगाई,
भ्रकुटी-कुटिल-कमान ढिठाई जानि चढ़ाई।
करि गँभीर रचना चतुराई सौं बैननि मैं,
छमा कराई छैल छबीली सौं सैननि मैं ॥ ६८ ॥

पुनि मन मैं कछु गुनि गोपाल मंद मुसुकाने,
निरखि नवेली-ओर कटाच्छनि सौं ललचाने।
अति अद्भुत उत्तर ताकौ तब दियौ रसीली,
ओठ हलाइ ग्रीव मटकाइ रही गरबीली ॥ ६९ ॥

अधर दबाइ हलाइ ग्रीव मुसक्याइ मंद अति,
भलै भलै कहि कान्ह ठानि मन अचगरि की मति।
मिस करि जानि बूझि बरबसहिँ सरकि इत आए,
चकपकाइ चट प्यारी सौं गाढ़ैं लपटाए ॥ ७० ॥

औचक अमल कपोल चूमि चट पुनि बिलगाने,
ललितादिक-दिसि देखि दबाइ दृगनि इठलाने।
लाड़नि लोचन किये लाड़िली कछु अनखौंहैं,
पै लखि लाल अधीर धीर धरि किये हँसौंहैं ॥ ७१ ॥

उठी उमंग तरंग बैठि नहिँ सके कन्हाई,
अति निहोरि कर जोरि किसोरिहुँ नीठि उठाई।
बहु विधि विनय सुनाइ खाइ हाहा बरियाईँ,
ललिता और बिसाखा इक इक ओर बिठाईँ ॥ ७२ ॥

लियौ लपेटि फेट मैँ कसि समेटि दुपटा कौँ,
दियौ अनंगहिँ इंद्र-धनुष जनु जगत कटा कौँ।
अखिल तान-बानि की विसद निषंग बाँसुरी,
दई बाँधि तिहिँ संग भंग जो करति पाँसुरी ॥ ७३ ॥

उनहुँ लियौ उत कटि तट उरसि छोर निज पट कौँ,
मृदु मुसकाइ उचाइ निचाय नैकु घूँघट कौँ।
मनहुँ मानि मन माप संभु नहिँ धरयौ अंग पर,
पूर्न रूप सौँ सुधा स्रवत बिधुवर अनंग पर ॥ ७४ ॥

पुनि घूमनि चुनि चारु घाँघरे की उमंग सौँ,
नासा अधर मरोरि हँसी रँगि अनख-रंग सौँ।
मनु सुकुमारि उठाइ सकति नहिँ निज उछाह कौँ,
देति भार ताकौ अति सुखद सयानि नाह कौँ ॥ ७५ ॥

लियौ कछौटौ काछि चढ़ाइ कछुक इत औ उत,
मुरवनि सौँ रंचक उचाइ सकुचाइ सान-जुत।
मनहुँ हरित घन सघन सहित-दामिनि-जुरि आए,
पन्ननि के द्वै धराधरनि की संधि समाए ॥ ७६ ॥
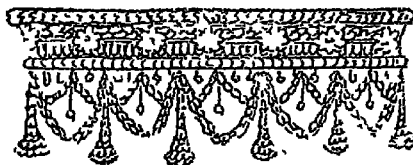
दुहुँ दिसि तैं दोउ दमकि दूमि लागे झुकि रेलन,
लखि सुषमा सखिजन लागीं सुखसार सकेलन।
इक छबि-छकि चकि रही एक कौं एक लखावति,
"बलिहारी" कहि एक जनम-जीवन-फल पावति ॥ ७७ ॥

परम समीपिनि दोऊ साधि सुर मधुर रसीले,
कल कोकिलनि गुमान-गहक निज ताननि कीले।
अति हुलास सौं ललकि लगीं सावन सुभ गावन,
अपर रागिनिनि सोइ पद पावन कौं तरसावन ॥ ७८ ॥

बढ़ी पैंग पुनि बहुरि पाट द्रुम-डारनि परसत,
इत उत के पल्लव उत झुकि परसन कौं तरसत।
एक ओर सौं झमकि झूमि आवति उमंग सौं,
एक ओर सौं कछु सिथिलित सी सरल ढंग सौं ॥ ७९ ॥

बैठत उठत लाड़िली के लालन कछु मन कहि,
ग्रीव हलाइ नचाइ भौंहैं विहँसे उत कौं चहि।
चित-चोरनि चितवनि सौं चपल चितै सकुचानी,
मुसक्यानी मुख मोरि मंद मन की मन जानी ॥ ८० ॥

अद्भुत अकह अनूप अनंत हाय-भायनि की,
छुरतिं लरी की लरी भरी अति चित-चायनि की।
इहिं विधि बिबिध विनोद-मोद-मंडित दोउ झूलत,
बनि बिहंग बहुरंग लखत सुर सुरपुर भूलत ॥ ८१ ॥

स्रम-जल-कन अति-अमल आनि अलकनि अधिकाने,
मनु सिँगार कैँ तार हास-मुकता मन-माने।
सोऊ पिय-प्यारी-अनूप-पानिप सौँ लाजैँ,
है पानी च्वै परैँ पाय परसन के काजैँ ॥ ८२ ॥

आनन हूँ मैँ कछु औरै सुषमा सरसाई,
गौर-स्याम दुति माहिँ अधिक आई अरुनाई।
अंग अंग के सहित उमंग मनहुँ हलकन सौँ,
दोउ-घट के अनुराग प्रगट दीसत छलकन सौं ॥ ८३ ॥

जानि थकित हित मानि ठानि बहु नेह-निहोरे,
आपुस मैँ करि सैन बैन रचि अति रस-बोरे।
मृदु मुसक्याति निहारि नैन संजुत-सुघराई,
बिनय बिसाखा औ ललिता पग परसि सुनाई ॥ ८४ ॥

मनमानी है चुकी मानि मन-बात हमारी,
स्रम मेटहु अब नैँकु पौँढ़ि दोऊ पिय-प्यारी।
मंद मंद सानंद पाट हम पकरि झुलावैँ,
दोउनि सुख सरसात निरखि नैननि सियरावैँ ॥ ८५ ॥

सुनि हितूनि के मृदुल बैन बोरित हित रस मैँ,
नीठि नीठि रोकी मचकी जनु परि परबस मैँ।
परसि परसि पग पुहुपि पैँग ललिता ठहराई,
दूरि करति ज्यौँ भक्ति चारु चित-चंचलताई ॥ ८६ ॥
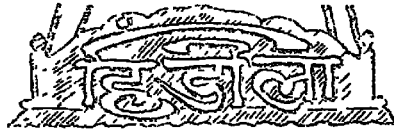
सुमुखि सुलोचनि भरीँ-भाय चहुँ दिसि तैँ धाईँ,
मानहुँ मन-थिर होत सकल सिधि निधि जुरि आईँ।
सादर पुलकि पसीजि रीझि सो सुमन उठाए,
उझकत झूलत मदन-बान लौँ जो महि आए ।। ८७ ।।

नैननि लाइ चढ़ाइ सीस कोउ अति सुख पावति,
चूमि कोऊ रस घूमि झूमि सुधि बुधि बिसरावति ।
रही सूँघि औ ऊँघि एक द्वै सुमन मिलाए,
तीन लोक फल चारि वर्ग सौँ मनहिँ हटाए ।। ८८ ।।

राई लोन उतारि कोऊ कछु अधर हलावति,
कोउ कनपटियनि चाँपि चारु अँगुरिनि चटकावति।
लालन-कर निज करनि बीच करि कोउ सहरावति,
कोउ प्यारी के पकरि पानि निज अंगनि लावति ।। ८९ ।।

उतरि परीँ दोऊ तुरंत अंतर-हित भीनी ।
सिमिटनि सूँति सँवारि सेज सज्जित पुनि कीनी।
अति उमाह सौँ पकरि बाँह दोउनि बैठार्यौ,
लै कोमल पट परसि बदन स्रम-सलिल निवार्यौ ।। ९० ।।

सुधा-स्वाद-सुख बाद-करन-हारे रस-भीने,
सुचिता सहित सवाँरि धारि दौननि फल दीने ।
चुनि चुनि रुचि अनुसार दुहूँ दोऊनि खवाए,
महा मोद मन मानि पानि-आनन-फल पाए ।। ९१ ।।

सीतल स्वच्छ सुगंध सलिल लै कंचन झारी,
दोउनि कौं अँचवाइ चाइ भरि चहत मुखारी।
बिसद बिलहरी खोलि उसीर-रचित पनसीरी,
हरनि-हरास बरास-बसित दीनी मुख बीरी ॥ ९२ ॥

सजि सनेह सौं थार आरती उमँगि उतारी,
मनु पतंग बनि दीप देह-दुति पै बलिहारी।
चहुँ दिसि तैं उमगाइ धाइ आरति सब लीनी,
पाइ प्रसाद प्रसन्न नाद सौं जै-धुनि कीनी ॥ ९३ ॥

मृदु उसीस दै सीस दुरे सुख सौं दोउ दंपति,
मृदुता-सीस-उसीस सुखद सुख के सुख-संपति।
इक लजात सकुचात गात पट-ओट दुराए,
इक ललचत मुसक्यात ओठ औ अधर दबाए ॥ ९४ ॥

सहज सहज लागीं दोऊ गहि पाट झुलावन,
ब्रह्मादिक के भूरि भाग कौ मान मिटावन।
परम प्रवीन प्रभाव प्रकृति पहिचाननहारी,
झोंका लगन न देतिं देतिं गति अति रुचि-कारी ॥ ९५ ॥

आगहिं तैं गहि पाट उमहि अपनी दिसि ल्यावतिं,
पुनि कछु बढ़ि अति सरल भाव सौं झुकि लौटावतिं।
ज्यौं अतिथिहिं सादर उदार आगैं ह्वै ल्यावत,
बिदा करन की बेर फेर मग लौं पहुँचावत ॥ ९६ ॥

लागैं सुखद समीर अंग आरस-रस भोए,
पलकैं लईं लगाइ दोऊ आनंद समोए।
सोवत जानि सुजान सखी गहि मौन थिरानीं,
इक इक करि टरि सकल जाइ कुंजनि विरमानीं॥९७॥

आहट विगत विचारि चारि दिसि प्रीतम प्यारे,
हँसि भरे दृग सहज सहज सहुलास उघारे।
मानहुँ साँचहिं लगी नींद कहि हँसि सुखदाई,
गुदगुदाइ गोरिहुँ दृग की अलसानि छुड़ाई॥ ९८ ॥

आपुहुँ उतरि निकुंज चले दुहुँ दुहुँ सुखकारी,
जय जय जुगल किसोर जयति ब्रज-विपिन-विहारी।
जय दोउ इक-मन एक-प्रान एकहि-रस-मय जय,
आकारहिं करि पृथक स्याम स्यामा जय जय जय॥ ९९॥

सावन सुकल पुनीत परम तिथि पूरनमासी,
रतनाकर-उर मैं तरंग उमड़ी सुखरासी।
*मन[१] इंद्रिय[५] अरु भक्ति[९] सहित गोपालहिं[१] लायौ,
तिहिं तरंग मैं रचि झूलन अति रुचिर झुलायौ॥१००॥

संवत १९५१।

असद् काव्य औ सम्मति मैं, यह कठिन न्याव अति,
बुद्धि-रंकता अधिक प्रकासत कौन, धीरमति;
पै दोउ दोषनि मैं, बरबस अकुतैवौ चित कौं
न्यून हानिकारक सुविवेकहिं बहकावन सौं ॥
चूकत वामैं कछू एक यामैं अनेक हैं;
दूषित दूषन देत दौरि दस लिखत एक हैं ॥
क्रूर कोऊ इक बेर जगत मैं निजहिं हँसावैं,
पै कुपद्य कौं एक गद्य मैं किते बनावैं ॥

समालोचनादर्श

नर विवेचना, घड़िनि समान, मिलतिँ द्वै नाहीँ,
पै अपनी अपनी कौँ सब पतियात सदाहीँ ॥
कबिनि माहिँ सदकाव्य-सक्ति विरलय ज्यौँ आई,
त्यौँ विवेचकनि-भाग रसास्वादन-लघुताई;
दैव दियैँ बिनु सुभग सक्ति दोऊ नहिँ पावत,
लिखन-हेत कै तर्क-हेत जे इहिँ जग आवत ॥
ते सिखवन के जोग्य आप जे होहिँ कुसलतर,
ते दूषहिँ तौ फवै आप जिनि कियो काव्य बर ॥
निज रचना कौ पच्छ साँच यह कर्तन माहीँ,
पै निज मत कौ कहा विवेचक कौँ हठ नाहीँ ?

पै करि गूढ़ विचार चारु मति मत यह भाषत,
बहुधा मनुष विवेक-बीज निज हिय मैँ राखत ॥
कम सौँ कम इक अल्प प्रकास प्रकृति दिखरावति,
रेखा, जदपि अपष्ट तदपि, सुध- खंचित भावति ।
पै उद्धस ढाँचौ उत्तम औ सुभग चित्र कौ,
जदपि यथारथ विरचित लसत, ललित चरित्र कौ,
भरैँ रंग वेढंग भदेस तदपि ज्यौँ भासै,
त्यौँ निकाम विद्या सुबुद्धि कौँ विसिष विनासै ।
विद्यालय-जालनि मैँ केतिक हैँ बौराने,
बने भँडेहर किते, प्रकृतिकृत कूर अयाने ॥

चमत्कार की खोज माहिँ निज बुद्धि नसावैं,
तब अपने बचाव कौं बनन विवेचक धावैं।
दह्यौ जात प्रत्येक, सकै कछु लिखि कै नाहीं,
प्रतिद्वंदिनि क्षीवनि के से द्वेषानल माहीं॥
रहत सदा बुधिविगत विरावन कौं अकुलाने,
हँसनहार दल माहिँ मिलत अति आनँद-साने॥
होत कुकवि कोउ कछु खचाइ जो सारद-द्वेसी,
ता काव्यहु तैं तौ केतिनि की जाँच भदेसी॥
केते कोविद बने प्रथम, पुनि कवि मनमाने,
बहुरि विवेचक भए, अंत घोंघा ठहराने॥
किते न कोविद न विवेचक पद के अधिकारी,
जैसैं खर न तुरंग होहिँ कहुँ खच्चर भारी॥
ये अधपढ़े बुधंगड़ जग मैं भरे घनेरे,
अर्द्ध बने ज्यौं कीट नील सरिता के नेरे,
ये अनबने पदार्थ कौन संज्ञा-अधिकारी
परत न जानि पौध इनकी ऐसी भ्रमकारी;
बदन होहिँ सत तौ इनकी गनना करि आवै,
कै इक मिथ्या बुध को, जो सौ सहज थकावै॥
पै तुम जो सद-सुयस-देन-पावन-अधिकारी,
सुबिबेचक पद परम पुनीत जथारथधारी,

होहु आप दृढ़, पहुँच आपनी कौं परमानौ,
कहँ लगि निज बुधि, रस-अनुभव, बिद्यागम जानौ;
अपनी थाह बिहाइ बढ़ो मत, गुनि पग धारौ,
अर्थ-सिथिलता मिलन-ठाम धरि धीर बिचारौ ॥

सकल बस्तु कौं प्रकृति जथारथ सीमा दीन्ही,
अभिमानिनि की मति बिदलित, बिवेक करि, कीन्ही।
ज्यौं जब एक ओर महि कौं बढ़ि बारिधि बोरत,
आन दिसानि महान थान बलुवे बहु छोरत;
त्यौं जब हिय मैं रहति धारना की अधिकाई,
प्रौढ़ समुझ की सक्ति रहति बलहीन लजाई;
जहाँ कल्पना-ज्योति जगति अति जगमगकारी,
बहति धारना की कोमल आकृति बनि बारी ॥
एक बुद्धि के जोग सास्त्र एकहि सुखदाई;
बिद्या इती अपार, इती नरमति-लघुताई।
बहुधा एकहु सास्त्र सम्हारति इक मति नाहीं,
ताहू मैं अरुझाति एकही साखा माहीं।
पूर्व-प्राप्त हम बिजय नृपति-गन सरिस गँवावैं,
ज्यौं ज्यौं तृष्ना बिबस अधिक लहिबे कौं धावैं,
जामैं जाकौ गम्य ध्यान राखै ताही कौ,
तौ करि निज अधिकार-प्रबंध सकै सब नीकौ ॥

प्रकृति-प्रभाव निहारि प्रथम निज सुमति सुधारौ,
ताके जाँच-जंत्र सौं, जो नित इक-रस-वारौ।
प्रकृति अचूक, सदा सुंदर दैवी द्युतिवारी,
विमल, विगत-परिवर्त्तन, औ सब जग-उजियारी,
सब कछु कौं दाइनि जीवन बल औ सोभा की,
कारन औ उद्देस्य, कसौटी सकल कला की।
तिहि भँडार सौं कला, कुसलता उचित प्राप्त करि,
विन दिखाव निज काज करति, प्रभुता *अतंक दरि;
त्यौं सुज्ञानप्रद आत्मा कोउ सुंदर तन माहीँ,
जीवन दै पोषति, सु ओज सौं भरति सदाहीँ;
प्रतिगति सोधति, अपर सकल स्नायुहिँ पोषति नित,
आप अदिष्ट सदा, पै कारज माहिँ रहति थित॥
किते चातुरी जिन्हैँ दैव्र दीन्हीँ विसेस चित,
चहति तेतियै और, सुभग ताके प्रयोग हित;
बहुधा तर्कऽरु वाक्यचातुरी प्रतिअपकारी,
जदपि बने हित-हेत परस्पर ज्यौँ नर नारी॥
काव्य-तुरंग सुढंग चलावन मैँ चतुराई,
ताके तातैँ करन माहिँ कछु नाहिँ बड़ाई;
काज कठिन अति ताकी बलगदता कौ सासन,
दैबौ द्रुत दौराइ न कछु गौरव परकासन।

सत्ताईस
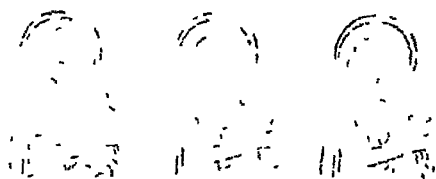
यह बाजी परदार, सुसील असील तुरी लौं,
प्रगटत पूरन गुन प्रभाव रोकै तुम जौं जौं ॥
नियम पुरातन आविष्कृत, जो कृत्रिम नाहीं,
आहिं प्रकृति, पर प्रकृति घिरी परिमित पथ माहीं;
प्रकृति होति केवल, स्वतंत्रता लौं प्रतिबंधित,
तिनहिं नियम सौं पहिले जो ताही के निर्मित ॥
गुनहु भारती निरमति कहा नियम उपकारी,
कहाँ सिथिलता उचित, गाढ़िता कहँ रसवारी ।
निज संतानहिं उच्च मेरु-गिरि पै दिखराए,
अति दुर्गम ते पंथ चले तिन पै जे भाए;
पुरस्कार थाई, ऊँचौ करि, दूरि दिखायौ,
सोई पथ सौं चलन काज औरनि उकसायौ ॥

उचित उदाहरननि मैं सद सीक्षा जो थाई,
इन संची उन सौं उन दैव कृपा सौं पाई ।
सहृदय, सुधर विवेचक कवि उत्साह बढ़ायौ,
पूरितप्रमा प्रसंसा करिबौ जगहिं सिखायौ;
समालोचना तव कविता की सखी सुहाई,
मंडनि सोभा, तथा विसेष करनि मन-भाई ।
पै पछिले लेखक सो सुभ उद्देस भुलाने,
सके नायिकहिं मोहि नाहिं दासिहिं अरुझाने;

कविनि विरुद्ध प्रयोग किये तिन निज बल तीखे,
निस्चय निंदन हेत तिन्हैं जिनसों सब सीखे ॥
त्यों सीखे कछु आजकाल के औषधिवाले,
बैद-व्यवस्थनि पढ़ि बनि बैठन बैद निराले,
निडर प्रयोग करनि मैं नियम निपट मनमानें,
करत चिकित्सा औषधि, कहि निज गुरुहिं अयाने ॥
किते पुरातन-कविनि-लेख पर दाँत लगावैं,
इनके सदम न काल न कीट कबहुँ विनसावैं ॥
केते सूखे स्पष्ट, रहित नव उक्ति सुहाई,
सिथिल नियम निरमत कैसें करिबौ कविताई ॥
ये, विद्या-प्रकास-हित अर्थानंद नसावैं,
वै अनर्थ करि अर्थ-तातपर्यहिं बहकावैं ॥
तातैं तुम जिनकी विवेचना रखति सुपथ रति,
चाल चलन प्राचीननि की जानौ आछी गति;
तिन गाथा अरु वर्न्य प्रयोजन प्रति पंक्तिनि के,
धर्म, देस, प्रतिभा, जो सुखद समय मैं तिनके।
आछी भाँति ध्यान राखैं बिन इन सबही के।
जदपि सकौ करि तुम कुतर्क, पर न्याय न नीके।
बालमीक मुनि रचित सदा अध्ययहु सुरुचि करि,
पढ़ौ ताहि भरि द्यौस, रैन भरि गुनौ ध्यान धरि;

तासैं बिसद बिबेक लहहु, निज नियम ताहि सैं,
कबिता बिमल बारि संचौ सरिता आदहिं सैं ॥
आमुसही मैं करि मिलान तिहि काव्य बिचारौ,
आदि सुकबि की वानी निज चरचा निरधारौ ॥
कालिदास जब प्रथम उदार हियैं निरधारी
अमर भारतहुँ सौं रचना चिर जी निहारी,
समालोचकनि नियम गम्य सैं उच्च लखान्यौ,
सीख लेन औरनि सैं घृणित प्रकृति छुट मान्यौ ॥
पै जब प्रति खंडहिं करि सूच्छम दृष्टि बिचारयौ,
बालमीक अरु प्रकृति माँहि नहिं भेद निहारयौ,
यह निस्चय उर माहिं आनि अति विस्मय पायौ,
निज रचना उदंड गति के वेगहिं ठहरायौ;
औ कविता स्रमसाध्य अटल नियमनि यौं नाधी,
मनहु आप मुनि भरत सुद्ध प्रति पंक्ती साधी ॥
यासौं सीखौ नियम पुरातन के गुन गावन,
प्रकृति-पंथ कौ हैं चलिबौ तिन-पथ कौ धावन ॥
कितो रम्यता अजौं न कोउ वचननि कहि आवैं,
तिनमें आनँद औ विषाद दोउ मिस्रित भावैं।
काव्य-कला संगीत सरिस जानौ मन माहीं,
दोऊ मैं सौंदर्य किते जे उचरत नाहीं;

तिन्हैं सिखावनजोग सूत्र कोऊ कहुँ नाहीं,
केवल परम प्रवीननि के आवत कर माहीं ॥
जहँ कहुँ कोऊ नियम होहिँ न समर्थ यथारथ,
(काहे सौं कै नियम-काज साधन उदेस पथ,)

तहँ अभीष्ट जो कोउ स्वतंत्रता सुभगति साजै,
तौ स्वतंत्रता ही ता थल कौ नियम विराजै ॥
जो प्रतिभा कवहूँ लाघव सौं करि अति प्रीती,
छोड़ि नियत पथ चलै भलैं तौ नाहिँ अनीती;
करि उदंड क्रमच्युति समान मर्यादहिँ त्यागै,
लहै कोऊ लावन्य जो न नियमनि कर लागै,
विना जाँच ही जो हिय मैं अधिकार जमावै,
सकल इष्टफल एक वारही सहज लहावै ॥
तैंसहिँ वन इत्यादिक सुभग दृस्य मैं भारी,
होत पदारथ ऐसे किते नैन-रुचिकारी,
जो सुप्रकृति-सामान्य-सीम सौं निकरत न्यारे,
आकृतिहीन पहार तथा अति वढ़े करारे ॥
सुकवि, प्रसंसनीय विधि, भलहिँ नियम कहुँ तोरहिँ,
करहिँ दोष जिहिँ सोधन सद जाँचक* साहस नहिँ ॥
पै जद्यपि प्राचीन कवहुँ निज नियमहिँ तोरैं,
(ज्यौं वहुधा राजा निज-कृत-विधि सौं मुख मोरैं,)।

* इस लेख में 'जाँचक' शब्द जाँच करनेवाले विवेचक के अर्थ में युक्त किया गया है।

सावधान पै, अहो आधुनिक! तुम नित रहियौ,
दिखरायौ जो सुखद पंथ तिन सोई गहियौ;
तोरन ही जौ परै नियम कोउ इष्ट-लाभ-हित,
तौ ताकौ उद्देस्यसीम नाँघौ न कदाचित;
सो, पुनि कबहुँहि, करौ, तथा अति आवस्यक गुनि;
औ उनकौ प्रमान, ता तोरन मैं, राखौ चुनि ॥
नातरु खंडक दयाहीन निज कलम चलैहैं,
ख्याति तिहारी लै प्रचार निज नियमनि दैहैं ॥
या जग मैं केते घमंड करि इमि मतिमूसित,
सुभ आर्षहु स्वतंत्र सोभा जिन लेखैं दूषित ॥
रूपक कोऊ भयंकर औ भदेस अति भासै,
लखैं पृथक करि, कै है अति नेरैं, अन्यासै,
जो, केवल निज प्रभा, ठाम सुंदर अनुहारी,
लहत उचित अंतर सौं आकृति, सोभा प्यारी ॥
चतुर सेनपहिं नित न अवस्यक बल दिखरावन,
बाँधि बराबर दलनि, जुद्ध करि सुद्ध सुभावन;
देस काल अनुसार उचित ताकौं आचरिबौ,
गोपन सेना कबहुँ भासि भाजत कहुँ परिबौ।
बहुधा छल भूपन ते जे दूपन दरसानें,
बालमीक ऊँघ्यौ न स्वप्न मैं हमहिं भुलानें ॥

अजौं लतनिकृत हरित पुरातन देवल राजैं,
उच धर्म-द्रोही-कर-पहुँचन सौं छवि छाजैं।
बचे दाह सौं, तथा द्वेष के भीष्म रोष सों,
सत्यानासी जुद्ध, कालहू सर्वसोष सौं॥
लखहु! प्रदेसनि सौं बुध धूप दीप लै धावत!
सुनहु! सकल भाषा मैं सब इकमत गुन गावत!
ऐसी उचित स्तुति मैं सब निज बानि मिलावौ,
सब जग मिलि जो गाइ रह्यो तामैं सुर लावौ॥
धन्य छत्रधर सुकवि! समय सुभ जीवनधारी,
सकल जगत अस्तुति के उचित अमर अधिकारी,
बढ़त मान जिनकौ ज्यौं ज्यौं जुग अंतर पावैं,
जैसैं नद चौड़ात चले आगैं नित आवैं;
भू-भविष्य-नर-जाति रावरौ सुयस सरैहैं,
अबहिं गुप्त जे भूमि सोऊ सब गुन गन गैहैं!
अहो स्वय परकास! करै कोउ किरन तिहारी,
तुम संतान अधम, अंतिम के उर उजियारी।
(निबल पच्छ जो दूरिहिं सौं तुव उड़नि पछावै,
उत्तेजित पढ़ि होत कँपत कर कलम उठावै)।
मृषा बुधनि दिखरावन-हित यह गुप्त ज्ञान वर,
सुमति सराहन स्रेष्ठ रखन संसय अपनी पर॥

तैंतीस

F. 5

सकल कारननि मैं जे अंध करन जुरि आवैं,
चूकभरी नर-मतिहिं तथा चित कों बहकावैं,
सो जो निर्बल हियें प्रबलतम जोर जमावैं,
है घमंड जो दोष निरंतर कुबुधिहिं भावै ॥
सद्गुन की जो करत न्यूनता दैव-भँडारी,
ताकी पूरति करत घमंड थोक दै भारी;
ज्यौं तन मैं त्यौं आत्मा हूँ मैं परत लखाई,
जो बल-रक्त-बिहीन भरित सो वात सदाई;
बुधि जहँ थकित घमंड तहाँ बनि त्रान पधारै,
सुमति-हीनता-कृत खालहिं पूरित करि डारै ॥
साधु बिवेक एक बारहु जैा सो घन टारै,
सत्य सूर्य को प्रबल प्रकास हियहिं उँजियारै ॥
अपनी मति पर अँड़हु न बरु निज त्रुटि जानन हित,
लेहु काज प्रति मित्रनि औ प्रति सत्रुनि सैां नित ॥
अनरथमूल महान छुद्र विद्या छिति माहीं;
पीवहु सुरसति-रस अघाय, कै, चीखहु नाहीं ।
छुद्र घूँट याकी चित्तहिं अतिसय बौरावै,
पै पीवैा आतृप्त ठिकाने पुनि तेहिं ल्यावै ॥
बानि-दान सैां उत्तेजित ह्वै आदि माहिं नर,
निडर जवानी मैं ललचात कला-संगनि पर,

औ अपने परिमित चित की पुहुमी सैं देखैं,
निकट दृश्य ही पीछे कौ प्रस्ताव न पेखैं;
पै विचित्र विस्मयजुत अवलोकत आगैं बढ़ि,
अमित सास्त्र के दूर दृश्य नूतन आवत कढ़ि।
प्रथम रीझि त्यौं हम हिमगिरि चढ़िवौ अभिलाषैं,
खाड़िनि पै चढ़ि जानि लेत नभ पै पग राखैं।
ज्ञात होत हिमदल सदैव थाई पछियाने,
प्रथम स्रृंग औ मेघ परत अंतिम से जाने;
पाइ उन्हैं पै हम इत उत कातर ह्वै देखैं,
वर्द्धमान स्रम परिवर्द्धित मग कौं जब पेखैं;
अति अधिकौहैं दृश्य चपल चख पलहिं थकावैं,
स्रृंगनि ऊपर स्रृंग गिरिनि पै गिरि चलि आवैं॥

पूरन जाँचक पहिले पढ़हि ग्रंथ कविता कौ,
सोइ दृष्टि सौं जासौं रच्यौ रचयिता ताकौ।
जाँचहि सोधि समस्त न लघु छिद्रनि मन लावै,
जहाँ प्रकृति आचरहि चोप चित चाक चढ़ावै;
तिहि मात्सरिक मद सुख हित खोवै नहिँ मन कौं,
अति उदार आनंद कवित-गुन पै रीझनि कौं॥
पै ऐसी गीतनि पै जिनमैं ज्वार न भाटी,
सुद्ध सिथिल औ नीच धरैं एकै परिपाटी,

दोषनि सौं बचि, एक मंद गति जो नित राखत,
निंदा उचित न, बरन सुचित निद्रा बुध भाषत।
कविता मैं ज्यौं प्रकृति-दृश्य मैं जो मन मोहै,
प्रति अंगनि कौ पृथक सुडौलपनौ नहिँ सोहै॥
जिहिँ सुंदरता कहत अधर दृग सो जनि जानौ,
पै मिस्रित प्रभाव सब कौ परिनाम बखानौ,
जैसैँ जब कोउ सुघर-रचित मंदिर अवलोकौ,
बिसमयकारक सब जग कौ औ भारतहू कौ॥
भिन्न भाग नहिँ पृथक पृथक अजगुत उपजावैँ,
सब मिलि एकहि बार लुभौहैँ दृगनि रिझावैँ,
कोउ उचान लंबान न तौ चौड़ान भयंकर,
सब मिलि अति उत्कृष्ट लसत अरु अति सुडौल वर॥
जो चाहत देखन सब विधि अदोष कविताई,
सो चाहत जो भई, न है, न होहिगी भाई॥
प्रति रचना मैं करता कौ उद्देस्य विचारौ,
(उन अभीष्ट सौं अधिक कोऊ नहिँ बूझनिहारौ),
औ जो साधक जोग्य तथा व्यवहार उचित वर,
तौ जस-भाजन, छुद्र छिद्र कहुँ रहिवेहू पर॥
अभ्यस्तनि, औ कवहुँ सुमतिनि परत यह करिवौ,
गुरु-दूषन-परिहार-हेतु लघु दूषन धरिवौ।

सब्दायुध साहित्यकार-कृत-नियम भुलैवौ,
[पै प्रसंस्य कहुँ किती तुच्छ वस्तुहिँ विसरैवौ ॥]
बहुत विवेचक, अनुरागी कोउ गौन कला के,
अंगिहि चाहत रखन अधीन अंग के ताके;
झाड़ैँ नित सिद्धांत, गुनैँ पै उपजहिँ प्यारी,
रुची मूढ़ता इक पै करहिँ सबहि बलिहारी ॥
कोऊ भडंगी सूर कथा यह प्रचलित जग मैँ,
भेँट भए इक बेर कहूँ कोउ कवि सौँ मग मैँ,
सुभ साहित्य कठिन चरचा मैँ अति अनुराग्यौ,
दूषन भूषन के बिचार करिवे मैँ लाग्यौ,
बचन-चातुरी औ गंभीर भाव ऐसैँ करि,
करत विदूषक रंगभूमि पै जैसैँ पग धरि;
अत कियौ निरधार सकल ते अति मति-हीने,
भरत-नियत नियमनि बाहर जिन हठि पग दीने।
ह्वै प्रसन्न कवि लहि जाँचक ऐसौ बुधिवाही,
दिखरायौ निज कृत नाटक औ सम्मति चाही;
विषय लखायौ औ रचना प्रबंध तिहिँ माहीँ,
रीति, भाव, समता, क्रम, अपर कहा कछु नाहीँ ?
सो सब सुद्ध-नियम सौँ निज प्रकास तहँ पायौ,
पै केवल इक जुद्ध कर्म नाहिँन दरसायौ।'

हैं ! यह कहा जुद्ध त्यागन कैसो ? बोल्यौ सो,
हाँ, नातरु चलिबो ह्वैहै मत त्यागि भरत को ॥
सो पुनि कह्यौ रिसाइ "दैव सौं ! सो कछु नाहीं,
हय गज रथ पायक ल्यावहु सब रँग थल माहीं" ॥
रंगभूमि मैं आइ सकत एतो न झमेलौ,
"तो नूतन निरमौ कै कढ़ि कछार मैं खेलौ" ।
या बिधि जाँचक लघु बिवेक औ बहु सिड़वारे,
अद्भुत पै नहिं सुद्ध, सुद्ध नहिं, खुचुर पियारे,
लघु भावनि सौं भरैं तथा इक अँग रुचि घेरे,
दूषित करहिं कलहिं, ज्यौं व्यवहारहिं बहुतेरे ॥
केते केवल उत्प्रेक्षहि मैं निज मति नाधैं,
चमचमात कोउ जुक्ति खोजि प्रति पँक्तिनि साधैं;
कोउ रचना पर रीझि न जहँ कछु जोग्य, जथारथ,
एक बुद्धि कौ घाल-मेल औ अस्तव्यस्त जथ ॥
कवि या भाँति, चितेरनि लौं लिखिबे मैं अकुसल,
प्रकृति बनावट रहित सहित, जीवन सोभा कल,
हेम, रतन के पोटनि सो प्रति अंग दुरावैं,
निज छमता को छिद्र अलंकारनि सौं छावैं ॥
सांची कला-कुसलता, अति मनरंजनिहारी,
है, सजिबो सब साज प्रकृति सोभा उपकारी,

भयौ पूर्वहू जो चिंतित बहुधा मन माहीँ,
या सुघराई सौं पायौ प्रकास पर नाहीँ;
सो कछु जाकौ साँच प्रमानित सब कोउ पावै,
चित्र हमारे हिय कौ जो हमकौं दरसावै ॥
ज्यौँ छाया प्रकास कौ आनँद अधिक बढ़ावै,
सहज सरलता उक्ति-चमत्कृति त्यौँ चमकावै ॥
कोउ रचना मैँ उक्ति-अधिकताही अपकारी,
ज्यौँ स्रोनित बिसेषता सौं बिनसैँ तनधारी ॥

अन्य किते निज सकल ध्यान भाषहिँ पर राँचैँ,
नर नारिनि लौं ग्रंथनि कौं बसननि सों जाँचैँ;
'लसति रीति उत्कृष्ट' सदा यौं भाषि सराहैँ,
दरि अभिमान, अर्थ पर करि संतोष, निबाहैँ ॥
सब्द लसैँ पातनि लौं, जहँ तिनकी अधिकाई,
तहाँ अर्थ-फल-लाभ बिसेष न देत दिखाई ॥
काँच पहलवारे लौं देति मृषा वाचाली,
प्रति ठामनि कौं निज भँड़ेहरी रंग प्रभाली;
परत पेखि नहिँ प्रकृति जथारथ रूप रसीलौ,
सब इक रँग झलमलत भेद बिन अति भड़कीलौ;
पै सद्-सब्द-प्रयोग, रहित परिवर्तन रवि लौं।
करत प्रकासित जाहि बढ़ावत तिहि सुखमा कौं;

करत परिष्कृत प्रभापुंज पूरत तिहि माहीं,
हेम कलित सब करत कछुक पै बदलत नाहीं ।
सब्द हृदयगत भावनि के पौसाक बिराजैं,
जेते ठीकमठोक सुघर तेते नित भ्राजैं,
उत्प्रेच्छा कोउ तुच्छ, उक्त कार सब्दाडबर,
यौं छबि देति गँवारि सजैं ज्यौं राज-साज-वर ।
पृथक रीति अनुकूल प्रथम विषयनि सुखमा मैं,
भिन्न बसन ज्यौं ग्राम, नगर औ राजसभा मैं ।।
किते पुरातन सब्द जोरि भए कीरति-कामी,
पदनि माहिँ प्राचीन, अर्थ मैं नव-पथ-गामी;
ऐसी ये स्रमसाध्य अकारथ वस्तु नकारी,
ऐसी रीति विचित्र माहिँ विरचित वरियारी,
मूरख के उर माहिँ मृषा अजगुत उपजावैं,
पै पंडित परवीननि कौं केवल विहँसावैं ।।
दरसावत भाँड़नि लौं ये दुर्भाग भड़ंगी,
सुघर सुजन कल कौन बसन कीन्यौ हो अंगी;
औ बस यौं प्राचीननि कौं अनुहरहिँ भगल भरि,
ज्यौं सतपुरुषनि कौं बानर, तिनके बागे धरि ।।
सब्दऽरु बसन रीति दोउनि कौ इक गुरु मानौ,
अति नव, कै प्राचीन, एक सौ बेढब जानौ;

बनहु प्रथम जनि नव टकसाल चलावनहारे,
तथा न अंतिम तजन माहिँ प्राचीन किनारे ॥
पै बहुतेरे काव्य-जाँच मैं छंदहि देखैं,
सुंदर, कुंदर पै, सुद्ध असुद्ध ताहि नित लेखैं;
दिव्य सरस्वति माहिँ सहस लावन्य जदपि हैं,
ये कन-रसिये मूढ़ सराहत स्वरहिँ तदपि हैं;
जो सुर-गिरि पर चढ़त नाहिँ निज चित्त सुधारन,
वरन परम सामान्य स्रवन-सुखही के कारन;
ज्यौं केते हरि-कथा-मंडली मैं आवैं नित,
संचन सुभ उपदेस नाहिँ, वरु गान सुनन हित ॥
ये केवल चाहत मात्रा एकहि सी आवैं,
जदपि खुले स्वर बहुधा स्रवनहिँ अति उकतावैं;
त्यौं अपनी बलहीन सहाय अधिक पद ल्यावैं,
औ इक सिथिल चरन मैं छुद्र सब्द दस पावैं।
औ उत वे जब एकहि लय कौ चक्कर साधैं,
औ नित बँधे अनुप्रासनि कौं निस्चय नाधैं;
जहँ जहँ सीतल मंद पौन पच्छिम सौं आवत,
तहँ तहँ पूरि परागपुंज परिमल वगरावत;
जौ कहुँ सरिता बिमल बहति, गति मंद, सुहाई,
तौ तहँ कंज, सिवार, मीन सोहत सुखदाई,

अंत माहिँ, दल जुगल मात्र पूरित करि, राखत
कछुक अनर्थ वस्तु सौं, जाहि उक्ति ये भाषत,
सोई दोहा वृथा पूर्न आहुति करि डारैं,
डेढ़-टाँगवारनि लौं भचकि भचकि पग धारैं ॥
देहु तिन्हैं अपने अनवीकृत लय, तुक जोरन,
औ सामान्य सुढर मढ़ियल कौ ज्ञान बटोरन;
तथा सराहौ ता तुक की सु सहज प्रौढ़ाई,
जामैं ओज पजन कौ, ठाकुर की मधुराई ॥
साँची सुभग सरलता जौ कविता मैं भावै,
अभ्यासहि सौं होहि न, ऐसहि औचक आवै;
जैसे वे, जिन सीख नृत्य विद्या की पाई,
चल फिर करत सहजतम भाँति, सहित सुघराई ॥
एतौ ही नहिँ इष्ट सदा कविता मैं, भाई,
कै कर्कसता सहृदय कौं न होहि सुखदाई,
परमावस्यक धर्म, वरन, यह सुमति प्रकासैं,
कै रचना के सब्द अर्थ-प्रतिध्वनि से भासैं।
चहियत कोमल वरन पवन जहँ मंद वहत वर,
सरिता सरल चाल वरनन हित छंद सरलतर;
पै भैरव तरंग जहँ रोरित तट टकरावैं,
उत्कट, उद्धत वरन, प्रवल प्रवाह लौं आवैं;

जहँ रावन लै जान चहत हठि हर-गिरि भारी,
होहि छंद-गति क्लिष्ट सब्दहू सिथिलित चारी;
पै ऐसो नहिँ जहँ हनुमत धावन वनि धावत,
नाँघत सिंधु निसंक, लंक गढ़ कूदि जरावत ॥
देखौ किमि भवभूति-काव्य-वैचित्र लुभावै,
सब प्रकार के भावनि की तरंग उपजावै।
जब प्रति पलट माहिँ दसरथसुत नई रीति सौं,
कबहुँ तेज सौं तपत, कबहुँ पुनि द्रवत प्रीति सौं;
कबहुँ नैन विकराल क्रोध की ज्वालनि जागैँ,
कबहुँ उसास उठैँ औ बहन आँसु दृग लागैँ ॥
सब देसनि मैँ निज प्रभाव नित प्रकृति बगारति,
बिस्व विजयतनि कौं सब्दहिँ सौं जय करि डारति;
सब्द-माधुरी-सक्ति प्रबल मन मानत सब नर,
जैसौ हो भवभूति भयौ तैसौ पदमाकर ॥
अति सौं बचौ, तथा त्यागौ उनकी दूषित गति,
जो रीझैँ अत्यंत न्यून, कै सदा अधिक अति ॥
छुद्र छिद्र खोजन सौं वृत्तिहिँ रखहु घिनाई,
प्रगटत यह गुमान गुरुता, कै मति-लघुताई;
वे मस्तिष्क, उदर ज्यौं, निस्चय उत्तम नाहीँ,
सबहि अरोचक, पै कछु पचि न सकत, जिन माहीँ ॥

पै प्रति श्रोपित उक्तिहुँ दहु न मोह-उमाहन;
बिस्मित मूरख होत, बिबुध कौ काज सराहन।
ज्यौं कुहरे मैं लखैं वस्तु गुरु देति दिखाई,
त्यौं गौरवाभासप्रद सील सदा सिथिलाई॥

किते बिदेसि, देस कवि सौं केते घिन मानैं;
केवल प्राचीननि, कै आधुनिकनि भल जानैं॥
या बिध सौं प्रति ब्यक्ति, धर्म लौं, कवि-निपुनाई,
इक समाज मैं गुनैं, अपर सब नष्ट सदाई॥
चहत नीच इहिं संपति मूँदि एक ठाँ ठासन,
बरबस एक देस पैं रवि की प्रभा-प्रकासन,
जो न बुधनि कौं दक्खिन ही मैं महत बनावै,
पै सीतल उत्तर देसहुँ मैं बुद्धि पकावै;
जो गत जुगनि माहिँ आदिहि सौं भयौ उदै है,
करत प्रकासित वर्तमान, भाविहुँ गरमैहै;
जद्यपि प्रति जुग उन्नति औ अवनति अवरेखैं,
कबहुँ दिब्य दिन लखैं, कबहुँ अति धूमिल देखैं॥
तातैं कविता नव प्राचीन बिचार न कीजै,
पै असदहिँ निंदा, औ सदहिँ सदा जस दीजै॥

किते न अपनी निज बिवेचना कबहुँ उमाहैं,
पै केवल निज नगर माहिँ प्रचलित मत ग्राहैं;

ये तर्कहिँ लहि लीक, तथा सिद्धांत सुधारैँ,
भुसे निरर्थहिँ गहैँ, न साऊ आप निकारैँ ॥
किते न रचना, पै रचिता के नामहिँ जाँचैं,
औ लेखहिँ नहिँ भलो बुरो, बरु मनुषहिँ खाँचैं,
यह सब नीच झुंड मैँ सो अति अधम अभागो,
जो सघमंड मंदता सौं धनिकनि पछलागो;
बड़नि सभा कौ नियत विवेचक नितप्रति वारो,
प्रभु-हित-लागि व्यर्थ बकवादहिँ ढोवनहारो;
महा दरिद्र बतावहि सो सृंगार-सवैया,
जाको कोऊ भुक्खड़ कवि कै हम तुम रचवैया,
देहु, बेर इक, कोऊ धनिकहिँ, पै तिहिँ अपनावन,
झलकन प्रतिभा लगति, कांतिमय रीति सुभावन,
ताके नाम पुनीत सामुहैँ टोप उड़त सब,
डहडहात प्रति खंड पूरि वासना-चमित फब ॥
यौं बहकत गँवार अनुसरन कियैं, बिन जोखे:
त्यौँ पंडित बहुधा सब जग सौं होइ अनोखे ।
रखत सर्व साधारण सौं भिन यौं, जो कहूँ वह,
चलैँ सुपथ, तो जानि बूझि कै चलैँ कुपथ यह;
मूधे विस्वासिनि ज्यौं तजहिँ धर्म नवग्राही,
नष्ट होहिँ, बरु बुद्धि अधिक अनि कै ह्वै वाही ॥

कितं प्रसंसत प्रात जाहि, निसि ताहि विनिंदत,
पै निरधारत सदा यथारथ निज अंतिम मत ॥
उपवनिता लौं ये सदैव कविता सौं विहरत,
छन सब विधि सनमानत, पुनि दूजे छन निदरत;
जब इनके निर्वल मस्तिष्क, कोट बिन पुर लौं,
प्रति दिन बूझ अबूझ बीच बदलत स्वपच्छ कौं ॥
औ कारन बूझौ तौ कहैं बुद्धि-अधिकाई,
तौ अधिकैहै आजहु तैं कल बुद्धि सवाई ॥
पुरुषनि मूरख गनैं, बनैं हम इमि बुधिधारी,
निस्चय त्यौं गनिहैं हमकौं संतान हमारी।
गए हुते भरि, या उत्साही देस अनादी,
एक बेर बहु धर्माचार्य वितंडावादी;
उनमैं सबसौं अधिक वाक्य जाके मुख मंडित,
सोई मान्यौ गयौ सबनि तैं गुरुतर पंडित,
धर्म, वेद, सबही विवाद के जोग थिराए,
काहू मैं नहिं मति एतौ कै जाहिं डराए ॥
पै अब बसे सांत है शंखादिक-मतवारे,
निज अनुहारी घोंघनि माहिं समुंदर खारे ॥
जब धर्महि धार्यौ बसननि बहु रंग बिरंगी,
कहा अचंभौ तौ जौ होहि बुद्धि बहु ढंगी ?

बहुधा तजि तेहि जो स्वाभाविक औ सुजोग्य अति,
प्रचलित मूरखताही जानि परति तत्पर-मति;
औ लेखक निर्विघ्न लाभ जस कौं अनुमानैं,
जियत तबहि लौं जो जब लौं मूरख मन मानैं ॥
केते निज दल, औ मतिवारनि कौं सनमानैं,
निजहिं सदा परिमान मनुष्य-जाति कौ जानैं ॥
औ लुभाय कै गुनैं करत गुन को आदर तब,
औरनि के मिस आत्मस्लाघा ही उचरत जब ॥
कविताई-तड़ होति राजनैतिक अनुगामिनि,
औ सामाजिक पच्छ बढ़ावत घिन निज धामिनि ॥
गर्व, द्वेप, मूरखता, तुलसी पैं चढ़ि धाए,
धर्मध्वज, रसलंपट, जाँचक भेस बनाए।
भई सुमति थिर पै हाँसी औ खेल थिरायें;
उन्नतिसील जोग्यता उभरति अंत दबायें ॥
पै जो वह पुनि आइ हमैं दृग-लाहु लहावै,
तौ नव खल औ सठ-समूह उठि खंडन धावै।
वरु वर बालमीकिहू जो अब सीस उठावै,
तौ कोउ दोष-दृष्टि निस्चय निज जीभ चलावै ॥
गुनहिं द्वेप नित ताकी छाँह सरिस पछियावै,
पै छाया लौं सार वस्तु कौं सत्य थिरावै।

डंप-घिरे गुन, राहुग्रस्त दिनकर लौं भावैं,
नहिँ निज वरु रोकहि की कलमसता दरसावैँ ॥
पहिलैँ जब यह रवि निज प्रखर किरण दरसावैं,
खींचहि भाप-पुंज जो याकी छटा छिपावैं;
अंत माहिँ पै सो घनहु तेहि पथहिँ सजावैं,
प्रतिबिंबिन नव प्रभा करैं द्युति दिव्य बढ़ावैं ॥
होहु अग्रसर करिवैं मैँ सद्गुन-उत्साहन;
तब की स्लाघा व्यर्थ लगै जब जगत सराहन ॥
वर्तमान कविता है, हाय! अल्प अति वय मैँ,
तासौं, उचित जिवैबौ तिहिँ, अनुकूल समय मैँ।
अब न दिखाई देत काल वह सुभ सुखदाई,
वर्ष सहस लौं जियत हुतो जब कवि-कविताई;
अब जस की चिरकाल-थिति सब भाँति बिलानी,
काढ़ी तीनहिँ कौ वस होय सकत अभिमानी;
नित भाषा मैँ खोट लखति संतान हमारी,
लहिहै सोइ गति देवहु अंत चंद जो धारी ॥
जैसैँ सुद्ध लेखिनी जब कोउ डौल बनावैं,
चतुर चितेरे कौ हिय-भाव दिव्य दरसावैं,
जामैँ इक नव सृष्टि जगति ताकी इच्छा पर,
तथा प्रकृति तत्पर आधीन रहति ताकैँ कर;

जब परिपक्व रंग कोमल ह्वै मेल मिलावैं,
उचित मंदता, चटक, माधुरीजुत द्युति, पावैं,
जब मृदुता-प्रद काल परम पूरनता पागै,
औ प्रति उग्राकृति मैं जीव परन जब लागैं,
रंग विसासी होत कला को तब अपकारी,
सनै सनै मिटि जाति सृष्टि सब जगमगवारी ॥
हतभागिनी कविता अप्रदा वस्तुनि लौं भावै,
प्रतिकारै नहिं ताहि द्वेप जो सो उपजावै ॥
तरुनाइहि मैं नर असार कीरति-मद धारैं,
सो छनभंगुर मृषा दंभ पै बेगि सिधारैं:
ज्यौं कोउ सुंदर सुमन वसंतागम उपजावै,
जो प्रमुदित ह्वै खिलै, खिलन पै मुरझनि पावै ॥
कहा वस्तु कविता जापै दीजै एतो चित ?
निज पति की पत्नी, पै जिहिं उप्पति भोगन नित:
जब अति अधिक प्रसंसित तब अति श्रम-अधिकाई,
जेतो अधिक प्रदान होहि तेतियै खुजाई:
जाकी कीरति कष्ट-रक्ष्य अरु महज नसौनी,
अवसि खिजौनी किते, पै न सब कबहुँ रिझौनी;
यह वह जासौं आछे बचैं बुरे भय धारैं,
मूरख जाहि पिनाहिं, धूर्त नष्टहि करि डारैं !

उंग्रान

जब चातुरिहिँ अविद्यहि सौं एतौ दुख पावन,
देहु न विद्याहूँ कौं तासौं वैर जगावन ॥
होत पुरस्कृत हुते श्रेष्ठ प्राचीन काल मैं,
तथा प्रसंसित सो, जो सुभ उद्योग चाल मैं।
जदपि होत है सेनापतिहि छत्र-अधिकारी,
तदपि मिलत हो मुकुट, सेनिकहुँ, सोभाकारी ॥
अब जे उच्च हिमाचल-तुंग-शृंग पर आवैं,
निज श्रम कोऊ और के पात करन मैं लावैं;
करत आत्महित इत प्रति आतुर कविहिं स्वचारी,
उन मूढ़नि कौं खेल होति बुधि झगड़नवारी।
पै नित अधम प्रसंसा करिवै मैं दुख मानैं,
जेतहि लेखक तुच्छ नितोही अनहित आनैं ॥
केहि कुत्सित फल और, तथा किहि नीच रीति सौं,
नस्वर उद्यत होत कीर्ति की अतज प्रीति सौं!
अहह कबहुँ इमि असुभ प्रतिष्ठा तृपा न धारौ,
तथा विवेचक बनि मनुष्यता नाहिँ विसारौ ॥
सुभ स्वभाव औ सुमति मिलाप निरंतर ठानौ,
चूकभरी नर प्रकृति, क्षमा दैवी गुन जानौ ॥
पै जौं उर उदार मैं गाढ़ रहै कछु छाई,
जासौं द्वेष तथा आमर्ष-मैल न थिराई;

तो ना छोभहिँ कोउ अति असह दोप पैँ डारौं,
या कुकाल मैँ ताकौ नाहिँ अकाल विचारौं ॥
अधमास्र्लील कैसहूँ नाहिँ छमा अधिकारी,
उक्ति, जुक्ति, जद्यपि चितवृत्ति-लुभावनहारी;
सिथिलपनो अस्लीलताहिँ मिलि यों घिनसान्यौ,
मानौ क्लीव कोऊ कुलटा के प्रेम समान्यौ।
सुख संपति औ चैन कलित मुटवास काल मैँ,
उपजी यह दुख घास, तथा वाढ़ी उताल मैँ।
हुती चोप प्रेमहि की जब चैनी नृप माहीँ;
जात हुते विरलै ही सभा, कबहुँ रन नाहीँ।
पुंसचलनि-करि हुते राजसासन के ताने,
प्रहसन लिखिवै माहिँ राजकाजी अरुझाने;
एतौये नहिँ, जब सुकविनि वरु पिनसिन पाई,
और नव राजकुमार करन लागे कविताई।
दरवारिनि-कृत नाटक पर सुंदरि हँसि लोटति,
कोऊ नकल विन अभिनय भयेँ रही नहिँ खोटति।
घूँघट-ओट सुशील नाहिँ अपनी छवि छाजति,
लगीँ हँसन कन्या तापैँ जासौँ ही लाजति ॥

बहुरि विदेसी नृप राज्याधिकार अपनेकी।
दीन्ही पूरि पंक उद्दंड विधर्मपने की;

नेष्ठारहित पुरोहित लगे समाज सुधारन,
मुक्ति-प्राप्ति-सुख-साध्य रीति की सीख प्रचारन;
दैव स्वतंत्र प्रजा जिहिँ होहिँ सत्व निरधारी,
होहि कदाचित जो जगदीसहु अत्याचारी।
उपदेसकहुँ उठाय रखन निंदा सुभ सीखे,
दुष्ट सराहे, करन हेत निज स्लाघी तीखे!
कवित-सृष्टि संपाति भाँति या चोप चढ़ाए,
सहित घमड भानु मंडल चढ़िबै कौं धाए;
औ मुद्रालय कठिन लोह की छातिनवारे,
असद अरोक भँड़ोवन के भारन सौं हारे॥
इन राकसनि, कुतर्किनि लै निज अस्त्र प्रचारौं,
उत साधौ निज वज्र, तथा निज छोभ निकारौ!
तिनि कुबानि पै त्यागहु जो खुचुरी निंदारत,
जो बरबस कवि कौ भ्रम सौं दोषी निरधारत;
दूषनमय दिखराय सबै दोषी जो देखै।
जैसैं पाँडु रोगवारो सब पीरेहिँ पेखै॥
लखौ जाँचकनि उचित कहा आचार सिखैबौ,
न्यायक कौ आधौ करतव बस ज्ञान कमैबौ।
रस-अनुभव, विद्या, विवेक ही सब कछु नाहीँ,
जौ भाषौ हिय स्वच्छ, सत्य दमकै तिहिँ माहीँ।

एतोहि नहिँ, कै, जग मानैं जो तुम्हैं सुहानौ,
पै तुमहूँ औरनि सौं मेल मिलावन जानौ ॥
मौन रहो नित जब तुमकौं निज मति पै संसय,
औ संसय लै बात कहो जद्यपि दृढ़ निस्चय।
केते ढीठ हठी अडंबरी देखि परत हैं,
जो जदि कहुँ भूलैं तौ सोई टेक धरत हैं;
पै तुम अपनी भूल चूक सानंद सकारौ।
औ प्रति द्यौसहिँ गत दिन कौ सोधक निरधारौ ॥
एतोही नहिँ इष्ट, होहि सम्मति सदचारी,
सुघर झूठ सौं भोंड़ो सत्य अधिक अपकारीः
ऐसैं सिखवहु नरनि मनौ तुम नाहिँ सिखायौ,
यौं अज्ञात पदार्थ लखावहु मनहु भुलायौ ॥
विना सुसील सत्य नाहिँन उचितादर पावैः
केवल सोई श्रेष्ठ बुद्धि पर प्रेम जगावै ॥
सम्मति-दान माहिँ कैसहुँ न सूमपन ठानौः
कृपिनाइनि मैं बुद्धि-कृपिनता अधम प्रमानौ ॥
छुद्र-तोष-हित निज कर्तव्य कदापि न छोरौ,
होहु न इमि सुसील कै मुख न्यायहि सौं मोरौ।
करहु नैंकु भय नाहिं बुधनि के क्रुद्ध करन कौं,
होत सहिष्णु स्वभाव प्रसंसापात्र नरनि कौ ॥

या अधिकार विवेचक धारि सकै जौ नित प्रति,
तौ यामैं संसय नहिं होइ जगत को हित अति;
लाल होत पै, लखहु, आत्मश्लाघी अति क्रोधी,
जब काहू सौं सुनत कहूँ कोउ सब्द बिरोधी,
घूरत अति बिकराल किये नैननि भयकारी,
ज्यौं प्राचीन चित्र मैं कोउ नृप अत्याचारी ॥
मूढ़ प्रतिष्ठित कं छेड़न सौं अति भय धारौ,
जाकौ सत्व अटोक करन नित काव्य न कारौ ॥
ऐसे हैं प्रतिभा-बिहीन कबि, जो मन-भावत,
ज्यौं वे जे बिन पढ़े परीक्षा सौं तरि आवत ॥
बादि भँड़ौवन पैं छोड़ौ सदवाद भयंकर,
औ सुश्रूषा मृषा समर्पक बाचाली पर,
करत नाहिं विस्वास जगत जिनकी स्लाघा पर,
जिनके कबिताई-त्यागन-प्रण पर सौं गुरुतर ॥
कबहुँ इष्ट अति रखन रोकि निज ताड़नि बानी,
औ भद्दनि कौं होन देन मिथ्या अभिमानी ।
गहिबौ मौन भलौ बरु तिन पैं सतरैबे सौं,
तब लौं निंदि सकै को सकहिं खँचै यह जब लौं,
भनभनात ये सदा ऊँघदाई गति साजैं,
लतियावहु जेतौ लट्टुन लौं तेतहि गाजैं ॥

चूक उन्हैं फिर सौं दौड़न के हेतु उभारैं,
ज्यौं अड़ियल टट्टू गिरि कै पुनि चाल सँवारैं ॥
कैसे इनके झुंड सकुच बिन-साहस-साने,
सब्द तथा मात्रा खटपट मैं अरुझि बुढ़ाने,
धावा करैं कविनि पैं भरैं छोभ नस नस लौं,
तरछट लौं औ दाबि कढ़े मस्तिष्क कुरस लौं,
अपनी बुधि की सिथिलित अंतिम बूँद निचोरत,
औ क्लीवनि कौ सौं करि क्रोध क्रूर तुक जोरत ॥
ऐसे निपट निलज्ज कुकवि जग माहिँ घनेरे,
पै तैसे ही मत्त, पतित जाँचक बहुतेरे ॥
ग्रंथ-ग्रथित गुद्दलमति, मूरखताजुत पंडित,
विद्यापोट अपार भार सिर धरैं अखंडित,
निज मुख ही सौं निज श्रवनहिँ नित बिरद सुनावैं,
औ अपनी ही सुनत सदा लखिबे मैं आवैं ।
सब ग्रंथनि वे पढ़ैं, पढ़ैं जो सो सब लूसैं,
तुलसीकृत सौं सुवा-बहत्तरि लौं सब ठूसैं ।
इन लेखैं चोरैं, मोलैं, बहु ग्रंथ-रचैया,
लिखी बिहारीलाल नाहिँ दोहा सतसैया ॥
सनमुख उनके कोउ नव नाटक नाम उचारौ,
तो झट बोलैं, "कवि याको है मित्र हमारौ";

एतहि नहिँ बरु कहैँ, दोष यामैँ हम काढ़े,
कब काहू की सुनि सुधरत पै कबि मद-बाढ़े ?
कैसहु ठाम पवित्र रोक इनकौं कहुँ नाहीँ,
मरघट सौं रक्षा न अधिक कोउ तीरथ माहीँ।
देवलहूँ मैँ गयेँ बादि बकि ये हति डारैँ,
मूरख धँसैँ निसंक सुमन जहँ डरि पग धारैँ ॥
सुमति ससंक, सुसील, सावधानी सौं बोलै,
सदा सहज लखि परै, चढ़ाई लघु पर डोलै;
पै दुरमति घहराय बाद बकबक की छोरै,
औ कबहूँ ठठकै न औ न कबहूँ मुख मोरै,
थामैँ थमति न नैंकुँ, भरी अतिसय उमाह सौं,
चलति छोड़ि मर्याद प्रबल रोरित प्रवाह सौं ॥
कहाँ मिलत पै ऐसो सज्जन सुमति-प्रदानी,
सीख देन मैँ मुदित, ज्ञान कौ नहिँ अभिमानी ?
बिकृत न राग द्वेष सौं, अंधौ सुद्धहु नाहीँ;
पहिलहि सौं न सढील पच्छ धारैँ उर माहीँ;
पंडित तऊ सुसील, सुसील तऊ कपटारी,
निडर नम्रता सहित, दयाजुत दृढ़व्रत-धारी,
सकै दिखाय मित्र कौं जो तेहि दोष असंसै,
औ सहर्ष सत्रुहुँ के गुन कौ भाषि प्रसंसै ?

धारैं रस अनुभव जथार्थ, पैं नहिं इक-अंगी,
ग्रंथनि कौ औ मनुप-प्रकृति कौ ज्ञान सुढंगी,
अति उदार आलाप; हृदय अभिमान विहीनो;
औ मन सहित प्रमान प्रसंसा रुचि सौं भीनो ॥
पहिलैं ऐसे रहे विवेचक, ऐसे सुचिमन,
आर्यवर्त मैं भए सुभग जुग मैं कतिपय जन ॥
भरत महामुनि अचल ध्यान-मंदिर धरि लीन्यौ,
पारावार अपार मनन कैा मंथन कीन्यो;
काव्य-कला-साहित्य-नियम-वर-रतन निकारे,
देस प्रदेसनि माहिं, कृपा उर आनि, वगारे ॥
कवि जो चिरकालीन निरंकुश औ मनमाने,
नित स्वतंत्रता अनघड़ की रुचि औ मद-साने,
माने वे वर नियम, बात यह उर निरधारी,
बस कीन्ही निज प्रकृति सुमति सासन अधिकारी ॥
श्री जयदेव अजौं स्वाच्छंद ललित सौं भावैं।
औ क्रम विनहूँ पाठक कौं मति-पाठ पढ़ावैं,
उर उपजावैं, मित्रनि लौं, सुभ सरल प्रीति सौं,
अति सुंदर, सदभाव भव्य, अति सहज रीति सौं ॥
सो जो श्रेष्ठ काव्य मैं ज्यौं, विवेक हू मैं त्यौं,
करि सकत्यो खंडनहु उदंड, उदंड लिख्यौ ज्यौं,

जाँच्यौ तदपि ससाँति, जदपि गायौ उमाहरत,
सोइ सिखवत तेहि वाक्य, काव्य जो हिये जगावत।
आज काल के जाँचक पै उलटी गति धारैं,
जाँचैं भरि औधत्य, लेख पै सिथिल सँवारैं॥
लखहु मुकुंददास सुकदेव सु-भनित परकासन,
प्रति पंक्तिनि सैाँ नए नए लावन्य निकासत।
कालिदास मैं सक्ति, चातुरी, दोउ छबि छावैं,
विद्वज्जन पांडित्य, सुसभ्य सहजता भावैं॥
अति गँभीर श्रीहर्ष महान ग्रंथ मैं सोभित,
परम युक्ततम नियमऽरु क्रम सपष्टतम मिश्रित।
ज्यौं उपकारी अस्त्र जात अस्त्रालय धारे,
सब क्रम सैाँ जतबद्ध, सुघरता सहित सम्हारे,
पै न दृगनि-सुख हेत, वरन कर के बाहन हित,
नित प्रयोग के योग, यथा-इच्छत्ति उपस्थित॥
उद्धत पंडितराजहिँ कियौ कला सब मंडित,
निज बिवेचकहिँ दई दिव्य कवि-गिरा उमंडित।
उत्तेजित जाँचक जो नित करतव मैं उद्यत,
है तातौ सम्मति दै, पै नित रहत न्यायरत,
उदाहरन निज जाकौ जाके नियम दृढ़ावैं,
औ आपुहि सो अति महान जिहिँ लिखि दरसावैं॥

जाँचक-परंपरा यों सुभ अधिकार जमायौ,
दलि स्वाच्छंदहिँ उपकारी नियमनि बगरायौ।
विद्या, तथा राज, उन्नति इक संगहिँ पाई,
औ फैली अधिकारहि संग कला-कुसलाई;
एकहि रिपु सौं अंत दुहुनि की अलहन आई,
भारत औ विद्या एकहि जुग अवनति पाई।
अत्याचार संग सिर दुरविस्वास उठायौ,
वह तन कौं ज्यौं, त्यौं यह मन कौं दास बनायौ;
बहुत जात मान्यौ हो, औ जान्यौ अति थोरौ,
औ ढिल्लड़पन गन्यौ जात उत्तमता बोरौ;
या विधि दूजी प्रलय बहुरि विद्या पर आई,
तुर्कारंभित विपति, समाप्ति द्विजनि सौं पाई॥
पै नागेस भट्ट अति माननीय वर पंडित,
विद्वज्जन-मंडलिहिँ करन गौरव सौं मंडित,
तेहि अवनति-रत-काल-प्रवाह प्रवल ठहरायौ,
रंगभूमि सौं मृषा विडंबिनि कौं बहरायौ॥
विट्ठलेस गोस्वामी के सुभ समय, निवारति,
सारद निद्रा, त्यक्त बीन, पुस्तक पुनि धारति;
भारत की प्रतिभा प्राचीन बहुरि तहँ छाई,
भारी धूरि, तथा ताकी वर ग्रीव उठाई॥

गई सिल्प, औ तिहि अनुरूप कला उद्धारी;
पाहन आकृति लई भए गिरि जीवनधारी।
मृदुतर स्वर सौं उठ्यौ गूँजि प्रति मंदिर भायौ;
तानसेन गायौ औ प्रभु-जस सूर सुनायौ,
अमर सूर जाके सुंदर उदार उर माहीं,
काव्य तथा साहित्य कला उपजी इक-ठाहीं।
केवल ब्रजहिं न श्रेष्ठ नाम तुव गौरव दैहै,
बरु भारत-संतान सबै नित तव गुन गैहै॥

प्राकृत भषन माहिं चलन बानी पुनि पाई,
गई फैलि चहुँ ओर अथोर कला-कुसलाई;
ब्रजभाषा मैं लागी होन सुखद कबिताई,
बहुत दिननि लौं रही निरंकुसता, पर, छाई॥
बिना संसकृत जात हुत्यौ नाहिन कछु जान्यौ,
औ यथेष्ट पढ़िबौ ताकौ हो अति श्रम सान्यौ;
भाषा सौं घिन मानत हुते संसकृतवारे,
'भाषा जाहा साहो' गुनत न हे मतवारे;
औ उदंड भाषा कवि काव्य करत मनमाने,
सुनत गुनत नहिं संसकृतिनि के नियम पुराने॥
पै ऐसे कछु भए मंडली बुधिवारी मैं,
न्यून गर्ब मैं जो औ बढ़े जानकारी मैं,

जो साहस करि भे प्राचीन सत्व के वादी,
औ थिर थापे काव्य-कला-सिद्धांत अनादी ।।
जाकौ है यह वाक्य, महाकवि ऐसौ सो हो,
"उक्ति विसेषो कव्वो, भाषा जाहो साहो ।"
ऐसौ केसव ज्यौं पंडित त्यौंही सुसीलवर,
जैसो श्रेष्ठ कुलीन उदार चरित तैसौ घर,
सुभग संसकृत वर साहित्य ज्ञान जेहि माहीँ,
प्रति कवि कौं गुन मान, गर्व अपने कौं नाहीँ ।।
ऐसौ अवहिँ भयौ हरिचंद मित्र कविता कौ,
जाननिहारो उचित पंथ अस्तुति निंदा कौ ।।
छमासील चूकन पैँ, औ तत्पर गुणग्राही,
अतिसय निर्मल बुद्धि तथा हिय सुद्ध सदाही ।।*
पै अब केते भए हाय इमि सत्यानासी,
कवि औ जाँचक रस-अनुभव सौँ दोऊ उदासी,
सब्द अर्थ कौ ज्ञान न कछु राखत उर माहीँ,
सक्ति, निपुनता औ अभ्यास लेसहू नाहीँ ।।

* पोप साहब के ग्रंथ का अनुवाद यहीं तक है। इसके आगे अनुवादकर्ता ने आज-कल के भाषा कवियों और समालोचकों का कुछ विवरण स्वतंत्र रीति से लिखा है। इस बात पर भी ध्यान रहे कि इस अनुवाद में यूरोपीय नामों के स्थान पर भारतवर्षीय लोगों के नाम रख दिए गए हैं।

बिन प्रतिभा के लिखत तथा जांचत विवेक बिन,
अहंकार सौं भरे फिरत फूले नित निसि दिन,
जोरि बटोरि कोऊ साहित्य-ग्रंथ निर्मानै,
अर्थसून्य कहुँ कहूँ विरोधी लच्छन ठानै ॥
जानतहू नहिं कहा अतिव्याप्ति, अव्याप्ति असंभव,
बनि बैठत साहित्यकार आचार्य स्वयंभव।
जात खड़ी बोली पैं कोऊ भयो दिवानो,
कोउ तुकांत बिन पद्य लिखन मैं है अरुझानो ॥
अनुप्रास-प्रतिबंध कठिन जिनकै उर माहीं,
त्यागि पद्य-प्रतिबंधहु लिखत गद्य क्यौं नाहीं ?
अनुप्रास कबहूँ न सुकवि की सक्ति घटावैं,
बरु सच पूछौ तौ नव सूझ हियैं उपजावैं ॥
ब्रजभाषा औ अनुप्रास जिन लेखैं फीके,
माँगहिं बिधना सौं ते श्रवन मानुषी नीके।
हम इन लोगनि हित सारद सौं चहत विनय करि,
काहू बिधि इनके हिय की दुर्मति दीजै दरि ॥
जासौं ये साँचे आनँदमद सौं सुख पावैं,
औ हठ करि नित औरनि हूँ कौं नहिं बहकावैं।
होहिं बहुरि सद कवि औ काव्यकला सुखदाई,
रहै सदा भारत मैं उन्नति की अधिकाई ॥

पहला सर्ग

सुभ सरजू-तट बसति अवधपुरि परम सुहावनि।
बिदित बेद इतिहास माहिँ कलि-कलुष-नसावनि ॥
दिव्य-दिनेस-बंस-महिपालनि की रजधानी।
सब-सोभा-संपन्न सकल-सुख-संपति-सानी ॥ १ ॥

तिहिँ पुरि औ तिहिँ बंस माहिँ अवतंस बीरबर ।
अट्ठाइसवौँ भयौ भूप हरिचंद गुनाकर ॥
रामचंद सौँ भयौ पूर्व सो पैँतिस पीढ़ी ।
निज मन पालि सदेह चढ़्यौ जो सुरपुर-सीढ़ी ॥ २ ॥

परम पुन्य कौ पुंज प्रौढ़-मन प्रखर-प्रतापी ।
सत्यव्रती दृढ़ धर्म-धैर्य-मर्जादा-थापी ॥
प्रजा-पाल खल-साल काल सम कुटिल कुजन कौँ ।
गुन-ग्राहक असि-बाहक दाहक दुष्ट दुवन कौँ ॥ ३ ॥

नृप-कुल-कल-किरीट-मनि-संज्ञा कौ अधिकारी ।
नहिँ छत्रिहिँ वरु मनुष मात्र कौ गौरव-कारी ॥
सकल सुखी तिहिँ राज माहिँ नित रहत धर्म-रत ।
निज निज चारहु बरन चारु आचरन आचरत ॥ ४ ॥

कहुँ कलेस कौ लेस देस मैँ रह्यौ न ताके ।
घर घर नित नव मंजुल मंगल मोद प्रजा के ॥
ताकौ कछु इतिहास इहाँ संछेप बखानौँ ।
जौ सादर बुध सुनहिँ सफल तौ निज श्रम जानौँ ॥ ५ ॥
एक दिवस नारद मुनि-वर सुर-सभा पधारे ।
गावत हरि-गुन बिसद बीन काँधे पर धारे ॥
पेखि पुरंदर मानि मोद पग-परसन कीन्यौ ।
सिष्टाचार यथाबिधि करि दिब्यासन दीन्यौ ॥ ६ ॥

पुनि पूछी कुसलात बात बहु भाँति चलाई।
निपट नम्रता सहित करी कल विनय बड़ाई॥
"अहो देव ऋषि-राज! आज आगमन तिहारे।
गृह पवित्र, मन मुदित, भये मम नैन सुखारे॥ ७॥

जौ न अकारन करहिं कृपा तुम से उपकारी।
तौ पावहिँ सतसंग कहाँ हम से गृह-धारी"॥
सुनि सुरेस की सुघर वचन-रचना-चतुराई।
मुनिवर मृदु मुसुकात बात इमि कही सुहाई॥ ८॥

"सब देवनि के राज अहो तुम इमि कत भाषत।
तुव संगति-सुख बरु सब सुर नर मुनि अभिलाषत॥
औ हमकौं तौ रहत सदा इहिँ ढारिहिँ ढरिबौ।
करिबौ हरि-गुन-गान मोद मढ़ि विस्व विचरिबौ"॥ ९॥

पुनि पूछ्यौ सुरराज "आज मुनि आवत कित तैं।
लोकोत्तर आह्लाद परत छलक्यौ जो चित तैं"॥
सुनि मुनि सहित उछाह चाहि बोले मृदुबानी।
"अहो सहस-दृग साधु! बात साँची अनुमानी॥ १०॥

साँचहिँ अकथ-अनंद-मुदित मन आज हमारौ।
धन्य भूप हरिचंद धन्य जग जनम तिहारौ॥
धन्य धन्य पितु मातु तुमहिँ जीवन जिन दीन्ह्यौ।
जिहिँ बिरंचि रचि निज प्रपंच कौ प्राच्छित कीन्ह्यौ"॥ ११॥

सुनि सुरपति अति आतुरता-जुत कह्यौ जोरि कर।
"कौन भूप हरिचंद कहौ हमसहुँ कछु मुनिबर" ॥
"सुनहु सुनहु सुरराज", कह्यौ नारद उछाह सौं।
"ताकी चरचा करन माहिँ चित चलत चाह सौं ॥ १२ ॥

मृत्युलोक कौ मुकुट देस भारत जो सोहै।
ताके उत्तर पच्छिम भाग माहिँ मन मोहै ॥
अवधपुरी अति रम्य परम पावनि मंगलमय।
है तिहिँ कौ नरनाह भूप हरिचंद महासय ॥ १३ ॥

ताही के लखि चरित आज मन मुदित हमारौ।
अति अमोघ आनंद परम लघु हृदय विचारौ ॥
अहह होत ऐसे नर-रत्न जगत मैँ थोरे।
सरल हृदय निष्कपट-भाव अविचल-व्रत भोरे" ॥ १४ ॥

सुनि मघवा अति ईर्षा सौं मनहीँ मन खीझ्यौ।
पै निज भाव दुराइ बचन ऐसैँ पुनि सीझ्यौ ॥
"साँचहिँ जान परत हरिचंद उदारचरित अति।
संमति ताहि प्रसंसत सुनियत सबहिँ धीरमति ॥ १५ ॥

पै कहियै कछु गृह-चरित्र ताके हैँ कैसे"।
बोले मुनि पुनि "होन उचित सज्जन के जैसे ॥
जिनके परम पवित्र चरित्र नाहिँ घर माहीँ।
कैसहु होहिँ कदापि प्रसंसा-जोग सु नाहीँ" ॥ १६ ॥

करि कछु कूत मनहिँ मन पुनि पुरहूत उचारयौ ।
"कहा भूप हरिचंद स्वर्ग-हित यह व्रत धारयौ" ॥
बोले मुनि "यह कहत कहा तुम बात अनैसी ।
मद-उदार-चरितनि कौँ स्वर्ग-कामना कैसी ॥ १७ ॥

परम आत्म-संतोष-हेत निज चरित सुधारत ।
कहुँ सज्जन स्वर्गासा करि निज जनम बिगारत ॥
करि कर्तव्य सुधार चरित संतुष्ट सुखी जो ।
स्वर्ग-लोक-सुख बरु औरनि करि दान सकत सो ॥ १८ ॥

उदाहरन ताकौ देखौ हम प्रगट लखावैँ ।
बैठे स्वर्गहु मैँ ताकौ गुन गुनि सुख पावैँ" ॥
सुरपति मन मैँ गुन्यौ "जदपि साँचहि मुनि भाखत ।
जद्यपि नृप हरिचंद स्वर्ग-आसा नहिँ राखत ॥ १९ ॥

निज चरित्र सौँ ह्वैहै तदपि स्वर्ग-अधिकारी ।
तातैँ करिबौ बिघन कछुक अतिसय उपकारी" ॥
कह्यौ "जदपि हरिचंद लखात अमंद चरित अति ।
तदपि परिच्छा की इच्छा कछु होति धीरमति ॥ २० ॥

यातैँ कोउ मिस ठानि ब्यौँत ऐसौ कछु कीजै ।
जासौँ ताके सत्यहिँ परखि सहज मैँ लीजै ॥
सानुकूल सुभ समय सबहि सोभा सँग राखत ।
पै सुवरन सोइ साँच आँच सहि जो रँग राखत" ॥ २१ ॥

सुनि मुनि अति अनखाइ चढ़ाइ भौंह भरि भाख्यौ ।
"सुमनराज यह कहा तुच्छ आसय उर राख्यौ ॥
अहह जाति तव मत्सरता अजहूँ न भुलाई ।
हेर फेर सौ बेर जदपि मुँह की तुम खाई ॥ २२ ॥

तुमहिँ दीन्ह करतार बड़ोपन तौ इमि कीजै ।
लघु गुरु सबके हित मैं चित सहर्ष निज दीजै ॥
परहित लखि दहिबौ पर-अनहित हेरि जुड़ैबौ ।
परम-छुद्र-मति-काज जिन्हैं नहिँ कबहुँ लजैबौ ॥ २३ ॥

औ हरिचंद अमंदचरित कौ तौ गुन खाँचत ।
हृदय भूलि सब भाव एक आनँद-रस राँचत ॥
जदपि उपद्रव-प्रिय सहजहिँ नित प्रकृति हमारी ।
तउ निस्छल-हिय हेरि चहति नहिँ ताहि दुखारी ॥ २४ ॥

औ चाहैं हूँ कहा सिद्धि कछु संभव है ना ।
नारद कहा सारदहु तिहिँ मति पलटि सकै ना" ॥
सुनि सुरेस खिसियाइ दियौ उत्तर कछु नाहीं ।
लाग्यौ करन विचार हारि औरै मन माहीं ॥ २५ ॥

सोच्यौ सरत लखात काज इनके न सहारे । ।
ताही समय महा-मुनि बिस्वामित्र पधारे ॥
नारद माँगी बिदा कियौ परनाम पुरंदर ।
यह असीस दै हरि सुमिरत गवने गुन-सागर ॥ २६ ॥

"करहिं कृपा अब हरि सो हरहिं सुभाव तिहारौ।
पर-उन्नति लखि बृथा तुम्हैं जो दाहनहारौ" ॥
पूछ्यौ विस्वामित्र "विचित्र आज यह बानी।
कहा भयौ सुरराज कही कत मुनिवर ज्ञानी" ॥ २७ ॥

कह्यौ सुरेस बनाइ बचन तब स्वारथ-साधक।
"भयौ कछू ऋषिराज काज नहिं रिस-अवराधक ॥
पै तिनकौ सुभाव तौ विदित सकल जग माहीं।
रुष्ट होन मैं तिन्हैं खोज मिस की कछु नाहीं ॥ २८ ॥

कछु चरचा हरिचंद अवध-नरपति की आई।
ताके धर्म धैर्य की तिन अति कीन्हि बड़ाई ॥
टोंकि उठे हम रोकि न जब अति सौं मन भाई।
होहि परिच्छा तौ कछु परहि जानि धरमाई ॥२९॥

ताही पर बस बिगरि उठे करि नैन करारे।
हरिहर-निंदा-बचन कछुक हम मनहुँ उचारे" ॥
सुनि मुनि कर भ्रूभंग कह्यौ "जो मुनि मन मोहैं।
कहा भूप हरिचंद माहिं ऐसे गुन सोहैं" ॥३०॥

बोल्यौ बिहँसि बिड़ौजा "हमहूँ तौ इहि भाषत।
पै मिथ्या-स्लाघी औचित्य विवेक न राखत ॥
तुमसे महानुभावनि हूँ के होते जग मैं।
इक सामान्य गृहस्थ भूप को ब्रत किहिं मग मैं ॥३१॥

करि मन इहै विचारि हारि सुनि अनुचित बानी।
सिच्छा हेत परिच्छा की इच्छा उर आनी" ॥
यह सुनि बिस्वामित्र कह्यौ टेढ़ी करि भौंहैं।
"यामैं अनुचित कहा जानि मुनि भये रिसौंहैं ॥३२॥

सब संसय परिहरहु परिच्छा हम अब लैहैं।
निज तप-तेज तचाइ खोलि कलई सब दैहैं ॥
मो आगैं जाकैं तप तीन्यौ लोक तपै है।
सो दानी है कहा कहौ निज सत्य निबैहै ॥३३॥

देखौ बेगिहि जौ ताकौ नहिं तेज नसावौं।
तौ पुनि पन करि कहौं न बिस्वामित्र कहावौं" ॥
यौं कहि आतुर दै असीस लै बिदा पधारे।
चपल धरत पग धरनि किये लोचन रतनारे ॥३४॥

———

दूसरा सर्ग

चलि सुरपुर सौं बिस्वामित्र अवधपुरि आए।
देखे तहाँ समाज साज सब सुभग सुहाए।
बन उपबन आराम सुखद सब भाँति मनोहर।
लहलहात हैं हरित-भरित फल-फूलनि तरवर ॥१॥

बापी कूप तड़ाग झील सरवर सरिता सर।
जीवन-धर सँताप-हर नर-ही-तल-सीतल-कर॥
कियौ नैंकु बिस्राम आनि सरजू-तट बैठे।
तहँ अन्हाइ करि नित्य-कृत्य पुर-अंतर पैठे ॥२॥

धवल-धाम-अभिराम-अवलि दोहूँ दिसि देखी।
रचना परम बिचित्र चित्र मैं जाति न लेखी।
मध्य भाग मैं सोहति हाट चारु चौपर की।
दुहुँ दिसि दिव्य दुकान-पाँति बहु भाँति सुघर की ॥३॥

अपने अपने काज करत बिन रोके टोके।
सहित अमंद अनंद चारहुँ बरन बिलोके॥
घर घर होत वेद-धुनि जिहिँ सुनि पातक भाजैं।
हरि-हर-चरचा-सुरस-रसिक सब लोग बिराजैं॥४॥

जाँच्यौ सोधि समस्त न कहुँ दुखिया कोउ दीस्यौ।
जासौं चरचा चलीं नृपति-गुन गाइ असीस्यौ॥
यह करतूति बिलोकि मनहिँ मन लगे सराहन।
भये तुष्ट सोच्यौ बरबस पन पर्‌यौ निबाहन॥५॥

विविध गुनावन करत राज-पौरी पर आए।
लखि रचना निज सृष्टि-सक्ति कौ गर्ब भुलाए॥
रजत-हेम-मुकता-मय मंजुल भवन विराजत।
बडे बडे मनि-अच्छर खचित द्वार इम भ्राजत॥६॥

"टरहिँ चंद सूरज औ टरहि मेरु गिरि सागर।
टरहि न पै हरिचंद भूप कौ सत्य उजागर"॥
पढ़त प्रतिज्ञा साभिमान ईर्षा पुनि आई।
"भला देखि हैं तौ" मन मैं कहि भौंह चढ़ाई॥७॥

तब लौं दौरि पौरिया भूपहि यह सुधि दीन्ही।
"महाराज इक ऋषिवर कृपा आज इत कीन्ही॥"
सुनि नृप आपहिँ उमगि द्वार अति आतुर आए।
करि प्रनाम पग परसि सभा मैं सादर ल्याए॥८॥

बैठारयौ सनमान सहित बहु विनय उचारी।
आनँद सौं तन पुलकि उठ्यौ नैननि भरि बारी॥
सहज अकृत्रिम भाव भूप के मुनि मन भाए।
श्रद्धा सील सुभाव नम्रता हेरि हिराए॥९॥

पै बानी करि उदासीन निज परिचय दीन्यौ।
"सुनहु भूप हम कौन जासु आदर तुम कीन्यौ॥
जाकैं तप ब्रह्मांड तप्यौ हरि-आसन डोल्यौ।
जो तप-बल छत्री सौं है ब्रह्मर्षि कलोल्यौ॥१०॥

जिन बसिष्ठ-सौ-सुतनि क्रोध करि सहज नसायौ।
कठिन ब्रह्म-हत्यहुँ कौं निज तप-तेज जरायौ॥
निज तप-बल सदेह तब जनकहिँ स्वर्ग पठायौ।
नवल सृष्टि करि ब्रह्मादिक कौ गर्ब गिरायौ॥११॥

कौसिक विस्वामित्र सोइ हम तव गृह आए।
सकल मही के दान लेन कौ चाव चढ़ाए॥
जान्यौ हमैं तथा आवन कौ कारन जान्यौ।
कहौ बेगि अब जो विचार उर-अंतर आन्यौ" ॥ १२ ।

कह्यौ भूप "कत जानि बूझ बूझत मुनि ज्ञानी।
या मैं सोच-बिचार कहा जौ तुम यह ठानी॥
तुम सौं पाइ सुपात्र दान दैवे मैं चूकै।
तौ यह चूक सदैव आनि उर-अंतर हूकै॥ १३ ॥

लीजै मानि प्रमोद सकल महि सादर दीन्हौ"।
"स्वस्ति" भाषि मुनि मन मैं विविध प्रसंसा कीन्ही ॥
स्रवन सुन्यौ जैसौ तासौ बढ़ि आँखिनि देख्यौ।
साँचहिं नृप हरिचंद अमंद-चरित मुनि लेख्यौ ॥ १४ ॥

सद्-गुन-गन-आगार धर्म-आधार लसत यह।
साँचहिं परम उदार भूमि-भर्तार लसत यह ॥
जिहिं महि के दस-हाथ-हेत नृप माथ कटावैं।
रुंडहु ह्वै उठि लरैं रुधिर सौं कुंड भरावैं ॥ १५ ॥

जिहिं हित तप करि तचैं पचैं नर स्वारथ-घेरे।
सो सब तृन-इव तजो नैंकु तेवर नहिं फेरे ॥
अब करि कौन कुढंग भंग या कौ ब्रत कीजै।
पुनि कछु गुनि बोले "अब दान-प्रतिष्ठा दीजै" ॥ १६ ॥

कह्यौ भूप कर जोरि "होहि इच्छा सो लीजै"।
बोले ऋषिवर "सहस-स्वर्ण-मुद्रा बस दीजै" ॥
"जो आज्ञा" कहि नृपति वेगि मंत्रिहिं बुलवायौ।
सहस स्वर्ण-मुद्रा आनन-हित हरषि पठायौ ॥ १७ ॥

यह लखि ऋषि विकराल लाल लोचन करि बोले।
भृकुटी जुगल मिलाइ किये नासा-पुट पोले ॥
"रे मिथ्या धर्मध्वज, मृषा सत्य-अभिमानी।
धर्म-धीरता मन-दृढ़ता तेरी सब जानी ॥ १८ ॥

ऐसहिँ तुच्छ कपट छल सौं महिमा विस्तारी।
भयौ सकल जग मैं विख्यात सत्य-व्रत-धारी॥
दई दान तैं अब समस्त महि भई हमारी।
राज-कोष कौ अब तैं मूढ़ कौन अधिकारी॥ १९॥

जो बुलाइ मंत्रिहिँ ऐसी यह कीन्हि ढिठाई।
मुद्रा आनन की आयसु सानंद सुनाई॥
रे मतिमंद! अमंद कुटिल! रे कपट-कलेवर!
कहा घटत कछु बिना बने ऐसौ दानी नर"॥ २०॥

सुनि मुनिवर के परुष वचन कछु भूप सकाए।
बोले वचन निहोरि जोरि कर विनय-बसाए॥
"छमा-छमा ऋषिराज दया-सागर गुन-आगर।
छमा-छमा तप-तेज-तरनि तिहुँ-लोक-उजागर॥ २१॥

साँचहिँ अब समुझात बात हम अनुचित कीन्हो।
मंत्रिहिँ जो मुद्रा आनन की आयसु दीन्ही॥
हम अवगुन के कोस किये सब दोष तिहारे।
तुम गुन-सिंधु अगाध छमहु अपराध हमारे॥ २२॥

जिहिँ तिहिँ भाँति सहस्र स्वर्ण-मुद्रा सब दैहैं।
दारा सुअन समेत याहि ऋण-हेत बिकैहैं॥
पुनि मुनि करि भ्रू बंक सहित आतंक उचार्यौ।
"रे रवि-कुल-कलंक मति-रंक हमैं निरधार्यौ॥ २३॥

जा हित माँगत छमा न सो छल छाँड़त नैकँहु।
निज मुख-पानिप संग बहावत बिसद बिवेकहु॥
अरे मूढ़मति भई सकल बसुधा जब मेरी।
काकैं धन तब अधम देह बिकिहै कहु तेरी" ॥ २४॥

यह सुनि नृपति सभीति सोचि करि नीति-गुनावन।
बोले बचन बिनीत बिसद इहिं रीति सुहावन॥
"करि कुबेर सौं जुद्ध आनि धन सुद्ध चुकैहैं"।
बोले मुनि "तब तौ जब अस्त्र तुम्हैं हम दैहैं" ॥ २५॥

यह सुनि पुनि नरनाह सोच के सिंधु समाने।
बहु बिधि सोधि मुखाग्र बचन-मुकता ये आने॥
"सब सास्त्रनि सौं सिद्ध लोक-बाहिर जो कासी।
निज त्रिसूल पर धारत जाहि संभु अविनासी॥ २६॥

अघ-ओघनि करि दूर मोच्छ-पद बरबस दैनी।
कहा कठिन जौ होहि हमारेहु ऋन की छैनी॥
दारा सुअन समेत जाइ हम तहाँ बिकैहैं।
एक मास की अवधि दयासागर जौ दैहैं" ॥ २७॥

सुनि भूपति के बचन भए मुनि प्रथम चकित अति।
लगे प्रसंसा करन मनहिं मन बहुरि जथामति॥
"धन्य धर्म-दृढ़ता हरिचंद अमंद तिहारी।
साँचहि तुम तिहुँ लोक माहिं नर-गौरव-कारी" ॥ २८॥

पुनि वानी करि उदासीन यह आज्ञा कीन्हीँ ।
"एक मास की अवधि तुम्हैँ करुना करि दीन्हीँ ॥
पै जौ एक मास मैँ सब मुद्रा नहिँ पैहै ।
तौ तोहिँ पुरुषनि संग साप दै नर्क पठैहैँ" ॥ २९ ॥

"जो आज्ञा" कहि नृपति हर्षजुत सीस नवायौ ।
मंत्रिहिँ अपर समस्त राजकाजिन्हिँ बुलवायौ ॥
सब सैँ सहित उछाह विदित वेगिहि यह कीन्यौ ।
"हम सब राज समाज आज ऋषिराजहिँ दीन्यौ ॥ ३० ॥

अब तुम इनके होहु हृदय सैँ आज्ञाकारी ।
राज-काज इमि करहु रहै जिहिँ प्रजा सुखारी ॥
दारा सुअन समेत अवहिँ कासी हम जैहैँ ।
ऋषि-ऋण सैँ उद्धार-हेत बिन सोच बिकैहैँ ॥ ३१ ॥

भयौ होहि कोउ कबहुँ क्रूर बरताव जु हमसैँ ।
सो सब अब बिसराइ देहु निज हिय उत्तम सैँ" ॥
यह सुनि सब अकुलाइ लगे नृप-बदन निहारन ।
"कहत कहा यह आप" सहित स्वरभंग उचारन ॥ ३२ ॥

वेगिहिँ उठि सिंहासन कैँ प्रनाम नृप कीन्यौ ।
रोहितास्व बालकहिँ महिषि सैव्यहिँ सँग लीन्यौ ॥
चले राज तजि हरष विषाद न कछु उर आन्यौ ।
भूलि भाव सब और एक ऋण-भंजन ठान्यौ ॥ ३३ ॥

चले प्रजागन संग लागि दृग वारि विमोचत।
मंत्रि आदि सब मौन मलीन-वदन-जुत सोचत॥
पुर वाहिर ह्वै भूप सबहिँ सब विधि समुझायौ।
निज पन-पालन कौं आवस्यक धर्म जतायौ॥ ३४॥

जद्यपि समुझावन सौं लह्यौ तोष कछु नाहीँ।
पै लौटे छूटे से गुनि आज्ञा मन माहीँ॥
सहत विविध संताप दाप आतप कौ भारी।
सुत-पत्नी-जुत चले कासिका सत-व्रत-धारी॥ ३५॥

तीसरा सर्ग

पहुँचि कासिका मैं बिश्राम नैंकुँ नृप लीन्यौ ।
स्नानादिक करि चंदचूर कौ वंदन कीन्यौ ॥
पुनि बिकिबे के हेत हाट-दिसि चले विचारत ।
पुर-सोभा-धन-धाम विविध अभिराम निहारत ॥ १ ॥

"अहो संभुपुर की सुखमा कैसी मन मोहै ।
पै निज चित्त उदास भएँ सोऊ नहिँ सोहै ॥
दै सब महि मुनिवरहिँ नाहिँ तेतौ सुख लीन्यौ ।
जेतौ दुख अब लहत जानि ऋन अजहुँ न दीन्यौ" ॥ २ ॥

तिहिँ अवसर पुनि गाधि-सुअन तहँ आनि पधार्यौ ।
किये दृगनि विकराल व्याल लौं वचन उचार्यौ ॥
"अरे भ्रष्ट-मन बोलि मास पूर्यौ कै नाहीँ ।
अब बिलंब किहिँ हेत दच्छिना दैबे माहीँ ॥ ३ ॥

अब हम इक छन-मात्र तोहिँ अवसर नहिँ दैहैं।
नैंकु न सुनिहैं बात सकल मुद्रा चुकवैहै॥
बोलि देत कै नाहिँ नतरु अब वेगि नसैहै।
ब्रह्म-डंड अति कठिन साप-वस तव सिर ऐहै" ॥ ४ ॥

करि प्रनाम कर जोरि नृपति बोले मृदु बानी।
"ह्वैहै अवधि आज पूरी मुनिवर बिज्ञानी॥
विकन हेत हम जात हाट मैं धनिकनि हेरत।
पहुँचि तहाँ क्रयकर्तनि कौं तुरतहिँ अब टेरत॥ ५ ॥

सुत-पत्नी-जुत दास होइ तिनसौं धन लैहैं।
ऋषिवर राखहु छमा नैकुँ ऋण सकल चुकैहैं" ॥
सुनि मुनि मन मैं कह्यौ "अजहुँ मति नैकुँ न फेरी।
अरे भूप हरिचंद धन्य छमता यह तेरी" ॥ ६ ॥

बोले पुनि करि क्रोध "भला रे मृषाभिमानी।
साँझ होत ही तव दृढ़ता जैहै सब जानी॥
सूर्य-अस्त के पूर्व दच्छिना जौ नहिँ पैहैं।
तोहिँ धृष्टता कौ तेरी तौ फल भल दैहैं" ॥ ७ ॥

यौं कहि, घिरइ, चढ़ाइ भौंह ऋषिराइ सिधाए।
हरि सुमिरत हरिचंद हाट अति आतुर आए॥
सिर धरि तृन लगे पुकारि यौं सबहिँ सुनावन।
"सुनौ-सुनौ सब नगर धनीगन सेठ महाजन॥ ८ ॥

हम अपने कौं बेंचत सहस स्वर्न-मुद्रा पर।
लेन होहि जिहिं लेहि बेगि सो आनि कृपा कर" ॥
तब महिषी सैब्या सभंग-स्वर कंपित-बानी।
बोली नृपहिं निहारि जोरि कर सोच-सकानी ॥ ९ ॥

"महाराज! हम होत बिकन नहिं उचित तिहारौ।
तातैं प्रथम बेंचि हमकौं ऋन-भार निवारौ ॥
जौ एतहु पर चुकै नाहिं सब ऋन ऋषिवर कौ।
तौ चाहै सो करहु ध्यान धरि उर हरि-हर कौ" ॥ १० ॥

यौं कहि लगी पुकारि कहन भरि बारि बिलोचन।
"कोउ लै मोल हमैं करि कृपा करै दुख-मोचन" ॥
निज जननी दृग बारि हेरि बालक बिलखायौ।
ह्वै उदास अंचल गहि आनन लखि मुरझायौ ॥ ११ ॥
बहुरि तोतरे बचन बोलि आरत-उपजैया।
बूझ्यो "ए ये कहा भयौ रोवति क्यौं मैया" ॥
सुनि बालक की बात अधिक करुना अधिकाई।
दंपति सके न थाँभि आँसु-धारा बहि आई ॥१२॥

जदपि बिपति-दुख-अनुभव-रहित रुचिर लरिकाई।
मात पिता की गोद छाँड़ि नहिं मोद-निकाई ॥
रोवत तऊ देखि तिनकौं लाग्यौ सिसु रोवन।
इनके कबहुँ कबहुँ उनके आनन-रुख जोवन ॥१३॥

लखि दंपति कातर ह्वै लै लगाइ उर लीन्ह्यौ।
फेरि माथ पर हाथ चिबुक कौ चुंबन कीन्ह्यौ॥
बहुरि बिकन के हेत लगे ग्राहक कौं टेरन।
आसाकृत चल चखनि चपल चारहुँ दिसि फेरन॥१४॥

जित तित चरचा चली बिकत इक दासऽरु दासी।
लखन हेत सब ओरनि सौं उमड़े पुरबासी॥
एकत्रित तहँ भए आनि बहु लोग लुगाई।
लागे पूछन मोल, कहन निज-निज मन-भाई॥१५॥

उपाध्याय इक बृद्ध सिष्य-जुत सुनि यह धायौ।
करि श्रम भीड़ हटाइ आइ तिन सौं नियरायौ॥
लखि तिनकौं ह्वै चकित हृदय-अंतर इमि भाष्यौ।
"छत्र, मुकुट के जोग सीस यह क्यौं तृन राख्यौ॥१६॥

अति प्रलंब आजानु बाहु दृग कानन-चारी।
उन्नत ललित ललाट बिसद बच्छस्थल धारी॥
को यह जामैं लखियत चिह्न चक्रवर्ती के।
औ तैसेही सुभ सोहत लच्छन इहिं ती के॥१७॥

रूप-सील-गुन-खानि सुघर सबही बिधि सोहति।
लाजनि बोलति मंद नैंकु सौंहैं नहिं जोहति॥
साँचहिं यह कोउ अति पुनीत कुल की कुलनिधि है।
जानि परत नहिं वाम भयौ ऐसौ क्यौं बिधि है"॥१८॥

यौं सुनि मन पसीजि नृप सौं बोल्यौ मृदुबानी।
"कहहु महासय कौन आप ऐसी कत ठानी॥
सब संसय करि दूर हमैं हित-चिंतक जानौ।
होहि उचित तौ कछु अपनौ बृत्तांत बखानौ" ॥ १९ ॥

करि प्रनाम अवलोकि अवनि उत्तर नृप दीन्ह्यौ।
"छत्री-कुल मैं जन्म सुनहु द्विजवर हम लीन्ह्यौ॥
इक ब्राह्मन-ऋन-काज आज बिकिबे की ठानी।
इहै मुख्य सब कथा अपर अब बृथा कहानी" ॥ २० ॥

उपाध्याय बोल्यौ "हम सौं धन लै ऋन दीजै।"
कह्यौ भूप कर जोरि "छमा हम पर बस कीजै॥
यह तौ द्विज की बृत्ति कबहुँ ऐसौ नहिँ ह्वैहै।
जौ यह तन धन लै सेंतहिँ निज भार चुकैहै॥ २१ ॥

पै अपने कौं बेंचि आप सौं जौ धन पावैं।
तौ ऋषिऋन हम तुरत सहित संतोष चुकावैं"॥
कह्यौ विप्र "तौ पंच सत स्वर्नखंड यह लीजै।
दोऊनि मैं सौं एक दासपन स्वीकृत कीजै" ॥ २२ ॥

यह सुन सैब्या कह्यौ जोरि कर दृग भरि बारी।
"हमहिँ अछत तुम नाथ न होहु दास-ब्रत-धारी॥
बिकन देहु हमहीं पहिलैं सुनि बिनय हमारी।
जामैं ये दृग लखैं न ऐसी दसा तिहारी" ॥ २३ ॥

कह्यौ थाम्हि हिय भूप "कहा कछु हम अब कहिहैं।
अच्छा प्रथम जाहु तुमहीं याहू दुख सहिहैं" ॥
उपाध्याय सौं कह्यौ बहुरि महिषी "हम चलिहैं"।
पूछ्यौ द्विज तब "कौन काज तुम पाहिं निकलिहैं"॥ २४ ॥

"संभाषन पर-पुरुष संग उच्छिष्ट असन तजि।
करिहैं हम सब काज" कह्यौ रानी धर्महिं भजि।
कियौ विप्र स्वीकार कह्यौ "पुत्रीवत रहियौ।
गृह के काम काज की सुधि छमता जुत लहियौ" ॥ २५ ॥

यह सुनि द्विज सौं तुरत स्वर्णमुद्रा लै आई।
नृप के बसन माहिं बाँधत करुना अधिकाई ॥
कह्यौ विप्र सौं "कीजै क्षमा नैकुं अब द्विजवर।
लेहिं निरखि भरि नैन नाह कौ आनन सुंदर ॥ २६ ॥

फिर यह आनन कहाँ कहाँ यह नैन अभागी"।
यौं कहि बिलखि निहारि नृपति-रुख रोवन लागी ॥
कह्यौ विप्र "हम चलत सिष्य के सँग तुम आवौ।
निजु पति सौं मिलि माँगि बिदा दुख नैकु न पावौ"॥ २७ ॥

यौं कहि द्विज कौडिन्यहिं छाँड़ि गए निज घर कौं।
सैब्या लगी पाइँ परि बिनवन नाह सुघर कौं ॥
"दरसन हूँ दुर्लभ अब तौ लखि परत तिहारे।
छमहु भए जो होंहिं नाथ अपराध हमारे" ॥ २८ ॥

यह सुनि महा धीर भूपहु कौ साहस छूट्यौ।
अश्रु-बाह कौ प्रबल पूर दोहूँ दिसि फूट्यौ॥
पै पुनि करि हिय प्रौढ़ भूप रानिहिँ समुझायौ।
बहु बिधि करि उपदेस धर्म-पथ कठिन दिखायौ॥ २९॥

कह्यौ "बिप्र की आयसु पैँ नित प्रति मन दीज्यौ।
जासौँ रहै प्रसन्न सदा सोई कृत कीज्यौ॥
बिप्रानिहुँ कौँ तुष्ट सुखद सेवा सौ रखियौ।
औ सिष्यनि की ओर सप्रुद मातावत लखियौ॥३०॥

जथासक्ति बालक हू को प्रतिपालन कीज्यौ।
रहै धर्म जासौँ करि कर्म सोई जस लीज्यौ"॥
लखि बिलंब अनखाइ "चलौ" कौडिन्य कह्यौ तब।
कह्यौ भूप दृग-बारि ढारि "हाँ देवि जाहु अब"॥३१॥

चलत देखि दुखकृत-बिकृत मुख बालक खोल्यो।
"कहाँ जाति, जनि जाइ माइ" अंचल गहि बोल्यौ॥
पुनि बिलंब जिय जानि क्रूर कौडिन्य रिसायौ।
कह्यो "बेगि चलि" झटकि बालकहिँ भूमि गिरायौ॥३२॥

रोवन लाग्यौ फूटि झपटि हरिचंद उठायौ।
धूरि पोंछि मुख चूमि लाइ हिय मौन गहायौ॥
कह्यौ बिप्र सौँ "सुनौ देवता यह अबोध है।
बालक पै न कबहुँ उचित कहुँ इतौ क्रोध है"॥३३॥

पुनि बालक कौं बोधि कह्यौ "माता सँग जावौ"।
कह्यौ महारानी सौं "अब जनि देर लगावौ" ॥
चली बटुक के संग उछंग लिए बालक कौं।
फिरि फिरि करुनासहित बिलोकति नरपालक कौं ॥३४॥

इहिँ विधि ओझल भई दृगनि सौं उत महरानी।
इत आए दृग लाल किये कौसिक मुनि मानी ॥
सहित अमोघ अतंक वंक भृकुटी करि भाष्यौ।
"अब विलंब केहि हेत दच्छिना मैं करि राख्यौ ॥३५॥

साँझ होन मैं देर दिखाति नैंकहूँ नाहीं।
देत क्यौं न अब मूढ़ कहा सोचत मन माहीं" ॥
परसि चरन नरनाह कह्यौ "आधी यह लीजै।
सेसहु वेगिहिँ देत छमा करुना करि कीजै" ॥३६॥

बोले ऋषि करि क्रोध "कहा आधी लै करिहैं।
एकहि बेर बिना लीन्हैं सब अब नहिँ टरिहैं ॥
हम ब्यवहारी नाहिँ लेहिँ जो खंड खंड करि"।
सुनि मुनि की यह बात गई धुनि यह नभ मैं भरि ।।३७॥

"धिक सब तप, ब्रत, ज्ञान तथा धिक बहुश्रुतताई।
जो हरिचंद भुआलहिँ यह दुर्दसा दिखाई" ॥
सुनि यह धुनि मुनि मानि माख मुख नभ-दिसि कीन्ह्यौ।
बिश्वेदेवनि निरखि साप अति रिस भरि दीन्ह्यौ ॥३८॥

"रे छत्री - कुल - पच्छ सदा उर रच्छनहारे।
अंतरिच्छ सौं वेगिहिं गिरौ समच्छ हमारे॥
छत्रिहिं कुल मैं होहि जन्म पुनि जाइ तिहारे।
बालपनहिं मैं जाहु बहुरि दुज-हाथनि मारे" ॥३९॥

जल छोड़त इमि भाषि भयौ कोलाहल भारी।
लगे गगन सौं गिरन सकल है परम दुखारी॥
यह लखि भूप सराहि तपोवल मन मैं भाख्यौ।
"साँचहि मुनि अति दयाभाव हम पर यह राख्यौ ॥४०॥

जो नहिं अब लौं दियौ साप करि दाप हृदय मैं"।
पुनि बोले कर जोरि वचन वर बोरि बिनय मैं॥
"दासी करि महिषीहिं दिरम आधे ही पाए।
यह लीजै तन बेचि देत अब सेस चुकाए" ॥४१॥

यौं कहि गाँठि निवारि डारि धन महि पर दीन्हौ।
तिरस्कार ताकौ करि मुनि यह उत्तर दीन्हौ॥
"हम आधौ नहिं चहत एक बेरहिं सब लैहैं।
राखहु दृढ़ यह जानि और अवसर नहिं दैहैं" ॥४२॥

लागे भूप ससंक बहुत ग्राहक-गन टेरन।
लगी भीर पुनि आइ चारिहू दिसि तैं हेरन॥
डोम चौधरी मरघट कौ तिहिं अवसर आयौ।
इक सेवक कैं संग सुरा कैं रंग रँगायौ ॥४३॥

कारौ तन बिकराल बदन लघु दृग मतवारे।
लाल भाल पै तिलक केस छोटे घुँघरारे॥
अकबक बोलत बैन कह्यौ "हम तुम्हैं बिकैहैं।
तुम जो माँगत मोल पाँच सौ मोहर दैहैं" ॥४४॥

यह सुनि नृप हरषाइ कह्यौ "आऔ इत आओ"।
लखि सकाइ पूछ्यौ "पै को तुम प्रथम बताओ"॥
सो बोल्यौ "हम डोम चौधरी मरघटवारे।
अमल हमारौ रहत नदी के दुहूँ किनारे॥४५॥

फूलमती कौ पूजन करत कलेस नसावन।
बिना लिएँ कर कफन देत नहिं मृतक जरावन॥
धन-तेरस की साँझ और अधिरात दिवाली।
नाचि कूदि बलि दै पूजैं मसान औ काली॥४६॥

सोई हम यह सुनौ मोल तुमकौं अब लैहैं।
तुरत गाँठि सौं खोलि पाँच सौं मोहर दैहैं"॥
यह सुनि अति दुख पाइ नाइ सिर भूप विचार्यौ।
"तब नहिं तौ अब सबहिं भाँति बिधि ब्यौंत बिगार्यौ॥४७॥

बिकैं होत चंडाल बिकैं बिन ऋन न चुकत है।
कीजे कौन उपाय हाय नहिं धीर रुकत है॥
औ अब साँजहु होन माहिं कछु औसर नाहीं।
अरे कहूँ है जाइ नं दिन इनि झगड़नि माहीं" ॥४८॥

पुनि ह्वै विकल कह्यौ ऋषि सौं "करुना अब कीजै।
इहि अवसर गहि बाँह उबारि हमैं जस लीजै॥
करि निज दास जन्म भर सब सेवा करवाऔ।
हा हा पै चंडाल होन सौं हमैं बचाऔ" ॥४९॥

"कौन काज करिहैं" बोले मुनि "दास हमारौ।
हम तपस्वि निज दास आपहीं तुमहिं बिचारौ" ॥
कह्यौ भूप पुनि "नैंकु दया उर अंतर आनौ।
करिहैं सो सब जो आज्ञा ह्वै है मुनि मानौ" ॥५०॥

"सुनो धर्म साखी सब" मुनि यह सुनत पुकार्यौ।
"मम आज्ञा पालन कौ पन देखौ यह धार्यौ" ॥
कह्यौ भूप "हाँ हाँ ह्वैहै आज्ञा सो करिहैं।
सब संसय परिहरहु प्रतिज्ञा सौं नहिं टरिहैं" ॥५१॥

बोले मुनि "तौ होति इहै आज्ञा, न बकाऔ।
बिकि याही कैं हाथ दच्छिना अबहिं चुकाऔ" ॥
सुनि यह अधर दबाइ नाइ सिर मौन भए छन।
फिर बोले "अच्छा याही कैं कर बेचत तन" ॥५२॥

बहुरि डोम सौं कह्यौ "सुनहु पहिलहि हम भाषत।
बिकत रावरैं हाथ नियम पर ये करि राखत ॥
रखिहैं भिच्छा असन बसन-हित कंबल लैहैं।
बसिहैं बिलग बेगि करिहैं आयसु जो पैहैं" ॥५३॥

सो सुनि नृप के वचन नियम सब स्वीकृत कीन्हे।
पँच सत स्वर्न खंड सेवक सौं लै गिनि दीन्हे॥
भूपति अति सुख मानि धरे लै मुनिवर आगे।
मुनि उठाइ कहि 'स्वस्ति' चहूँ दिसि बाँटन लागे॥५४॥

कह्यौ भूप "ऋषिराज सकल अपराध छमौ अब।
जो विलंब सौं भयो कष्ट विसराइ देहु सब"॥
"तजहु संक हम भए तुष्ट लखि चरित तिहारे"।
यौं कहि नैन नवाइ वेगि ऋषिराइ सिधारे॥५५॥

बोले नृप भरि साँस आँसु तब पोंछि वसन सौं।
"आयसु होहि सो करहिँ, चौधरी! अब तन मन सौं"।
कह्यौ चौधरी "तुम दक्खिन मसान पर जाऔ।
तहाँ कफन के दान लेन मैं नित चित लाऔ॥५६॥

विना दिएँ कर मृतक फुकन कबहूँ नहिँ पावै।
धनी रंक राजा परजा कैसहु कोउ आवै॥
घाट निवास सचेत करौ ह्वै दास हमारे"।
यह आयसु सुनि भूप तुरत तिहिँ दिसि पग धारे॥५७॥

लगे कफन कर लेन जाइ तहँ इत महिदानी।
उपाध्याय घर जाइ भई दासी उत रानी॥
इहिँ विधि दारा संग बेचि निज अंग दास ह्वै।
राख्यौ नृप निज रंग इंद्र भौ दंग जाहि ज्वै॥५८॥

चौथा सर्ग

कीन्हे कवल वसन तथा लीन्हे लाठी कर।
सत्यव्रती हरिचंद हुते टहरत मरघट पर॥
कहत पुकारि पुकारि "विना कर कफन चुकाए।
करहि क्रिया जनि कोइ देत हम सबहिँ जताए" ॥१॥

कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति बुझाई।
एक लगाई जाति एक की राख वहाई॥
विविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरवी सौं चटचटाति कहुँ दह दह दहकति ॥२॥

कहुँ फूकन-हित धर्यौ मृतक तुरतहिँ तहँ आयौ।
पर्यौ अंग अधजर्यौ कहूँ कोऊ कर खायौ॥
कहूँ स्वान इक अस्थिखंड लै चाटि चिचोरत।
कहुँ कारी महि काक ठोर सौं ठोकि टटोरत ॥३॥

कहुँ शृगाल कोउ मृतक-अंग पर ताक लगावत।
कहुँ कोउ सव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत॥
जहँ तहँ मज्जा माँस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे॥४॥

हरहरात इक दिसि पीपर कौ पेड़ पुरातन।
लटकत जामैं घंट घने माटी के बासन॥
बरषा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक।
सरिता बहति सवेग करारे गिरत अचानक॥५॥
ररत कहूँ मंडूक कहूँ झिल्ली झनकारैं।
काक-मंडली कहूँ अमंगल मंत्र उचारैं॥
लखत भूप यह साज मनहिं मन करत गुनावन।
"पर्यौ हाय! आजन्म कर्म यह करन अपावन॥६॥

भए डोम के दास बास ऐसे थल पायौ।
कफ़न-खसोटी काज माहिं दिन जात बितायौ॥
कौन कौन सी बातनि पै दृग-बारि बिमोचैं।
अपनी दसा लखैं कै दुख रानी कौ सोचैं॥७॥

कै अजान बालक कौ अब संताप बिचारैं।
भयौ कहा यह हाय होत मन हृदय बिदारैं॥
पै याहू करि सकत नाहिं अब हे त्रिपुरारी॥
भए और के दास कहाँ निज-तन-अधिकारी"॥८॥

इहि विधि विविध विचार करत चारिहुँ दिसि टहरत।
कबहुँ चलत कहुँ चपल कबहुँ काहू थल ठहरत॥
लखि मसान देवी कौ थल तहँ सीस नवायौ।
अति प्रसन्नता सहित सब्द यह तित तैं आयौ॥ ९॥

"महाराज हम पूज्य सदा चंडालनि ही की।
तव प्रनाम सौं होतिं सुनहु लज्जित परि फीकी॥
भईं तुष्ट अति पै बिलोकि सच्चरित तिहारे।
माँगहु जो वर देहिं तुरत यह हृदय हमारे"॥ १०॥

बोले नृप "साँचहिं प्रसन्न तौ यह वर दीजै।
सब विधि सौं कल्यान हमारे प्रभु कौ कीजै"॥
बहुरि भई धुनि "धन्य धर्म यह को पहिचानै।
साधु साधु हरिचंद कौन तुम बिन इमि ठानै"॥ ११॥

भई आनि तब साँझ घटा आई घिरि कारी।
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी॥
भए एकठा आनि तहाँ डाकिनि-पिसाच-गन।
कूदत करत कलोल किलकि दौरत तोरत तन॥ १२॥

आकृति अति विकराल धरे, कैला से कारे।
बक्र-बदन लघु-लाल-नयन-जुत, जीभ निकारे॥
कोउ कड़ाकड़ हाड़ चाबि नाचत दै ताली।
कोऊ पीवत रुधिर खोपरी की करि प्याली॥ १३॥

कोउ अँतड़िनि की पहिरि माल इतरात दिखावत।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत॥
कोउ मुंडनि लै मानि मोद कंदुक लौं डारत।
कोउ रुंडनि पै बैठि करेजौ फारि निकारत॥ १४॥

ऐसे अवसर कठिन सबहिँ बिधि धीर-नसावन।
नृप-दृढ़ता के कसन हेतु हरि कीन्ह गुनावन॥
करि कापालिक बेस धर्म तब तिहि ठाँ आयौ।
बसन गेरुआ अंग भंग कैँ रंग समायौ॥ १५॥

छूटे लाँबे केस नैन राजत रतनारे।
सिर सेंदुर कौ तिलक भस्म सब तन मैं धारे॥
एक हाथ खप्पर चिमटा दूजैं कर भ्राजत।
गरैं हाड़ के हार सहित तरिवार बिराजत॥ १६॥

लखि नृप कियौ प्रनाम भए ठाढ़े सिर नाए।
कह्यौ कपालिक "हम तुम पैं अर्थी है आए"॥
यह सुनि नृप सकुचाइ नैन नीचैं करि भाष्यौ।
"जोगिराज हमकौं बिधि काहू जोग न राख्यौ"॥ १७॥

सो बोल्यौ "हम जोग दृष्टि सौं सब कछु जानत।
करहु न नृप संकोच सोचि कछु यह उर ठानत॥
जदपि भई यह दसा तदपि हम कहत पुकारे।
महाराज सब काज आज करि सकत हमारे"॥ १८॥

कह्यौ भूप "तौ नैंकुहु नहिँ संसय उर आनौ।
होहि हमारे जोग काज सो वेगि बखानौ" ॥
कह्यौ जोगि "वैताल, जोगिनी, वज्र, रसायन।
बहुरि पादुका, धातु-भेद, गुटिका औ आँजन ॥१९॥

सब के सिद्धि-विधान भली भाँतिनि हम जानत।
विघ्न उपस्थित होत आनि पै नैंकु न मानत ॥
तिन्हैँ निवारौ तुम तौ सिद्धि वेगि हम पावैँ।
निकट सिद्धि-आकर ह्याँ सौँ तहँ जाइ जगावैँ" ॥२०॥

लहि उत्तर अनुकूल गयौ उत सुख सौँ साधक।
इत नृप विघननि रोकि होन दीन्ह्यौ नहिँ बाधक ॥
पुनि कछु समय विताइ तहाँ जोगी सो आयौ।
अति आनँद सौँ उमगि भूप कौँ टेरि सुनायौ ॥२१॥

"महाराज तव कृपा आज हम सब कछु पायौ।
देखौ महानिधान सिद्ध यह भयौ सुहायौ ॥
जोगी जन जाके प्रभाव ह्वै अमर अमर लौँ।
विहरहिँ निपट निसंक जाइ गिरि मेरु सिखर लौँ ॥२२॥

लीजे आपहु ह्वै प्रसन्न हम सादर लाए"।
कह्यौ भूप "बस क्षमा करहु हम दास पराए ॥
बिन स्वामी के कहैँ कछू काहू सौँ लैवौ।
जानि परत हमकौँ जैसे करि कपट कमैवौ" ॥२३॥

कह्यौ कपालिक "तौ न वृथा एतौ दुख पाश्रौ।
यासौं स्वर्न बनाइ जाइ निज दास्य छुड़ाश्रौ" ॥
सत्यव्रती हरिचंद बहुरि यह उत्तर दीन्ह्यौ।
"जोगिराज निज मत-प्रकास प्रथमहिँ हम कीन्ह्यौ ॥२४॥

होइ चुके जब दास गुनत तब यह मत नीकौ।
जो कछु हमकौं मिलै सबहि धन है स्वामी कौ ॥
यातैं करि अब कृपा मानि विनती यह लीजै।
जो कछु देवौ होइ जाइ स्वामिहिँ कौं दीजै" ॥२५॥

यह सुनि अजगुत मानि मनहिँ मन धर्म सराह्यौ।
"अहो भूप हरिचंद इहाँ लौं सत्य निबाह्यौ" ॥
बहुरि विदा लै दै असीस यह भाषि सिधार्‌यौ।
"अच्छा सोई करत जाइ जो तुम उच्चार्‌यौ" ॥२६॥

पुनि आए तिहिँ ठाम अनेक देव देवी तब।
आठहु सिद्धि नवौ निधि द्वादसहू प्रयोग सब ॥
लगे कहन "जय होइ भूप हरिचंद तिहारी।
तुम करि कृपा समस्त विघ्न-बाधा निरवारी ॥२७॥

अब जो आज्ञा होइ करहिँ हैँ सुबस तिहारे"।
यह सुनि गुनि मन माहिँ नृपति इमि वचन उचारे ॥
"कृपा भाव यह आहिँ सुनहु सब भाँति तिहारे।
पराधीन हम पै यातैं यह कहत पुकारे ॥२८॥

जो प्रसन्न तौ महासिद्धि जोगिनि पहँ जाऔ।
औ सज्जन के सदन सदा निधि वास बनाऔ॥
औ प्रयोग साधकनि प्राप्त है मोद बढ़ाऔ।
पै भाषत यह भेद ताहि गुनि हृदय बसाऔ॥२९॥

जो षट भले प्रयोग सहज हीं होहिं सिद्ध सो।
सधहिं बिलँव सैाँ पै प्रयोग षट आहिं बुरे जो"॥
यह सुनि भौत्रक है समस्त यह उत्तर दीन्हौ।
"धन्य भूप हरिचंद लोक-उत्तर कृत कीन्यौ॥३०॥

तुम बिन को महि जो ऐसी संपति लहि त्यागै।
आपुनपौ बिसराइ जगत के हित मैं पागै"॥
यौँ कहि दै असीस सब देवी देव सिधारे।
पुनि नृप टहरन लगे लट्ठ काँधे पर धारे॥३१॥

गई राति रहि सेस रंचक पौ फाटन लागी।
नृप के अंतिम परखन की पारी तब जागी॥
टहरत टहरत बाम अंग लागे कछु फरकन।
औ ताही कैँ संग अनायासहिँ हिय धरकन॥३२॥

लगे चित्त मैँ अनुभव होन असुभ संघाती।
भई बृत्ति उच्चाट भर्भरि आई भरि छाती॥
एकाएक अनेक कल्पना उठीँ भयानक।
कियौ गुनावन भूप "भयौ यह कहा अचानक॥३३॥

यह असगुन क्यौं होत कहा अब अनरथ ह्वैहै।
गयो कहा रहि सेस जाहि विधना अब ख्वैहै॥
छूट्यो राज समाज भए पुनि दास पराए।
ऐसी महिषीहूँ कौं उत दासी करि आए॥३४॥

औ अबोध बालकहूँ कौं बिलखत सँग भेज्यौ।
इक मरिबे कौं छाड़ि कहा जो नाहिँ अँगेज्यौ"॥
फरकी बाईं आँख बहुरि सोचत बालक कौं।
औ यह धुनि सुनि परी परम दृढ़-व्रत-पालक कौं॥३५॥

"सावधान अब वत्स परिच्छा अंतिम है यह।
डगन न पावै सत्य हरिच्छा अंतिम है यह॥
ऐसौ कठिन कलेस सह्यौ कोऊ नृप नाहीँ।
अपनेहिँ कैसौ धैर्य धरौ याहू दुख माहीँ॥३६॥

तव पुरुषा इछ्वाकु आदि सब नभ मैं ठाढ़े।
सजल नयन धरकत हिय जुत इहिँ अवसर गाढ़े॥
संसय संका सोक सोच संकोच समाए।
साँस रोकि तव मुख निरखत बिन पलक गिराए॥३७॥

देखहु तिनके सीस होन अवनत नहिँ पावैँ।
ऐसी विधि आचरहु सकल-जग-जन जस गावैँ"॥
यह सुनि नृप ह्वै चकित चपल चारिहु दिसि हेर्‌यौ।
"ऐसे कुसमय माहिँ कौन हित सौँ इमि टेर्‌यौ"॥३८॥

जब कोउ दीस्यो नाहिँ हृदय तब यह निरधार्यौ ।
"ज्ञात होत कुलगुरु सूरज यह मंत्र उचार्यौ ॥
है आतुर निज आवन मैं करि विलँब गुनावन ।
उदयाचल की ओटहि सौं यह दीन्ह सिखावन" ॥ ३९ ॥

यह बिचारि पुनि धारि धीर दृढ़ उत्तर दीन्यौ ।
"महानुभाव महान अनुग्रह हम पर कीन्ह्यौ ॥
तजहु संक सब अंक कलंक लगन नहिँ दैहैं ।
जब लौं घट मैं प्रान आन करि सत्य निबैहैं" ॥ ४० ॥

एतेहि मैं श्रुति माहिँ सब्द रोवन कौ आयौ ।
भूलि भाव सब और स्वामि-हित पर चित लायौ ॥
लह्यौ चौंकि तिहिँ ओर चले आतुर आहट पर ॥
साँति मुनिनि की वारि गई तिहिँ घबराहट पर ॥ ४१ ॥

पग उठावतहिँ भए असुभ सुभ सगुन एक सँग ।
जंबुक काटी बाट लगे फरकन दहिने अँग ॥
विगत विषाद हर्षहत हिय करि धैर्य भाव भरि ।
होत हुतो जहँ रुदन तहाँ पहुँचे सुमिरत हरि ॥ ४२ ॥

देखी सहित विलाप विकल रोवति इक नारी ।
धरे सामुहैं मृतक देह इक लघु आकारी ॥
कहति पुकारि पुकारि "वत्स मैया मुख हेरौ ।
बीरपुत्र है ऐसे कुसमय आँखि न फेरौ ॥४३॥

निन्नानबे

हाय हमारौ लाल लियौ इमि लूटि बिधाता।
अब काकौ मुख जोहि मोहि जीवै यह माता॥
पति त्यागैं हूँ रहे प्रान तव छोह सहारे।
सो तुमहूँ अब हाय बिपति मैं छाँड़ि सिधारे॥४४॥

अबहिं साँझ लौं तौ तुम रहे भली बिधि खेलत।
औचकहीं मुरझाइ परे मम भुज मुख मेलत॥
हाय न बोले बहुरि इतोही उत्तर दीन्ह्यौ।
'फूल लेत गुरु हेत साँप हमकौं डसि लीन्ह्यौ'॥४५॥

गयौ कहाँ सो साँप आनि क्यौं मोहुँ डसत ना।
अरे प्रान किहिं आस रह्यौ अब बेगि नसत ना॥
कबहुँ भाग-बस प्राननाथ जौ दरसन दैहैं।
तौ तिनकौं हम बदन कहौ किहिं भाँति दिखैहैं॥ ४६॥

उन तौ सौंप्यौ हमैं दसा हम यह करि दीन्ही।
हाय हाय क्यौं सुमन चुनन की आयसु दीन्ही॥
अहो नाथ अब तौ आवौ इत नैकुं कृपा करि।
लेहु निरखि निज हृदय-खंड कौ बदन नैन भरि॥ ४७॥

प्रानदंड दै हमैं कष्ट सब बेगि निवारौ।
सुनत क्यौं न इहिं बेर फेर निज न्याव सम्हारौ॥
हाय वत्स किन सुनि पुकारि मैया की जागत।
अरे मरे हूँ पै तुम तौ अति सुंदर लागत"॥ ४८॥

करि विलाप इहिँ भाँति उठाइ मृतक उर लायौ।
चूमि कपोल विलोकि वदन निज गोद लिटायौ॥
हिय-वेधक यह दृश्य देखि नृप अति दुख पायौ।
सके न सहि बिलगाइ नैंकु हटि सीस नवायौ॥ ४९॥

लगे कहन मन माहिँ "हाय याकौ दुख देखत।
हम अपनोहूँ दुसह दुःख न्यूनहिँ करि लेखत॥
ज्ञात होत काहू कारन याकौ पति छूट्यौ।
पुत्र-सोक कौ वज्र हृदय ताहू पर टूट्यौ॥५०॥

हाय हाय याकौ दुख देखत फाटति छाती।
दियौ कहा दुख अरे याहि विधना दुरघाती॥
हाय हमैं अब याहू सौं माँगन कर परिहै।
पै याके सौंहैं कैसैं यह बात निकरिहै" ॥५१॥

पुनि भूपति कौ ध्यान गयौ ताके रोवन पर।
बिलखि बिलखि इमि भाषि सीस धुनि मुख जोवन पर॥
"पुत्र! तोहि लखि भाषत हे सब गुनि औ पंडित।
ह्वैहै यह महराज भोगिहै आयु अखंडित॥५२॥

तिनके सो सब वाक्य हाय प्रतिकूल लखाए।
पूजा पाठ दान जप तप सब बृथा जनाए॥
तव पितु कौ दृढ़-सत्य-व्रतहु कछु काम न आयौ।
बालपनेहिँ मैं मरे जथाविधि कफन न पायौ" ॥५३॥

यह सुनि औरै भए भाव सब भूप हृदय के।
लगे दृगनि मैं फिरन रूप संसय अरु भय के ॥
चढ़ी ध्यान पै आनि पूर्व घटना सम है है।
हिचकिचान से लगे कछुक सबकी दिसि ज्वैं ज्वै ॥५४॥

एतहि मैं रोवत रोवत सो बिलखि पुकारी।
"हाय आज पूरी कौसिक सब आस तिहारी" ॥
यह सुनि एकाएक भई धक सौं नृप छाती।
भरी भराई सुरँग माहिं लागी जनु बाती ॥५५॥

धीरज उड्यौ धधाइ धूम दुख कौ घन छायौ।
भयौ महा अंधेर न हित अनहित दरसायौ ॥
विविध गुनावन महा मर्म-भेदी जिय जागे।
"हाय पुत्र! हा रोहितास्व!" कहि रोवन लागे ॥५६॥

"हाय भयौ हो कहा हमैं यह जात न जान्यौ।
जो पत्नी अरु पुत्रहिं अब लौं नाहिं पिछान्यौ ॥
हाय पुत्र तुम कहा जनमि जग मैं सुख पायौ।
कीन्ह्यौ कहा विलास कहा खेल्यौ अरु खायौ ॥५७॥

हाय, हमारे काज कष्ट भोग्यौ तुम भारी।
राजकुँवर है हाय भूख औ प्यास सहारी ॥
पातक ही हैं गयौ आज लौं जो हम कीन्ह्यौ।
नतरु पुत्र कौ सोच दुसह अति क्यौं बिधि दीन्ह्यौ ॥५८॥

कहिहै सब संसार हमैं अब हाय पातकी।
सहिहैं कैसैं हाय चोट पर चोट बात की!
हाय! पुत्र यह कहा गई है दसा तिहारी।
गए कहाँ तजि माता पितहिँ ससोक दुखारी ॥५९॥

हम तौ साँचहिं किये सबहि अपराध तिहारे।
पै दुखिनी मैया कौं क्यौं तजि बृथा सिधारे ॥
हाय-हाय जग मैं कैसे अब वदन दिखैहैं।
कहा महारानी के सौंहैं बात बनैहैं ॥ ६० ॥

जग कौं यह बृत्तांत जनावन के पहिलैं हीं।
महिषी कौं यह वदन दिखावन के पहिलैं हीं ॥
जानि परत अति उचित प्रान तजि देन हमारौ।
जामैं सब संसार माहिँ मुख होहि न कारौ" ॥ ६१ ॥

यह बिचार दृढ़ करि पीपर के पास पधारे।
लीन्हीं डोरी खोलि द्वैक घंटनि करि न्यारे ॥
मेलि तिन्हैं पुनि एक छोर पर फाँद बनायौ।
चढ़ि इक साखा बाँधि छोर दूजौ लटकायौ ॥ ६२ ॥

पै ज्यौंहीं गर माँहिँ फाँद दै कूदन चाह्यौ।
त्यौंहीं सत्य-विचार बहुरि उर माहिँ उमाह्यौ।
"हरे-हरे यह कहा बात हम अनुचित ठानी।
कहा हमैं अधिकार भई जब देह बिगानी ॥ ६३ ॥

जौ हम तजिबौ प्रान होइ मतिअंध विचारयौ।
हाय जाय कैसैं यह मनसा-पाप निवारयौ॥
दुख सौं गई हाय ऐसी है मति मतवारी।
अंतरजामी नाथ छमहु यह चूक हमारी॥ ६४॥

अब तौ हम हैं दास डोम के आज्ञाकारी।
रोहितास्व नहिँ पुत्र न सैब्या नारि हमारी॥
चलैं स्वामि के काज माहिँ दृढ़ ह्वै चित लावैं।
लेहिँ कफन कौ दान बेगि नहिँ बिलँब लगावैं॥ ६५॥

यह निरधारि निवारि फाँद हिय मौढ़ महा करि।
उतरि आइ रानी पाछैं ठमके उर कर धरि॥
सुन्यौ बहुरि ताकौ बिलाप अति बिकल करैया।
"हाय बत्स अब उठौ हमैं टेरौ कहि मैया॥ ६६॥

हाय-हाय काकैं हित अब हम असन बनैहैं।
काकौं मुख की धूरि पोंछि कै अंक लगैहैं॥
अब काकैं अभिमान बिपति हूँ मैं सुख मानैं।
दासी हूँ ह्वै रानिनि सौं निज कौं बढ़ि जानैं॥ ६७॥

हाय बत्स तुम बिन अब जग जीवति नहिँ रैहैं।
याही छन इहिँ ठाम प्रान काहू विधि दैहैं॥
याहि बिटप मैं लाइ गरैं फाँसी मरि जैहैं।
कै पाथर उर धारि धार मैं धाइ समैहैं"॥ ६८॥

यौँ कहि उठि अकुलाइ चह्यो धावन ज्यौँ रानी।
त्यौँ स्वर करि गंभीर धीर बोले नृप बानी॥
"बेचि देह दासी है तब तौ धर्म सम्हार्यौ।
अब अधरम क्यौँ करति कहा यह हृदय विचार्यौ॥ ६९॥

या तन पै अधिकार कहा तुमकौँ सोचौ छिन।
जानि बूझि जो मरन चलीँ स्वामी-आयसु बिन"॥
यह सुनि है चैतन्य महारानी मन आन्यौ।
"ऐसे कुसमय माँहिँ कौन हित-मंत्र बखान्यौ॥ ७०॥

साँचहिँ अनरथ होन चहत हो यह अति भारी।
धन्य धर्मवक्ता सो जो गहि बाँह उबारी॥
हमैँ कौन अधिकार रह्यौ अब प्रान तजन कौ।
दीसत और उपाय न दुख सौँ दूर भजन कौ॥ ७१॥

तौ छाती धरि वज्र लोक-आचार सम्हारैँ।
जिन कर पाल्यौ तिन कर....! हाहा काहिँ पुकारैँ॥
इहिँ विधि करत विलाप काठ चुनि चिता बनाई।
धाइ मारि सो मृतक देह ताकैँ ढिग ल्याई॥ ७२॥

तब नृप बरबस रोकि आँसु, सौँहैँ चढ़ि आए।
याम्हि करेजौ धारि धीर ये सब्द सुनाए॥
"है मसानपति की आज्ञा कोउ मृतक फुकै ना।
जब लौँ फूकन-द्वार कफन आधौ कर दै ना॥ ७३॥

यातैं देवी देहु तुमहुँ कर, क्रिया करौ तव" ।
भर्यौ गगन यह सब्द भूप इमि टेरि कह्यौ जब ॥
"धन्य धैर्य बल सत्य दान सब लरात तिहारे ।
अहो भूप हरिचंद सकल लोकनि तैं न्यारे" ॥ ७४ ॥

यह सुनि सैब्या भई चकित बोली इत उत ज्वै ।
"आर्यपुत्र की करत प्रसंसा कौन हितू है ॥
पै इहि बृथा प्रसंसा हूँ सौं होत कहा फल ।
जानि परत सब सास्त्र आदि अब तौ मिथ्या छल ॥ ७५ ॥

निसंदेह सुर सकल महीसुर स्वारथरत अति ।
नातरु ऐसे धर्मी की कैसैं ऐसी गति" ॥
यह सुनि स्रवननि धारि हाथ भूपति तिहिँ टोक्यौ ।
"हरे-हरे यह कहत कहा तुम" यौं कहि रोक्यौ ॥ ७६ ॥

"सूर्य-बंस की वधू चंद्र-कुल की है कन्या ।
मुख सौं काढ़त हाय कहा यह बात अधन्या ॥
बेद ब्रह्म ब्राह्मन सुर सकल सत्य जिय जानौ ।
दोष आपने कर्महिँ कौ निहचय करि मानौ ॥ ७७ ॥

मुख सौं ऐसी बात भूलि फिरि नाहिँ निकारौ ।
होत बिलँब, दै हमैं कफन करि क्रिया पधारौ" ॥
सुनि यह अति दृढ़ बचन महिपि निज नाथहिँ जान्यौ ।
कछु सुभाव कछु स्वर कछु आकृति सौं पहिचान्यौ ॥७८॥

परी पायँ पर धाइ, फूटि पुनि रोवन लागी।
औरहु भई अधीर अधिक आरति जिय जागी॥
कह्यौ हुचकि "हा नाथ! हमैं ऐसो बिसरायौ।
कहाँ हुते अब लौं कबहूँ नहिँ बदन दिखायौ॥ ७९॥

हाय आपने प्रिय सुत की यह दसा निहारी।
लूटि गईं हम हाय करहिँ अब कहा उचारौ"॥
सुनि भूपति गहि सीस उठाइ बिबिध समुझायौ।
"प्रिये न छाँड़ौ धैर्य लखौ जो दैव लखायौ॥ ८०॥

अब बिलंब कौ समय नाहिँ चेतौ मत रोवौ।
भोर होनही चहत उठौ अवसर जनि खोवौ॥
कोउ इत उत तैं आनि कहूँ पहिचानि जु लैहै।
इक लज्जा बचि रही अहै सोऊ चलि जैहै॥ ८१॥

चलौ हमैं दै कफन क्रिया करि भौन सिधारौ।
सुनौ वीर-पत्नी है धीरज नाहिँ बिसारौ"॥
यह सुनि सैब्या कह्यौ बिलखि अतिसय मन माहीँ।
"नाथ हमारे पास हुतौ बस्तर कोउ नाहीँ॥ ८२॥

अंचल फारि लपेटि मृतक फूंकन ल्याई हैँ।
हा हा! एती दूर बिना चादर आई हैँ॥
दीन्हैँ कफनहिँ फारि लखहु सब अंग खुलत हैँ।
हाय! चक्रवर्ती कौ सुत बिन कफन फुकत है"॥ ८३॥

कह्यौ भूप "हम करहिँ कहा हैँ दास पराए।
फुकन देन नहिँ सकत मृतक बिन कर चुकवाए॥
ऐसे ही अवसर मैं पालन धर्म काम है।
महा बिपति मैं रहै धैर्य सोई ललाम है॥ ८४॥

बेंचि देह हूँ जिहिँ सत्यहिँ राख्यौ, मन ल्याऔ।
इक टुक कपड़े पर, तेहिँ जनि आज छुड़ाऔ॥
फाड़ि कफन तैं अर्ध बसन कर बेगि चुकाऔ।
देखौ चाहत भयौ भोर जनि देर लगाऔ" ॥ ८५ ॥

सुनि महिषी बिलखाइ कफन फारन उर ठायौ।
पै ज्यौंहीं उत "जो आज्ञा" कहि हाथ बढ़ायौ॥
त्यौंहीं एकाएक लगी काँपन महि सारी।
भयौ महा इक घोर सब्द अति विस्मयकारी॥ ८६ ॥

बाजे परे अनेक एकही बेर सुनाई।
बरसन लागे सुमन चहूँ दिसि जय-धुनि छाई॥
फैलि गई चहुँ ओर बिज्जु कैसो उँजियारी।
गहि लीन्ह्यौ कर आनि अचानक हरि असुरारी॥ ८७॥

लगे कहन दृग बारि ढारि "बस महाराज बस।
सत्य-धर्म की परमावधि ह्वै गई आज बस॥
पुनि-पुनि काँपति धरा पुन्य-भय लखहु तिहारे।
अब रच्छहु तिहुँ लोक मानि मन बचन हमारे" ॥ ८८ ॥

करि दंडवत प्रनाम कह्यौ महिपाल जोरि कर।
"हाय! हमारे काज कियौ यह कष्ट कृपा कर" ॥
एतोही कहि सके बहुरि नृप-गर भरि आयौ।
तब सैब्या सौं नारायन यह टेरि सुनायौ ॥ ८९ ॥

"पुत्री अब मत करौ सोच सब कष्ट सिरायौ।
धन्य भाग्य हरिचंद भूप लौं पति जो पायौ" ॥
रोहितास्व की देह ओर पुनि देखि पुकार्यौ।
"उठौ भई बहु बेर! कहा सोवन यह धार्यौ?" ॥ ९० ॥

एतौ कहतहिँ भयौ तुरत उठि कै सो ठाढ़ौ।
जैसैँ कोऊ उठत बेगि तजि सोवन गाढ़ौ ॥
लग्यौ चकित ह्वै चारहुँ ओर बिस्मय देखन।
कबहुँ मातु अरु कबहुँ पिता कौ बदन निरेखन ॥ ९१ ॥

नारायन कौँ लखि प्रनाम पुनि सादर कीन्ह्यौ।
मात पिता के बहुरि धाइ चरननि सिर दीन्ह्यौ ॥
अजगुत आनँद औ करुना पुनि प्रेम समाए।
दंपति सके न भाषि कछू दृग आँसु बहाए ॥ ९२ ॥

सत्य, धर्म, भैरव, गौरी, सिव, कौसिक सुरपति।
सब आए तिहिँ ठाम प्रसंसा करत जथामति ॥
दंपति पुत्र समेत सबहिँ सादर सिर नायौ।
तब मुनि बिस्वामित्र दृगनि भरि बारि सुनायौ ॥ ९३ ॥

"धन्य भूप हरिचंद लोक-उत्तर जस लीन्ह्यौ।
कौन सकत करि महाराज जैसो व्रत कीन्ह्यौ॥
केवल चारहु जुग मैं तव जस अमर रहन हित।
हम यह सब छल कियौ छमहु सो अति उदार चित॥ ९४॥

लीजै संसय त्यागि राज सब आहि तिहारौ"।
कह्यौ धर्म तब "हाँ हमकौं साखी निरधारौ"॥
बोलि उठ्यौ पुनि सत्य "हमैं दृढ़ करि धार्‌यौ जो।
पृथ्वी कहा त्रिलोक राज सब है ताही कौ"॥ ९५॥

गद्गद स्वर सौं सम्हारि बहुरि बोले त्रिपुरारी।
"पुत्र! तोहिं दैं कहा लहैं हमहूँ सुख भारी॥
निज करनी हरि कृपा आज तुम सब कछु पायौ।
ब्रह्मलोकहूँ पै अविचल अधिकार जमायौ॥ ९६॥

तदपि देत हम यह असीस 'कुल-कीर्ति तिहारी।
जब लौं सूरज चंद रहैं तिहुँ पुर उँजियारी॥
तव सुत रोहितास्व हूँ होहि धर्म-थिर-थापी।
प्रबल चक्रवर्त्ती चिरजीवी महा प्रतापी'"॥ ९७॥

तब अति उमगि असीस दीन्हि गौरी सैव्या कौं।
"लक्ष्मी करहि निवास तिहारैं सदन सदा कौं॥
पुत्रवधू सौभाग्यवती सुभ होहि तिहारी।
तव कीरति अति विमल सदा गावैं सुर-नारी॥ ९८॥

यह असीस सुनि दंपति कौं दंपति सिर नायौ।
तैसहिं भैरवनाथ वाक मैं वाक मिलायौ॥
"जौ गावहिं कै सुनहिं जु कीरति विमल तिहारी।
सो भैरवी-जाचना सौं नहिं होहिं दुखारी" ॥ ९९ ॥

देव-राज तव लाज सहित नीचे करि नैननि।
कह्यौ भूप सौं हाथ जोरि अतिसय मृदु वैननि॥
"महाराज यह सकल दुष्टता हुती हमारी।
पै तुमकौं तौ सोऊ भई महा उपकारी॥ १०० ॥

स्वर्ग कहै को? तुम अति श्रेष्ठ ब्रह्म-पद पायौ।
अब सब छमहु दोष जो कछु हमसौं वनि आयौ॥
लखहु तिहारे हेत स्वयं संकर वरदानी।
उपाध्यायहै बने वटुक नारद मुनि ज्ञानी॥ १०१ ॥

बन्यौ धर्म आपहिं तुम हित चंडाल अघोरी।
बन्यौ सत्य ताकौ अनुचर यह बात न थोरी॥
बिके न तुम नहिं भए दास यह उर निरधारौ।
हरि-इच्छा सौं इहिं विधि वाढ़्यौ सुजस तिहारौ" ॥ १०२ ॥

बहुरि कह्यौ वैकुंठ-नाथ नृप हाथ हाथ गहि।
"जो कछु इच्छा होहि और सो माँगहु वेगहि" ॥
कह्यौ जोरि कर भूप "आज प्रभु दरस तिहारे।
सकल मनोरथ भए सिद्ध इक संग हमारे॥ १०३ ॥

तद्यपि माँगत यह बर आयसु पाइ तिहारी।
तव प्रसाद बैकुंठ लहै सब प्रजा हमारी" ॥
"एवमस्तु" कहि कह्यो बहुरि हरि बिपति-बिदारन।
"अवधपुरी के कीट पतंगहु लौं तुव कारन ॥ १०४ ॥

पाइ सकत हैं परम धाम कछु संसय नाहीं।
ऐसेहिं पुन्य-प्रताप-पुंज राजत तुम माहीं ॥
पै एतोही दिये तोष मन नाहिँ हमारे।
कहहु औरहू जो कछु मन मैं होहि तिहारे" ॥ १०५ ॥

यह सुनि गद्गद स्वरनि कह्यौ महिपाल जोरि कर।
"करुनासिंधु सुजान महा आनँद-रत्नाकर ॥
अब कोउ इच्छा रही होहि मन माहिँ कहैं तौं।
पै तौ हूँ यह होहि सुफल बर बाक्य भरत कौ ॥ १०६ ॥

सज्जन कौं सुख होइ सदा हरिपद-रति भावै।
छूटैं सब उपधर्म सत्व निज भारत पावै ॥
मत्सरता अरु फूट रहन इहिँ ठाम न पावै।
कुकबिनि कौ बिसराइ सुकबि-बानी जग गावै" ॥ १०७ ॥

बोले हरि मुद मानि "अजहुँ स्वारथ नहिँ चीन्ह्यौ।
साधु साधु हरिचंद जगत हित मैं चित दीन्ह्यौ ॥
इहि जुग तव कुल राज्य माहिँ ह्वैहै ऐसो ही।
तुम्हैं देत सकुचाहिँ न बर माँगौ कैसो ही" ॥१०८॥

यौं कहि पत्नी संग नृपहिँ नर-अंगनि धारे।
रोहितास्व कौ सौंपि राज्य सब धर्म सहारे॥
निज विमान बैठाइ वेगि वैकुंठ पधारे।
भई पुष्पवर्षा सब जय जय सब्द उचारे॥१०९॥
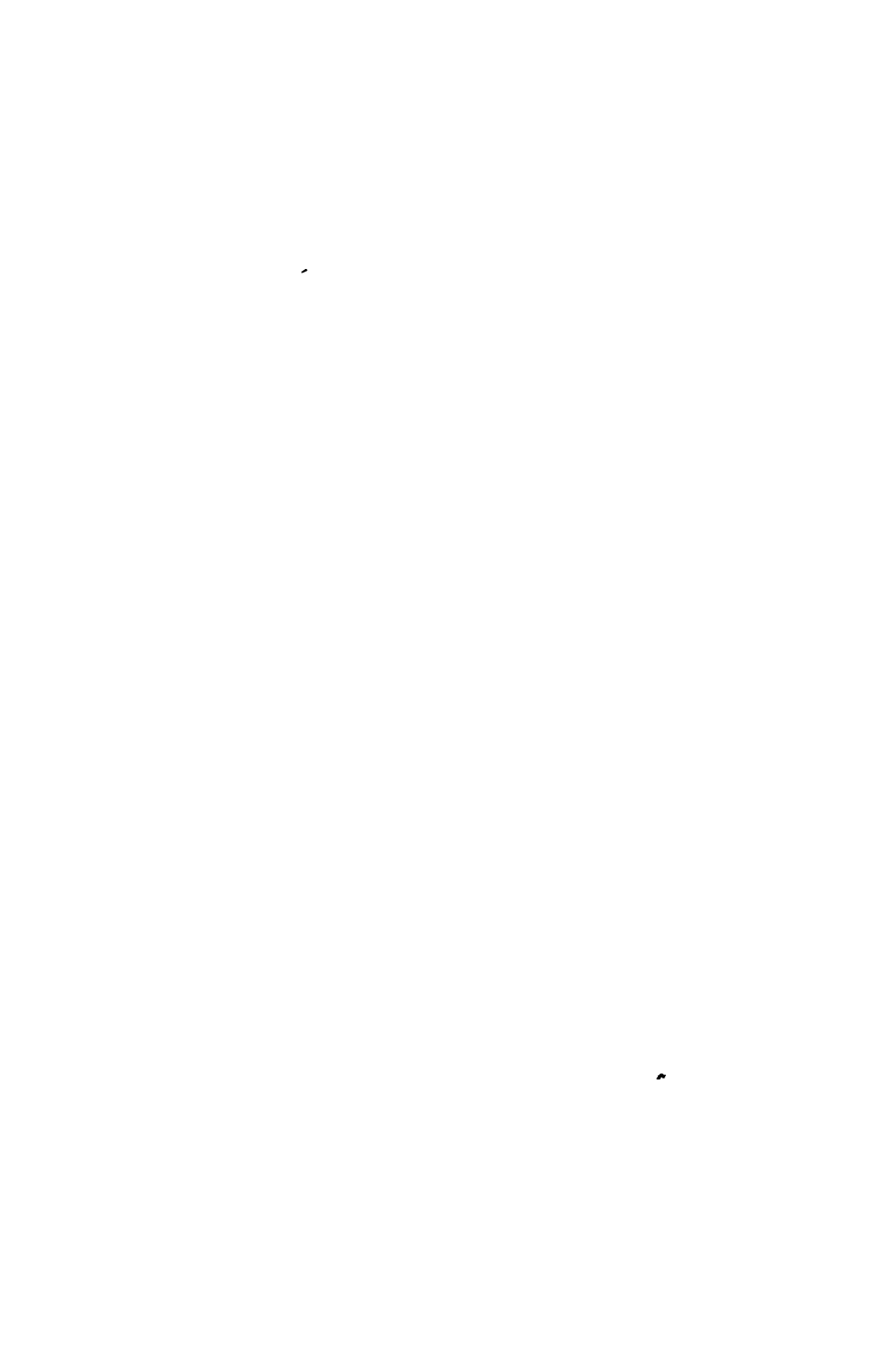
श्रीकैलास बिहाइ आइ जहँ बसत पुरारी।
गिरिजा हूँ सुख लहति चहत आनँद-घन भारी॥
हाट-बाट के ठाट लखि दोउ बालक जोहैं।
हरित भरित लहि भूमि झूमि नंदीगन मोहैं॥
तिहिँ कासी की करि बंदना ताही कौ बरनन करौं।
रज ध्यान सिद्ध अंजन समुझि हरषि हृदय आँखिनि धरौं॥१॥

परम रम्य सुखरासि कासिका पुरी सुहावनि।
सुर-नर-मुनि-गंधर्व-यच्छ-किन्नर-मन-भावनि॥
संभु सदासिव बिस्वनाथ की अति प्रिय नगरी।
बेद पुराननि माँहिं गनित गुनगन मैं अगरी॥१॥

तीन लोक दस-चार भुवन तैं निपट निराली।
निज त्रिसूल पर धारि संभु जो जुग-जुग पाली॥
जाके कंकर मैं प्रभाव संकर को राजै।
जम-किंकर जिहिं जानि भयंकर दूरहि भाजैं॥२॥

जामैं तजत सरीर पीर जग जनम-मरन की।
छूटति बिनहिं प्रयास त्रास जम-पास परन की॥
जामैं धारत पाय हाय करि कूटत छाती।
पातक-पुंज परात गात के जनम सँघाती॥३॥

जाके गुन गंभीर-नीर-निधि के तट ही थल।
लुटत पुंज के पुंज मंजु मुकती मुकताहल॥
पै जाके बासी उदार चित सुकृति सभागे।
लघु बराटिका सम समझत निज आनँद आगे॥४॥

सुचि सुरराज-समाज जाहि सेवन कौं तरसत।
दरस परस लहि सरस आँस आनँद के बरसत॥
ब्रह्मा बिष्नु महेस सेस निज बैभव भूले।
धरि धरि बेस असेस जहाँ बिचरत सुख फूले॥५॥

सुठि सुढार त्रिपुरारि पिनाकाकार बसी है।
उत्तर बरुना औ दक्खिन कौ कोट असी है॥
उत्तर-वाहिनि गंग प्रतिंचा प्राची दिसि वर।
उन्नत मंदिर मंजु सिखर जुत लसत प्रखर सर॥ ६॥

बम-बम की हुंकार धनुष-टंकार पसारै।
जाकौ धमक-प्रहार पापगिरि-हार बिदारै॥
जिहि पिनाक की धाक धरामंडल मैं मंडित।
जासौं होत त्रिताप-दाप त्रिपुरा-सुर खंडित॥ ७॥

घेरी उपबन बाग बाटिकनि सौं सुठि सोहै।
ज्यौं नंदन-बन बीच बस्यौ सुरपुर मन मोहै॥
बापी कूप तड़ाग जहाँ तँह बिमल बिराजैं।
भरे सुधा सम सलिल रसिकजन हिय लौं भ्राजैं॥ ८॥

धवल धाम अभिराम अमित अति उन्नत सोहैं।
निज सोभा सौं बेगि बिस्वकर्मा मन मोहैं॥
ध्वजा पताका तोरन सौं बहु भाँति सजाए।
चित्रित चित्र बिचित्र द्वार पर कलस धराए॥ ९॥

हाट बाट घर घाट घने अति बिसद बिराजैं।
गुदड़ी गोला गंज चारु चौहट छवि छाजैं॥
नीकी निपट नखास सुघर सट्टी सब सोहैं।
कल कटरा वर बार मंजु मंडी मन मोहैं॥ १०॥

चारहु बरन पुनीत नीतजुत बसत सयाने।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सदगुन सरसाने॥
जातिधर्म कुलधर्म मर्म के जाननिहारे।
मर्यादा-अनुसार सकल आचार सुधारे॥ ११ ॥

सब बिधि सबहिँ सुपास सुलभ कासी-बासिनि कौं।
निज-निज रुचि अनुसार लहहिँ सब सुख-रासिनि कौं॥
असन बसन बर बाम धाम अभिराम मनोहर।
ज्ञान गान गुन मान सकल सामग्री बर॥ १२ ॥

लहहिँ साधु सतसंग ज्ञानरत बिमल बिवेकहिँ।
विद्यावाही पढ़हिँ ग्रंथ गुनि गूढ़ अनेकहिँ॥
पावहिँ सद उपदेस धर्म-रत कर्म सुधारैँ।
जोगी जंगम साधि जोग जप तप मन मारैँ॥१३॥

धनरत करि ब्यापार बिबिध धन-भार भरावत।
सिल्पकार अति निपुन कला कौ सार सरावत॥
कामिनि हूँ कौं कुपथ चलत नहिँ खलत अँधेरी।
दीपतिँ दामिनि सरिस बार-कामिनि बहुतेरी॥१४॥

कहुँ सज्जन द्वै चार चारु हरि-जस-रस राँचे।
पुलकित तन मन मुदित सील सदगुन के साँचे॥
भक्तिभाव भरपूर धूर भव-बिभव बिचारे।
भगवत-लीला-ललित-मधुर-मदिरा मतवारे॥१५॥

हरि-हर-गुन-गन गूढ़ उमगि अति गुनत गुनावत।
पावन चरित अमंद दंदहर सुनत सुनावत ॥
पाप-ताप के दाप रह्यौ जो तपि महि हीतल।
प्रेम-बारि दृग ढारि करत ताकौं सुचि सीतल ॥१६॥

कहुँ परम्हंस प्रसंस वंस मन-मानसचारी।
जीवन मुक्ति महान मंजु मुकता अधिकारी॥
उज्ज्वल प्रकृति प्रवीन हीन-भव-पंक पच्छधर।
जगज्जाल-अंजाल-गहन-वन अगम पारकर ॥१७॥

गौरव - गूढ़ाचल - उतंग - वर - शृंग - विहारी।
सुभ गति विमल विवेक एकरस दृढ़-व्रत-धारी॥
दलन मोह-तम-तोम भासकर भावत नीके।
विसद विशुद्धानंद रूप भूषन पुहुमी के ॥१८॥

सिखा सूत्र औ दंड कमंडल सब करि न्यारे।
दिव्य सरीर सतोगुन जनु सोहत तन धारे॥
द्वैत तथा अद्वैत बिसिष्टाद्वैत प्रचारत।
ब्रह्म जीव वर छीर नीर कौ न्याव निवारत ॥१९॥

कहुँ पंडित सु उदार बुद्धि-धर गुन-गन मंडित।
सास्त्र सस्त्र संग्राम करन सुरगुरु-मद खंडित॥
विद्या-वारिधि मथन माहिँ मंदर अति नीके।
कठिन करारे बेद विदित ब्यौहार नदी के ॥२०॥

दलन विपच्छिनि-पच्छ माहिँ अति दच्छ राम से।
नैयायिक अति निपुन बेद-बेदांत धाम से ॥
षट सास्त्रनि कौ गूढ़ ज्ञानधर सिवकुमार से।
बैयाकरन बिदग्ध सुमति बारिधि अपार से ॥२१॥

ज्योतिषसुधा मयूष-अगार सुधाकर बर से।
पानिनि ग्रथित सूत्र बिभूषित दामोदर से ॥
फलादेस मरजाद मृदुल अवधेस सरीखे।
गननागन मैँ गुरु गनेस से अति मति तीखे ॥२२॥

आयुर्वेद प्रभेद परम भेदी गनेस से।
रस-प्रयोग आचार्य चारुमति त्रिंबकेस से ॥
सुरुचि सौम्य साहित्य सलिलधर गंगाधर से।
रोचक कवितारत्न रुचिर गृह रतनाकर से ॥२३॥

गौर गात अति गोल उदर त्रिबली जुत भावै।
परम तेज कौ सदन बदन मन मोद बढ़ावै ॥
गोखुर-परिमित सिखा ग्रंथिजुत सिर छबि छाजै।
सुंदर भाल विसाल भव्य अति तिलक बिराजै ॥२४॥

सुभ्र जज्ञउपवीत मँज्यौ मेले कल काँधे।
कोरदार दुपटा काँखा सोती करि बाँधे ॥
नागपूर की नवल धवल धोती कटि धारे।
बैठे गादी पैँ उसीस के कछुक सहारे ॥२५॥

सिष्य पाँति कौं गूढ़ग्रंथ बहु भाँति पढ़ावत।
अन्वयार्थ सब्दार्थ भरे भावार्थ बतावत॥
धर्म कर्म व्यवहार विषय जो पूछन आवैं।
तिनकौं करहिं प्रबोध भली विधि बोध बढ़ावैं॥२६॥

कहुँ पौरानिक सूत सरिस बक्ता ग्रंथनि के।
यथारीति मर्मज्ञ कथा पावन पंथनि के॥
भारत भाव अमोल महाधन रमानाथ से।
रामचरितमानस निबंध बंधन सुगाथ से॥२७॥

लटपट लपट्यौ सीस फबत फेटा जरतारी।
केसर रोचन तिलक भाव भावत रुचिकारी॥
गोरे गात सुहात चारु चौकस चौबंदी।
लोचन ललित लखाति ललक लीला आनंदी॥२८॥

सोहति बच्छस्थल विसाल फूलनि की माला।
बाम कंध सौं ढरि जानुन सौं दब्यौ दुसाला॥
पोथी-बेठन खोलि चारु चौकी पर धारी।
धूप दीप फल फूल द्रव्य की सजी पँत्यारी॥२९॥

बालमीकि अरु ब्यास बदित बानी वर बाँचत।
भव्य भाव बहु श्रोतनि के उर अंतर खाँचत॥
इक-इक भावनि के बहु विधि पुष्ट करन कौं।
कथा प्रसंग अनेक कहत भ्रमजाल दरन कौं॥३०॥

हरि-कीर्तन की कहूँ मंडली सुघर सुहाई।
हरि-हर-गुन-गन-गान वितान तनति सुखदाई॥
काम क्रोध मद मोह दनुजदल दलन सदाहीँ।
रामचंद्र से बचन-बान साधक जिहि माहीँ॥३१॥

चटकीली अति पाग कुसुम रँग सिर पर बाँधे।
साजे बागा अंग द्रवित दुपटा कल काँधे॥
दिब्य देह बर बदन ललित लोचन अरुनारे।
भाल बिसाल सुलाल तिलक कुंकुम कौ धारे॥३२॥

भगवत-लीला-गान तानपूरा कर लीन्हे।
करत विविध मंजीर मृदंगहु कौ संग दीन्हे॥
करि-करि बर ब्याख्यान बहुरि भावहिँ दरसावैँ।
उदाहरन दृष्टांत आनि बहु रस सरसावैँ॥३३॥

श्रोतनि की भरि भीर रही चारिहु दिसि भारी।
राव रंक युव वृद्ध मूर्ख पंडित नर-नारी॥
पै कोऊ कहत न बैन नैन वक्तादिसि कीन्हैँ।
तन्मय ह्वै सब सुनत मौन मुद्रा मुख दीन्हैँ॥३४॥

अग्निहोत्र की लपट झपटि पातक कहुँ जारै।
स्वाहा ध्वनि की दपट रपटि कुल-कुमति बिदारै॥
सब सुरराज-समाज सदा जासौँ सुख पावै।
प्रजा लहै कल्यान बारि बादर बरसावै॥३५॥

लसत धाम अभिराम दिव्य गोमय सौं लीपे।
कुंकुम चंदन चारु चून ऐपन सौं टीपे॥
तिल तंदुल यव पात्र घने घृत भांड भराए।
असन वसन साहित्य सकल जिन माहिँ धराए॥३६॥

गोमय औ पलास समिधा कहुँ सूखत सोहैं।
कहूँ दर्भ के मूठ श्रुवा लटकत मन मोहैं॥
बँधी बरोठे बीच वत्सजुत सुरभि सुहाई।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सुभ सुख सरसाई॥३७॥

जाके अंगनि बीच वसति देवनि की श्रेनी।
सेवति जाहि उमाहि सुघर घरनी सुखदेनी॥
रोचन रंजित पुच्छ रजत भृंगनि चढ़ि चमकै।
परी पीठि पर लाल भूल भवियाा-जुत भमकै॥३८॥

बैठे होता दिव्य देह वर हवनकुंड पर।
भाल बिसाल त्रिपुंड धरे घन सिखा मुंड पर॥
पहिरे परम पुनीत पाटमय पाढ़र धोती।
ओढ़ि उपरना अमल अच्छ अति काँखासोती॥३९॥

मौंजी औ उपवीत अच्छ कंठा कल धारे।
बेद बिदित ब्यौहार मर्म के जाननिहारे॥
करत यथाविधि तृप्त हव्यवाहन कौं रुचि करि।
साधत सब संसार हेत सुखसार सुमिरि हरि॥४०॥

कहूँ पाँति की पाँति बिप्रगन सहज सुभाए।
कलित कुसासन पै बैठे मन मोद मढ़ाए॥
सुंदर गोरे गात बस्त्र उपबस्त्र सँवारे।
सिखा सूत्र औ भस्म रीतिजुत अंगनि धारे॥४१॥

लघु दीरघ प्लुत औ उदात्त अनुदात्त सकल स्वर।
करन्यास के सहित सुघर बिधि साधि सबिस्तर॥
सहित बिरति बिस्राम सामगायन अनुरागत।
जाकैं प्रबल प्रभाव दुरित दुरि दूरहि भागत॥४२॥

कहूँ साधु संतनि के सोहत सुभग अखारे।
घंटा संख मृदंग बजत जहँ साँझ सकारे॥
होति आरती पूज्य देव गुरु ग्रंथ सुगथ की।
पूजा अर्चा भाँति भाँति सौं निज निज पथ की॥४३॥

चहुँ दिसि द्विघट दलान देखियत दीरघ कोठे।
भरे भव्य भंडार बिसद बर बने बरोठे॥
आँगन बीच नगीच कूप के मंदिर राजत।
जापै चढ्यौ निसान सान सौं फबि छबि छाजत॥४४॥

कहूँ स्वादु कढ़ाह प्रसाद लगि भोग बटत है।
कहूँ मालपूवा रसाल तिहुँ काल कटत है॥
बहुरि बनत मध्याह्न समय बहु रुचिर रसोई।
तब भोजन सब लहत रहत तहँ जब जो कोई॥४५॥

आवत अभ्यागत अनेक मधुकर-व्रतधारी।
पंच भवन भ्रमि पंचभूत पोषन अधिकारी॥
आँचल औ कौपीन कसे कटि कर झोली गहि।
लै मधुकरी प्रथम जात सो नारायन कहि॥४६॥

बैठि साधु द्वै चार जहाँ तहँ सुचि मतिवारे।
वदन तेज की छटा जटा सिर सुंदर धारे॥
कोऊ काषायी बसन पहिरि कोऊ सिर्मिरिष रंगी।
सज्जन सुघर सुजान सीलसागर सतसंगी॥४७॥

कोउ हरि-लीला कहत सुनत पुलकत पुलकावत।
कोऊ न्याय वेदांत बरनि मुलकत मुलकावत॥
कोउ सितार करतार मेलि हरि-गुरु-गुन गावत।
कोउ उमंग सौं संग संग ढोलक ढमकावत॥४८॥

संन्यासिनि के कहुँ महान मंजुल मठ राजैं।
दरदलान कोठे जिनमैं चहुँ दिसि छवि छाजैं॥
छत छतरी बर बंद खंभ गेरू रँग राखे।
अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे॥४९॥

बट पीपर औ मौलसिरी के विटप सुहाए।
सुखद सुसीतल छाँह देत अति अजिर लगाए॥
जिनके नीचे लसत लिए कर दंड कमंडल।
बिसद बिराजत जम-अदंड दंडिनि कौ मंडल॥५०॥

आँचल औ कौपीन धरे कापाय रँगाए।
भाल बिसाल त्रिपुंड मुंड सह सिखा मुँड़ाए॥
सिव हर-हर धुनि धुनत गुनत सिव-गुन-गन नीके।
कीट भृंग के न्याव भए सिव रूप मही के॥५१॥

महामंत्र कोउ भनत कोऊ नारायन टेरत।
कोऊ बेद बेदांत बदित सिद्धांत निवेरत॥
करि अनुराग सभाग कोऊ गुरु-चरन-तरनि पर।
करत दंडवत दौरि दंड निज धारि धरनि पर॥५२॥

धर्म सरूप उदार भूप तहँ छेत्र चलावत।
तामैं इच्छा पूरि भूरि भिच्छा सब पावत॥
साहूकार उदार सेठ श्रद्धा सरसाए।
राजा रावत राव भक्ति के भाव भराए॥५३॥

कबहुँ तहाँ वर बेष भूरि भोजन ठनवावत।
रसना-रंजन रुचिर विविध व्यंजन बनवावत॥
सकल जथा करि विनय यथाविधि न्यौति बुलावत।
पुलकित अंग उमंग संग देखत उठि धावत॥५४॥

पग पखारि कर ढारि वारि सादर बैठारत।
स्वजन-सहित कर व्यजन लिये स्रम स्वेद निवारत॥
आत्म-ज्ञान गंभीर नीर निधि थाहनहारे।
पंच तत्त्व को तत्त्व भली विधि ठाहनहारे॥५५॥

पावन परम समाज जुर्यौ तकि पातक हहरैं।
दुख दारिद दुर्भाग्य दुरित दुर्मति टरि टहरैं॥
सोभा सुभग ललाम लाहु लोचन कौं भावत।
इत उत तैं बहु लोग ललकि दरसन कौं आवत॥५६॥

पातल दोने दिव्य विमल कल कदली दल के।
परत पाँति के पाँति स्वच्छ धोए सुचि जल के॥
भाँति भाँति के जात पुनीत पदारथ परसे।
सुंदर सोंधे स्वादु स्वच्छ सब रस सौं सरसे॥५७॥

बासुमती कौ भात रमुनिया दाल सँवारी।
कढ़ी पकौरी परी कचौरी मोयनवारी॥
दधिभीने वर बरे बरी सह साग निमोने।
पापर अति परपरे चने चरपरे सलोने॥५८॥

नीबू आम अचार अम्ल मीठे रुचिकारी।
चटनी चटपट अरस सरस लटपट तरकारी॥
मोदक मोतीचूर जालजुत मालपुवा तर।
मेवामय श्रीखंड केसरिया खीर मनोहर॥५९॥

हर हर हर हर महादेव धुनि धाम मढ़ावत।
कृपा मंद मुसकानि आनि आनंद बढ़ावत॥
पंच कवल करि अँचै आचमन रुचि उपजावत।
अति आमोद प्रमोद भरे भिच्छा सब पावत॥६०॥

अंचल छाँधे सहित पाय कापाय रँगाए।
निज निज आसन ओर चलत सुठि सुख सरसाए॥
सो सोभा सुभ चहत बनै कछु कहत बनै ना।
मनहु अमंगल जीति चली मंगल की सैना॥६१॥

कहूँ सकल सुखधाम धर्मसाले मनभाए।
सब सुविधा कौं साधि ब्यौंत सौं बिसद बनाए॥
चहुँ दिसि दीसत दिब्य रचे लघु दीरघ कोठे।
जिनके आगे अति बिसाल वर बने बरोठे॥६२॥

एक ओर चौकन की राजति रुचिर पँत्यारी।
गोमय माटी मृदुल मेलि सुचि स्वच्छ सँवारी॥
आँगन माहिँ अनूप कूप सुंदर सुखदाई।
जाकी जगति सुरूप मनहु जलभूप बनाई॥६३॥

विद्यारत वर विप्र ब्रह्मचारी ब्रत वाहे।
बसत तहाँ प्रमुदित प्रसन्न उन्नति उत्साहे॥
बहु विधि कष्ट उठाय ठाय निज इष्टहिँ साधत।
यथालाभ लहि असन बसन बानी आराधत॥६४॥

बड़े भोर हठि उठत मोरि मुख सुख निद्रा सौं।
जद्यपि पाये पूर्व रात्रि हू दुख निद्रा सौं॥
सकल सौच करि तुरत फुरत गंगा दिसि धावत।
तहँ अन्हाय निर्वाहि नित्य निज-निज थल आवत॥६५॥

सघन सिखा सुठि ग्रंथि भाल पर तिलक लगाए।
हाथ सुपावन पाथ पूरि लोटा लटकाए॥
कटि धोती पनरँगी धरे गमछा कल काँधे।
उतरयौ बसन पछारि गारि आसन मैं बाँधे॥६६॥

पुनि पुंजनि के पुंज पधारत पाठ पढ़न कौं।
विद्याबाट विराट विकट त्रिय वेगि बढ़न कौं॥
बहु विधि बाद विबाद विनोद करत मनभाए।
पोथी चोंगा माहिँ राखि निज काँख दबाए॥६७॥

कोऊ गुरु-गृह-दिसि कोऊ पाठसाला कौं धावत।
निज-निज इच्छा सरिस सास्त्र सिच्छा तहँ पावत॥
पढ़ि-पढ़ि परम प्रसन्न पलटि पुनि डेरनि आवत।
आपस मैं बतरात बताई बात लगावत॥६८॥

तब सब यथासँजोग उदर-पोषन विधि बाँधत।
कोउ छेत्रनि दिसि चलत धाम कोउ निज कर राँधत॥
कोउ कहुँ न्यौतो पाइ चलत अति चपल चाह सौं।
आनन अन्न प्रसन्न-बदन कोउ उठि उछाह सौं॥६९॥

इहिँ विधि सुविधा बहु विधान सौं त्रिविध लगावत।
त्रितिय जाम बिस्राम भोजनादिक करि पावत॥
जहँ तहँ जित तित जाइ आइ बतराय बैठि उठि।
करि ठठोलि हँसि बोलि वितावत सेष दिवस सुठि॥७०॥

अथवत भानु प्रमान आनि सब जुरत तहाँ पुनि।
संध्यावंदन करत यथाविधि सुमिरि देव-मुनि॥
करि-करि कछु जलपान जहाँ तहँ दीपक धरि-धरि।
भरि भरि सब जलपात्र पढ़न बैठत कहि हरि-हरि॥७१॥

कोउ न्याय वेदांत गुनत कोउ गणित लगावत।
कोऊ काव्य साहित्य संहिता कोउ सुरझावत॥
कोउ बाँधे धुनि धमकि पढ़े पाठहिँ परिपोषत।
अमरसिंह को कोष सूत्र पानिनि के घोषत॥७२॥

कहुँ धनिकनि के धवल धाम अभिराम सुहाए।
चौखँड पँचखँड सप्तखंड वर विसद बनाए॥
गृह वाटिका समेत सुघर सुंदर सुखदाई।
जिनकी रचना रुचिर निरखि मति रहति लुभाई॥७३॥

बारहदरी बिसाल अपर घर विविध सँवारे।
तिदरे औ चौंदरे पँचदरे परम उज्यारे॥
दुहरे दिव्य दलान रचे पाषान खंभ पर।
आँगन परम प्रसस्त चारु प्राकार सविस्तर॥७४॥

चित्रित चित्र विचित्र चित्रसारी रँगवारी।
उन्नत अनिल अवास अटित आकास अटारी॥
दुहरे तिहरे सिसिर सुखद हम्माम मनोहर।
ग्रीषम हित सीरे उसीर गृह तहखाने वर॥७५॥

देस काल उपयोग जोग सब रुचिर रँगाए।
लता सुमन पसु पच्छि चित्र सौं चारु चिताए॥
सब सुविधा कौं सोधि सजे सब सुघर सुहाए।
बिबिध भाँति बहु मूल्य साज सौं अति मन भाए॥७६॥

झाड़ कमल कल बिमल चारु चित्रित बहुरंगी।
बिसद बैठकी बृच्छ स्वच्छ मंजुल मिरदंगी॥
सुर नर मुनि के चारु चित्र चख आनँद-दाई।
फूलदान चंगेर महक जिन सौं उठि छाई॥७७॥

पँचरँग परदे पटापटी के पाट सँवारे।
चारु चीन की चिकैं चित्र जिन पर अति प्यारे॥
छीर-फेन सम स्वच्छ बिछायत अच्छ बिछाई।
परम नरम गादी मखमल की ललित लगाई॥७८॥

गिलिम गलीचे कल कालीन पीन पारस के।
सुघर सोजनी नव नमदा हरता आरस के॥
छोटे बड़े उसीस धरे दस-बीस सँवारे।
जिनपैं उठकत होत चैन लहि नैन घुमारे॥७९॥

करत सुगंधित सदन अगर बाती कहुँ सोहैं।
कहुँ फूलनि की ललित लरैं लटकत मन मोहैं॥
कहुँ स्यामा कहुँ अगिन कोकिला कहुँ कल गावैं।
कहुँ चकोर कहुँ कीर सारिका सब्द सुनावैं॥८०॥

कमला-कृपा-कटाच्छ लच्छ तहँ यच्छराज से।
सुघर सखा सुचि दासि दास लै सुर-समाज से॥
वैभव भव प्रभुता नरेस प्रभु नारायन से।
संपति सलिल अपार सार मोती बिधुगन से॥८१॥

माधौलाल समान मान-धन-मधु सौं छाके।
कृस्नचन्द् से सौम्य प्रीति-भाजन कमला के॥
साहूकार पहार धरे धन के गिरिधर से।
दाऊ से ब्यवहार-दच्छ सुख संपति करसे॥८२॥

सुघर सोम से भाल बिभूषन वैभव भव के।
रामचंद् से सहज करन कारज गौरव के॥
नित नव उत्सव ठानि मानि आनँद मनभाए।
बिलसत बिबिध बिलास हास सुखरासि सुहाए॥८३॥

षट् रस ब्यंजन तुष्टि पुष्टिदायक स्रमहारी।
लेह पेय अरु चर्व चोष रसना रुचिकारी॥
बासित बर बरास मृगमद केसर गुलाब सौं।
सजे रजतमय बासन मैं सब सुघर फाव सौं॥८४॥

माखन मिश्री मंजु मधुर मेवा मनमाने।
देस देस के फल बिसेस बहु ब्यय करि आने॥
हँसमुख चतुर सुआर परोसत कहि मृदु बानी।
परत दीठि जिहिँ भरत पाकसासन मुख पानी॥८५॥

विविध वसन बहुमोल लोल लोचनहिँ छकित कर।
झीन पीन रंगीन स्वेत सादे फुलवर वर॥
पाट टसर सन सूत ऊन सौं बिरचित नीके।
चारु सचिक्कन पोत मनहुँ गाभा कदली के॥८६॥

साँतिपूर मदरास नागपुर की कल धोती।
द्रविण पाटमय पाढ़ निपुनता की जनु सोती॥
ढाके की मलमल सु डोरिया राधानगरी।
विष्नुपूर मुरसिदाबाद पाटंबर पगरी॥८७॥

आजमगढ़ के चमचमात गलता अरु संगी।
कासी के बहुमूल्य वसन बहु विधि बहुरंगी॥
अतलस चिनियापोत वासकट तास ताफता।
अमरू मसरू धूपछाँह कमखाव वाफता॥८८॥

सुघर जामदानी वर टाँड़े की टिकसारी।
चिकन लखनऊ रचित वेल अरु बूटनवारी॥
चारु चँदेलो की चादर मंदील मनोहर।
जैपुर साँगानीर चीर छापे अति सुंदर॥८९॥

ललित लायचा दरियाई च्यौली पजावी।
तिब्बत के संतूर छाल रूसी संजावी॥
साल दुसाले कलित कृपारामी कस्मीरी।
जिनके नेरैं जात सीत नहिँ सिसिर समीरी॥९०॥

चिलकी चिक्कन चारु चीर चीनी जापानी।
पाट पीठिवारी मखमल कोमल कासानी॥
मोटी गुदमे गद्दब नवल नमदे मुलतानी।
बगदादी कम्मल बनात सुंदर सुलतानी॥९१॥

भूषन दूषन रहित सुघरता सहित सँवारे।
रुचिर रजत सुठि स्वर्ण मंजु मुक्तामनि वारे॥
सादे सुथरे सुखद चारु चित्रित मनभाए।
हीराकट कल कटक काम अभिराम बनाए॥९२॥

ललित लखनऊ जयपुर मीना-मंडित सुंदर।
खुले बंद नगजटित विविध काँटे कुंदन पर॥
जिनकी जगमग ज्योति होति दारिद चखचौंधी।
कबहुँ भूलि तेहिँ ओर तकत जो करि मति औंधी॥९३॥

पद्मराग कुरुविंद नीलगँधी मानिक वर।
स्वच्छ स्निग्ध समगात वृत्त गरुवे किरनाकर॥
ब्रह्म बदखसा औ तिब्बत महिँ के कल भूषन।
हैं जिनसौं अनुरक्त प्रीति परिपालित पूषन॥९४॥

बसरा सिंघल द्वीप अदन मुक्ता मर्यादी।
अमल सजल सित स्निग्ध वृत्त हरुवे आह्लादी॥
जलनिधि नातौ मानि जानि निज किरननि बोरे।
हिमकर कृपा कटाच्छ करत जिन निपट निहोरे॥९५॥

गरुए गोल सुडौल पीन व्रन-हीन असीले।
पारस खाड़ी के प्रवाल अति लाल लसीले॥
मंगल बरन बिसाल बिसद मंगल-दुखहारी।
दरन अमंगल मूल महा-मुद-मंगलकारी॥९६॥

चिक्कन चिनकी चारु चटक रँग रोचक धानी।
छूट सहित गुरु स्निग्ध मंजु मरकत मुलतानी॥
चीनी चारु अमोल अमीचंदी ध्वज-धारन।
बुध-ग्रह-बाधा-बधन बिबिध बिषधर-बिष-बारन॥९७॥

पुष्पराग पृथु स्निग्ध स्वच्छ गुरु समघटवारे।
कर्निकार-कल-कुसुम-कांति-कोमल-किरनारे॥
जानि बिंध्य गुरु-भक्त खानि-संभूत सुहाए।
जिनसौं रहत प्रसन्न सदा सुरगुरु सुख-पाए॥९८॥

कुलिस एक-रस रुचिर ओज सो द्विगुनित दरसत।
तिहूँ जाति चहुँ बरन इंद्रधनु पँचरंग परसत॥
सुभ छकोन सप्तास्त्र-प्रभा-पूरित सुखदायक।
अष्ट फलक सौं फबित नवौ रत्ननि के नायक॥९९॥

बिसद बारितर तरल तड़प तीखे त्यौनारे।
मसृन मंजु स्फुट स्निग्ध स्वच्छ अति कठिन करारे॥
असुर-अस्थि-संभूत असुर-गुरु-कृपाधिकारी।
पन्ना पुहुमि गोलकुंडा के गौरवकारी॥१००॥

इंद्रनील-मनि कलित कृष्न आभा गर्भीले।
इकछाया गुरु स्निग्ध स्वच्छ मृदु पिंडित डीले॥
सुघर साम कसमीर धाम के सुघटित सुंदर।
अमल अमोल अमंद मंद-ग्रह-द्वंद-मंदकर॥१०१॥

गोमेदक गोमेद-रंग गुरु सुभग सजीले।
स्वच्छ स्निग्ध समतल निर्दल चिक्कन चमकीले॥
सिंघल द्वीप प्रदीप मलय महिमा बिस्तारन।
जिनकौ जागत लाहु राहुग्रह-आहु-निवारन॥१०२॥

असित सिताभा सहित स्वच्छ सम गुरु गुनपूरे।
अभ्र सुभ्र सुचि रुचिर रेख रंजित अति रूरे॥
वर बिराट कैकेय खानि के पानिप भीने।
तिब्बत औ नैपाल भोट के खोट-बिहीने॥१०३॥

सुभग सार्ध द्वै सूत सहित अति अहित-बिरोधी।
दारिद-दरन दरेरि धरनि धृत संपति सोधी॥
तरनि-किरन लहि बिबिध बरन वर धरन सुहाए।
कुटिल केतु दुख दूर हेतु बैदूर बराए॥१०४॥

तीखे तरल तुरंग बिबिध बहुरंग असीले।
करत कुलंग कुरंग संग सब अंग सजीले॥
बोटी बोटी फरकि उठत जो परसत चोटी।
बदलि कनोटी कनमनात कर चहत चमोटी॥१०५॥

चपल उठावत धरत पाय पुहुमी जनु तापी।
ग्रीवा पुच्छ उठाइ चलत जिमि नचत कलापी॥
दावत रान उरान करत ज्यौं बान चलाए।
उच्चैःश्रवा समान सुघर सुभ सान चढ़ाए॥१०६॥

बाजिनि के सिरताज तेज तरकी औ ताजी।
जो बातहुँ सौं बदत बेग-विक्रम मैं बाजी॥
सुंदर सुघर सुसील स्वामितर रुचि-अनुगामी।
जिनकी चाहत चाल चकत पच्छिनि के स्वामी॥ १०७॥

बिसद बदखसानी बर बलखी बिदित बुखारी।
गरबी गुनगन माहिँ मंजु अरबी अनुहारी॥
काबुल औ खंधार देस के बहु-मग-गामी।
पुष्ट सरीर सुधीर कोट कूदन मैं नामी॥ १०८॥

कठिन काठियावार चुटीले के परिपोखे।
चंचल चपल चलाँक बाँकपन आँक अनोखे॥
सुंदरता के ग्वैंड ऐंड सो पैंड चलैया।
जिनकी सुघर कनौटिनि बिच रुकि रहत रुपैया॥ १०९॥

कच्छी कलित कमान पीठवारे सुभ लच्छी।
पग मग धरत अलच्छ जात अधरहिँ जनु पच्छी॥
उन्नत ग्रीव नितंब पुच्छ गुच्छित मनभाई।
जिनके आगे सौं सवार नहिँ देत दिखाई॥११०॥

बर बलोतरे औ कुलंग जंगल के जाए।
भक्खर के अति भव्य भाड़वाड़ी मनभाए ॥
बैलर बिसद बिसाल काय बलाद बलसाली।
गुन गँभीर गौरंड देस के सुघर सुचाली ॥१११

गिरिवर लाँघन कदमबाज टाँघन भोटानी।
जिनपै चलत सवार थार छलकत नहिँ पानी ॥
वितर्तैं डेढ़ी करनि करन टेढ़ी के टट्टू।
जो खुटपुट इमि अटत नटत जैसैं नट लट्टू ॥११२

अंग ढंग औ रंग भूरि भौंरी सुभ लच्छन।
सालिहोत्र मत सोधि लिए सब विविध विचच्छन ॥
जिनके सुभग प्रसंग माहिँ नामहु दोषन के।
लेन न उचित विहाय भाय गुनगन पोषन के ॥११३।

चारि सुदीरघ अंग चारि लघु ललित सुहाए।
आयत चारि सुढार चारि सूच्छम मनभाए ॥
ऊरधचारी चारि चारि अधगति गुन भीने।
अरुन बरन बर चारि चारि पुनि माँस विहीने ॥११४।

स्वेत अरुन बर बरन पीत मनहरन सुहाए।
सुभ सारंग सुपिंगि नील मेचक मन-भाए ॥
सबजे सुभग सुढार गहब गुलदार गुनीले।
चीनी सुरखे सुठि सुरंग गर्रे गरबीले ॥११५

ललित-लखौटे वलित कलित कुम्मैत, करारे।
कुल्ले कठिन सरीर समुद अति जीवटवारे॥
अवलख लखिवैं जोग सुभग सुंदर कल्यानी।
पँचकल्यान पुनीत अष्टमंगल मुददानी॥११६॥

गंगा जमुनी रजत साज सैं सजित सुहाए।
जिनकी चमकनि चहत रहत रवि-बाजि चकाए॥
सादे सुथरे सुघर मंजु मीना मनि धारे।
कासी कटक सुरचित खचित हीराकटवारे॥११७॥

पूजी कलगी करनफूल कल हैकल सेली।
भाँभनि भविया जाल सहित दुमची रुचि रेली॥
मृदु मखतूल मुकेस फूँदने फबत सुहाए।
यालनि की सुचि रुचिर चारु चोटिनि लटकाए॥११८॥

औ काहू पर कसी कलित काठी अँगरेजी।
दुहरी दिढ़ लागी लगाम रोकन हित तेजी॥
पुनि काहू पर सजे साज रूमी तुरकानी।
जिनमैं कसे कुबूल जंघमूलनि सुखदानी॥११९॥

खुले थान तैं थमत न थिरकत जमत जकंदत।
कौतुक लागे लोग लखत लोमत अभिनंदत॥
उच्चैश्रवा सिहात सान सजधज अवलोकत।
चमक, दमक अरु तमक ताकि रबिहूँ रथ रोकत॥१२०॥

विविध यान बहु रंग ढंग के सुघर सजीले।
गाधी पखरी पीठि लगे लोने लचकीले॥
बने बंबई कलकत्ता कासी के नीके।
जिन पर चलत न हलत अंग रस-रंगरली के॥१२१॥

टमटम फिटन पालगाड़ी लैंडो सुखदाई।
विसद वैंगनेट वर बहली रथ रुचि अनुयाई॥
पौनवेग अति मौन गौन मोटर मनभाए।
कला कलित गौरंड देस के दिव्य बनाए॥१२२॥

तामजान सुखपाल सुखद सुभ पिनस पालकी।
वक्रतुंड चंडोल चारु बहुमोल नालकी॥
सज्जित सुघर कहार कंदला कलित कसीले।
पदपाटव मैं निपुन सुखद-गति अति फुरतीले॥१२३॥

गजसालनि मैं त्यौं मतंग झूमत मतवारे।
मकने मंजुल एकदंत सुभ दिव्य दँतारे॥
ऐरावत-कुल-कलस दिग्गजनि के अमहारी।
उन्नत-भाल बिसाल-काय बल-विक्रम-धारी॥१२४॥

सजल जलद वर बरन कलिंदहु के मदहारी।
जिनके अंग अनूप रूप जग बिसमयकारी॥
कच्छप कैसे कलित-गंडमंडल मद-मंडित।
जिन पर मधुकर निकर मंजु गुंजत रस पंडित॥१२५॥

दृग मुकलित कलबिंक नैन चल श्रौनि सुबिस्तर।
अरुन बरन वर बिसद ओंठ तालू मुख पुसकर॥
सुंडादंड बिसाल बृत्त सुभ दार मनोहर।
मनु कलिंद तैं गिरति कलिंदी धार बरनि पर॥१२६॥

दृढ़ दीरघ दोउ दंत एक-सम सुघर सजीले।
हेम कलित वर वलय-वलित चिक्कन चमकीले॥
जुगल दूज द्विजराज विभूषित विज्जु छटा सौं।
मानहु निकसे सुचि सावन की स्याम घटा सौं॥१२७॥

पीन प्रलंबित बदन चारु चित्रित मनभाए।
स्निग्ध सँवारे सीस उच्च चल सुभग सुहाए॥
ग्रीवा गोल सुडौल लोल लाँबी लहकारी।
गजपालनि सुखदानि भरनि रद सिर भर भारी॥१२८॥

पीठिदंड कोदंड मांसमंडित दीरघ कल।
सुंदर ढार दोउ पच्छ ढरे मानहु कदली दल॥
पुच्छ सुगुच्छित कोर कछुक पुहुमी सौं ऊँची।
मनु अद्भुत रस रूप लिखन की लेखन कूँची॥१२९॥

रंभ खंभ के दंभ-दलन चहुँ पाय सुहाए।
मनहु लदाऊ स्याम सिला मंडप के पाए॥
अँगुरी बिसद बिसाल सुभग सम संख्य सघन वर।
कमठ पीठि से उच्च गोल नख स्वच्छ सुबिस्तर॥१३०॥

मदजल पुस्कर पीन सुभग सौरभ बगरावत।
मधुकर-निकर अथोर डोर जाकी लगि धावत॥
गति अति सुंदर सुघर जाहि जानत कोविद जन।
जिहिँ अनुहरत सुहात मंद गवनी खनीगन॥१३१॥

तीनि जाति के जे करिबर ग्रंथनि मैँ गाए।
सब सुभ लच्छन सहित स्वच्छ सोहत मनभाए॥
पुनि संकीरन विविध भाँति के मिस्रित लच्छन।
दूषन भूषन सोधि लिए मनबोधि बिचच्छन॥१३२॥

मृगा सु मंजुल गात लिए लघुता हरुवाई।
मदजल मैँ रुचि स्याम दृगनि कछु दीरघताई॥
पंच हस्त परिमान उच्च कर सप्त प्रलंबित।
अष्ट हस्त परिनाह माँहिँ गति अति अविलंबित॥१३३॥

थूल काय गति मंद मंद लघु दृग लंबोदर।
बली बलित उर कच्छि कुच्छि जुत पेचक लरबर॥
सदल त्वचा गुरुग्रीव श्रवत, मद-पीत-बरन बर।
डील डौल मैँ अधिक मृगा सौँ एक हाथ भर॥१३४॥

बिसद बिसाल सुढाल काय अवयव अलगाने।
धनुष पीठि कल कोलजंघ समगात सयाने॥
मधुरुचि दीरघ दंत हस्ति मदवंत भद्र वर।
मंदहु तैँ परिमान माहिँ इक हाथ अधिकतर॥१३५॥

सुंडादंड उद्दंड करत नभ-मंडल थाहत।
मनु गनपति की अकस चंद गहि धारन चाहत॥
कै मेघनि सौं संचि चंचला की चिलकाई।
निज-पट-भूषन भरन चहत झलमलत अधिकाई॥१३६॥

लसत जथाविधि जथा जोग सब साज सजाए।
हेम रजत मुकता प्रवाल मनिमय मन भाए॥
पंखा झूल सचंदसिरी गजगा झुकि झमकैं।
कंठा-हैकल-हार-किरन-दुमची-दुति दमकैं॥१३७॥

अंबर परसत मंजु मेघडंबर काहू कौ।
मनु कलिंद पर कलित कनक मंडप आहू कौ॥
हलकति झलकति झूल झालरनि जुत इमि भावै।
स्यामघटा पर बिज्जुछटा मानौ छवि छावै॥१३८॥

द्रविन-पाट पट-ठाट ठटे गज-रच्छक राजत।
जिनकैं कर बर रजत-बंक-अंकुस छवि छाजत॥
निज करतब मैं दच्छ सकल गुन औगुन जानत।
अंग-फुरन तैं निज मतंग मन रंग पिछानत॥१३९॥

इक इक करि के संग लगे द्वै द्वै फुरतीले।
कुंतलवाही निपुन साहसी सजग सजीले॥
कोउ कहुँ साँटेमार सटकि साँटौ निज परसत।
जाकी धुनि सौं धमकि मत्त सिंधुर-मद बरषत॥१४०॥

इहिँ विधि वाहन विविध सविध सज्जित मनभाए।
चहल-पहल नित रहत पौरि पर मंजु मचाए॥
पुरजन-परिजन-सखा सुहृद सचिवनि की टोली।
आवति जाति लखाति परस्पर करत ठठोली॥१४१॥

मित्र-मंडली चलति कबहुँ आराम-रमन कौं।
सेवन सुचि जल वात तथा श्रम बिसम समन कौं॥
बहु प्रकार व्यापार-जनित दुख-दंद दमन कौं।
.... ॥१४२॥

मंगलाचरण

जासौं जाति विषय-विषाद की बिवाई बेगि
चोप-चिकनाई चित चारु गहिवौ करै।
कहै रतनाकर कवित्त-बर-व्यंजन मैं
जासौं स्वाद सौगुनौ रुचिर रहिवौ करै॥
जासौं जोति जागति अनूप मन-मंदिर मैं
जड़ता - विषम - तम - तोम दहिवौ करै।
जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौं सो सनेह लहिवौ करै॥ १॥

[उद्धव का मथुरा से ब्रज आना]

न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सौं नैंकु नासिका लगायौ है॥
त्यौंहीं कछु घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है॥ २॥

आए भुज-बंध दिए ऊधव-सखा कैं कंध
डग-मग पाय मग धरत धराए हैं।
कहै रतनाकर न बूझैं कछू बोलत औ
खोलत न नैन हूँ अचैन चित छाए हैं॥
पाइ वहे कंज मैं सुगंध राधिका कौ मंजु
ध्याए कदली-वन मतंग लौं मताए हैं।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौं
नीकैं तहाँ नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं॥ ३॥

देखि दूरि ही तैं दौरि पौरि लगि भैंटि ल्याइ
आसन दै साँसनि समेटि सकुचानि तैं।
कहै रतनाकर यौं गुनन गुविंद लागे
जौलौं कछू भूले से भ्रमे से अकुलानि तैं॥

पाए घरी द्वैक में जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है— पृ० १४६

कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूँ तौ कहाँ लौं कहैं
कैसैं कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं।
तौलौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियानि तैं ॥ ४ ॥

बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौं।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यौं कान्ह
ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौं ॥
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं
प्रेम पर्यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं ॥ ५ ॥

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी
मंजु मृगनैनिनि के गुन-गन गावती ॥
जमुना-कछारनि की रंग-रस-रारनि की
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती ॥ ६ ॥

चलत न चारयौ भाँति कोटिनि विचारयौ तऊ
दावि दावि हारयौ पै न टारयौ टसकत है।
परम गहीली वसुदेव-देवकी की मिली
चाह-चिमटी हूँ सौं न खैंचौ खसकत है॥
कढ़त न क्यों हूँ हाय विथके उपाय सबै
धीर-आक-छीर हूँ न धारैं धसकत है।
ऊधौ ब्रज-वास के विलासनि कौ ध्यान धस्यौ
निसि-दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है॥ ७॥

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब
सोई अब आँस ह्वै उवरि गिरिवौ करैं।
कहै रतनाकर जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं
याद किएँ तिनकौं अवाँ सौं घिरिवौ करैं॥
दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ
जाकौं हेरि फेरि हेरिवौई हिरिवौ करैं।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौं जाम
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिवौ करैं॥ ८॥

गोकुल की गैल-गैल गैल-गैल ग्वालनि की
गोरस कैं काज लाज-वस कै वहाइवौ।
कहै रतनाकर रिझाइवौ नवेलिनि कौं
गाइवौ गवाइवौ औ नाचिवौ नचाइवौ॥

कीवौ समहार मनुहार कै विविध विधि
मोहिनी मृदुल मंजु बाँसुरी वजाइवौ।
ऊधौ सुख-संपति-समाज ब्रज-मंडल के
भूलैं हूँ न भूलै भूलैं हमकौं भुलाइवौ ॥ ९ ॥

मोर के पखौवनि कौ मुकुट छवीलौ छोरि
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै रतनाकर त्यौं माखन-सनेही बिनु
षट-रस व्यंजन चवाइ करिहैं कहा ॥
गोपी ग्वाल वालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं
हरि सुर-बृंद की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोविंद गुपाल कौ विहाय हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा ॥१०॥

कहत गुपाल माल मंजु मनि-पुंजनि की
गुंजनि की माल की मिसाल छवि छावै ना।
कहै रतनाकर रतन-मैं किरीट अच्छ
मोर-पच्छ-अच्छ-लच्छ-अंसहू सु-भावै ना ॥
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ
काम-धेनु-गोरस हू गूढ़ गुन पावै ना।
गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
संपति त्रिलोक की बिलोकन मैं आवै ना ॥११॥
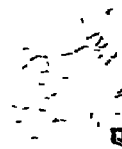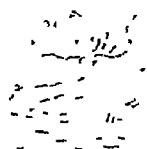
राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम-रतनाकर हियैं यौं उमगत है।
त्यौंहीं बिरहातप प्रचंड सौं उमंडि अति
ऊरध उसास कौ झकोर यौं जगत है॥
केवट बिचार कौ बिचारौ पचि हारि जात
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है।
करत गँभीर धीर-लंगर न काज कछू
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है॥१२॥

सील-सनी सुरुचि सु-बात चलैं पूरब की
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं।
कहै रतनाकर अचानक चमक उठी
उर घनस्याम कैं अधीर अकुलाने तैं॥
आसाछन्न दुरदिन दीस्यौ सुरपुर माहिँ
ब्रज मैं सुदिन बारि-बृंद हरियाने तैं।
नीर कौ प्रबाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यौ
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने तैं॥१३॥

प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत
ऊधव अवाइ रहे ज्ञान-ध्यान सरके।
कहै रतनाकर धरा कौ धीर धूरि भयौ
भूरि-भीति-भारनि फनिंद-फन करके॥

सुर सुर-राज सुद्ध-स्वारथ-सुभाव-सनै
संसय समाए धाए धाम विधि हर के।
आई फिरि ओप ठाम-ठाम ब्रज-गामनि के
बिरहिनि वामनि के वाम अंग फरके ॥१४॥

हेत-खेत माहिँ खोदि खाईँ सुद्ध स्वारथ की
प्रेम-तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीं।
करिनी प्रतीति-काज करनी बनावट की
राखी ताहि हेरि हियैँ हौंसनि सनौ नहीं॥
घात मैँ लगे हैँ ये बिसासी ब्रजवासी सबै
इनके अनोखे छल छंदनि छनौ नहीं।
वारनि कितेक तुम्हैँ वारन कितेक करैँ
वारन-उबारन है वारन बनौ नहीं ॥१५॥

पाँचौ तत्त्व माहिँ एक सत्त्व ही की सत्ता सत्य
याही तत्त्व-ज्ञान कौ महत्त्व स्रुति गायौ है।
तुम तौ विवेक रतनाकर कहौ क्यौँ पुनि
भेद पंचभौतिक के रूप मैँ रचायौ है॥
गोपिनि मैँ, आप मैँ, वियोग औ सँजोग हूँ मैँ
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायौ है।
आपु ही सौँ आपुकौ मिलाप औ बिछोह कहा
मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायौ है ॥१६॥

दिपत दिवाकर कौं दीपक दिखावै कहा
तुमसन ज्ञान कहा जानि कहिबौ करैं।
कहै रतनाकर पै लौकिक-लगाव मानि
मरम अलौकिक की थाह थहिबौ करैं॥
असत असार या पसार मैं हमारी जान
जन भरमाए सदा ऐसैं रहिबौ करैं।
जागत औ पागत अनेक परपंचनि मैं
जैसैं सपने मैं अपने कौं लहिबौ करैं॥१७॥

हा! हा! इन्हैं रोकन कौं टोक न लगावौ तुम
बिसद-बिवेक-ज्ञान-गौरव-दुलारे है।
प्रेम-रतनाकर कहत इमि ऊधव सौं
थहरि करेजौ थामि परम दुखारे है॥
सीतल करत नैंकु हीतल हमारौ परि
बिषम-बियोग-ताप-समन पुचारे है।
गोपिनि के नैन-नीर ध्यान-नलिका है धाइ
दृगनि हमारैं आइ छूटत फुहारे है॥१८॥

प्रेम-नेम निफल निवारि उर अंतर तैं
ब्रह्म-ज्ञान आनँद-निधान भरि लैहैं हम।
कहै रतनाकर सुधाकर-मुखीनि-ध्यान
आँसुनि सौं धोइ जोति जोइ जरि लैहैं हम॥

आवौ एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर-आँखिनि सौं
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ॥१९॥

बात चलैं जिनकी उड़ात धीर धूरि भयौ
ऊधौ मंत्र फूँकिन चले हैं तिन्हैं ज्ञानी है।
कहै रतनाकर गुपाल के हिये मैं उठी
हूक मूक भायनि की अकह कहानी है॥
गहबर कंठ है न कढ़न संदेस पायौ
नैन मग तौलौं आनि बैन अगवानी है।
प्राकृत प्रभाव सौं पलट मनमानी पाइ
पानी आज सकल सँवारयौ काज बानी है॥२०॥

ऊधव कैं चलत गुपाल उर माहिं चल-
आतुरी मची सो परै कहि न कवीनि सौं।
कहै रतनाकर हियौ हूँ चलिवै कौं संग
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलीनि सौं॥
आनि हिचकी है गरैं बीच सकस्यौई परै
स्वेद है रस्यौई परै रोम-झँझरीनि सौं।
आनन-दुवार तैं उसाँस है बढ़्यौई परै
आँसू है कढ़्यौई परै नैन-खिरकीनि सौं॥२१॥

F. 20

[उद्धव की ब्रज यात्रा]

आइ ब्रज-पथ रथ ऊधौ कौं चढ़ाइ कान्ह
अकथ कथानि की व्यथा सौं अकुलात हैं।
कहै रतनाकर बुझाइ कछु रोकैं पाय
पुनि कछु ध्याइ उर धाइ उरझात हैं॥
उससि उसाँसनि सौं बहि बहि आँसनि सौं
भूरि भरे हिय के हुलास न उरात हैं।
सीरे तपे विविध सँदेसनि की बातनि की
घातनि की झोंक मैं लगेई चले जात हैं॥२२॥

लै कै उपदेस-औ-सँदेस-पन ऊधौ चले
सुजस-कमाइबैं उछाह-उदगार मैं।
कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै
आतुर भए यौं रह्यौ मन न सँभार मैं॥
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब
हरैं हरैं पूँजी सब सरकि कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी अरु
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं॥२३॥

हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जान लगे
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबे लगे।
नैननि मैं नीर रोम सकल सरीर छयौ
प्रेम-अद्भुत-सुख सूझि परिबै लगे॥
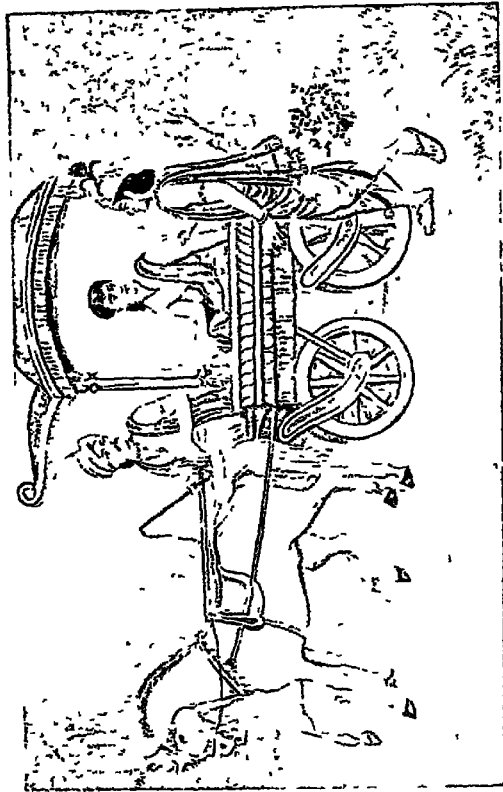
आइ ब्रज-पथ रथ ऊधौ कौ चढ़ाइ कान्ह अकथ कथानि की व्यथा सौं अकुलात हैं'—पृ० १२४

गोकुल के गाँव की गली मैँ पग पारत हीँ
भूमि कैँ प्रभाव भाव और भरिबैं लगे।
ज्ञान-मारतंड के सुखाए मनु मानस कौँ
सरस सुहाए घनस्याम करिबैं लगे ॥२४॥

[उद्धव का व्रज में पहुँचना]

दुख सुख ग्रीषम औ सिसिर न व्यापैं जिन्हैँ
आपै आप एकै हिये ब्रह्म-ज्ञान-साने मैँ।
कहै रतनाकर गँभीर सोई ऊधव कौ
धीर उधरान्यौ आनि व्रज के सिवाने मैँ॥
औरै मुख-रंग भयौ सिथिलित अंग भयौ
बैन दबि दंग भयौ गर गरुवाने मैँ।
पुलकि पसीजि पास चाँपि मुरझाने काँपि
जानैँ कौन बहति बयारि बरसाने मैँ ॥२५॥

धाईं धाम-धाम तैँ अवाई सुनि ऊधव की
बाम-बाम लाख अभिलाषनि सौँ भ्वै रहीँ।
कहै रतनाकर पै बिकल बिलोकि तिन्हैँ
सकल करेजौ थामि आपुनपौ ख्वै रहीँ॥
लेखि निज-भाग-लेख रेख तिन आनन की
जानन की ताहि आतुरी सौँ मन म्वै रहीँ।
आँस रोकि साँस रोकि पूछन-हुलास रोकि
मूरति निरास की सी आस-भरी ज्वै रहीँ ॥२६॥

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गावनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥२७॥

देखि देखि आतुरी विकल ब्रज-बारिनि की
ऊधव की चातुरी सकल बहि जाति हैं।
कहै रतनाकर कुसल कहि पूछि रहे
अपर सनेस की न बातैं कहि जाति हैं।
मौन रसना है जोग जदपि जनायौ सबै
तदपि निरास-वासना न गहि जाति हैं।
साहस कै कछुक उमाहि पूछिबैं कौं ठाहि
चाहि उत गोपिका कराहि रहि जाति हैं॥२८॥

दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से॥

सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरें से भकुवाने से।
हौले से हले से हूल-हूले से हिये मैं हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से ॥२९॥

मोह-तम-रासि नासिबे कौं स-हुलास चले
ब्रह्म कौ प्रकास पारि मति रति-माती पर।
कहै रतनाकर पै सुधि उधिरानी सबै
धूरि परी धीर जोग-जुगति-सँघाती पर॥
चलत विषम ताती बात ब्रज-बारिनि की
विपति महान परी ज्ञान-वरी बाती पर।
लच्छ हुरे सकल विलोकत अलच्छ रहे
एक हाथ पाती एक हाथ दिए छाती पर॥३०॥

[उद्धव के ब्रजवासियों से बचन]

चाहत जौ स्ववस सँजोग स्याम-सुंदर कौ
जोग के प्रयोग मैं हियौ तौ बिलस्यौ रहै।
कहै रतनाकर सु-अंतर-मुखी है ध्यान
मंजु हिय-कंज-जगी जोति मैं धस्यौ रहै॥
ऐसैं करौ लीन आतमा कौं परमातमा मैं
जामैं जड़-चेतन-विलास विकस्यौ रहै।
मोह-बस जोहत बिछोह जिय जाकौ छोहि
सो तौ सब-अंतर निरंतर बस्यौ रहै॥३१॥

पंच तत्त्व मैं जो सच्चिदानँद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै रतनाकर विभूति पंच-भूत हू की
एक ही सी सकल प्रभूतनि मैं पोई है॥
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है॥२२॥

सोई कान्ह सोई तुम सोइ सबही हैं लखौ
घट-घट-अंतर अनंत स्यामघन कौं।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौं भरौ
बारिधि औ बूंद के विचारि विछुरन कौं॥
अविचल चाहत मिलाप तौ विलाप त्यागि
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं।
जीव आतमा कौं परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौं न दीन करौ मन कौं॥२३॥

सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी हैं।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥

कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं ॥३४॥

[उद्धव के प्रति गोपियों का वचन]

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत ना सुदर्सन हूँ यौं सुधि सिराई हैं॥
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यौं अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं।
ह्याँ तौ विषमज्वर-वियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं ॥३५॥

ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिलैं तौ यह
प्यारे परदेस तैं कबैं धौं पग पारिहैं।
कहै रतनाकर तिहारी परि बातनि मैं
मीड़ि हम कब लौं करेजौ मन मारिहैं॥
लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरैहैं हाय
धरि-धरि ध्यान धीर कब लगि धारिहैं।
बैननि उचारिहैं उराहनौ कबै धौं सबै
स्याम कौ सलोनौ रूप नैननि निहारिहैं ॥३६॥

षटरस-व्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं
ऊधौ नवनीत हूँ स-प्रीति कहूँ पावैं हैं।
कहै रतनाकर बिरद तौ बखानैं सबै
साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावैं हैं॥
रतन-सिँहासन बिराजि पाकसासन लौं
जग-चहुँ-पासनि तौ सासन चलावैं हैं।
जाइ जमुना-तट पै कोऊ वट-छाहिँ माहिँ
पाँसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावैं हैं॥२७॥

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजवारी की।
कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की॥
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमैं भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की
बूँदता बिलैहै बूँद बिवस बिचारी की॥२८॥

चोप करि चंदन चढ़ायौ जिन अंगनि पै
तिनपै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ।
रस-रतनाकर स-नेह निरवार्‌यौ जाहि
ता कच कौं हाय जटा-जूट बरिबौ कहौ॥

चंद अरबिंद लौं सराह्यौ ब्रजचंद जाहि
ता मुख कौं काकचंचवत करिबौ कहौ।
छेदि-छेदि छाती छलनी कै बैन-बाननि सौं
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ ॥३९॥

चिंता-मनि मंजुल पँवारि धूरि-धारनि मैं
काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ।
कहै रतनाकर बियोग-आगि सारन कौं
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहौ॥
रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ।
एते बड़े बिस्व माहिं हेरैं हूँ न पैयै जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ ॥४०॥

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपै
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौं, तोपै अधिक बढ़ावौ ना॥
टूक-टूक ह्वैहै मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजारयौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ॥४१॥

चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ
कहौ ना कहानी जौ बिबिध कहि आए हौ।
कहै रतनाकर न बूझिहैँ बुझाएँ हम
करत उपाय बृथा भारी भरमाए हौ॥
सरल स्वभाव मृदु जानि परौ ऊपर तैँ
पर उर घाय करि लौंन सौ लगाए हौ।
रावरी सुधाई मैँ भरी है कुटलाई कूटि
बात की मिठाई मैँ लुनाई लाइ ल्याए हौ॥४२॥

नेम ब्रत संजम के पींजरैँ परे को जब
लाज-कुल-कानि-प्रतिबंधहिँ निवारि चुकीँ।
कौन गुन गौरव कौ लंगर लगावै जब
सुधि बुधि ही कौ भार टेक करि टारि चुकीँ॥
जोग-रतनाकर मैँ साँस घूँटि बूड़ै कौन
ऊधौ हम सूधौ यह बानक विचारि चुकीँ।
मुक्ति-मुकता कौ मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीँ॥४३॥

ल्याए लादि बादि हीँ लगावन हमारे गरैँ
हम सब जानी कहौ सुजस-कहानी ना।
कहै रतनाकर गुनाकर गुबिंद हू कैँ
गुननि अनंत बेधि सिमिटि समानी ना॥

हाय बिन मोल हूँ बिकी न मग हूँ मैं कहूँ
तापै बटपार-टोल लोल हू लुभानी ना।
केती मिली मुकति वधू वर के कूबर मैं
ऊबर भई जो मधुपुर मैं समानी ना ॥४४॥

हम परतच्छ मैं प्रमान अनुमानैं नाहिं
तुम भ्रम-भौंर मैं भलैं हीं बहिबौ करौ।
कहै रतनाकर गुविंद-ध्यान धारैं हम
तुम मनमानौ ससा-सिंग गहिबौ करौ॥
देखति सो मानति हैं सूधौ न्याव जानति हैं
ऊधौ! तुम देखि हूँ अदेख रहिबौ करौ।
लखि ब्रज-भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म
हम न कहैंगी तुम लाख कहिबौ करौ ॥४५॥

रंग-रूप-रहित लखात सबही हैं हमैं
वैसौ एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा।
कहै रतनाकर जरी हैं बिरहानल मैं
और अब जोति कौं जगाइ जरिहैं कहा॥
राखौ धरि ऊधौ उतै अलख अरूप ब्रह्म
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं कहा।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरीं अब
और अंग-रहित अराधि करिहैं कहा ॥४६॥

कर-बिनु कैसैं गाय दुहिहै हमारी वह
पद-बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै।
कहै रतनाकर बदन-बिनु कैसैं चाखि
माखन बजाइ बेनु गोधन गवाइहै॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवनि बिनाहीं हाय
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै॥४७॥

वे तौ बस बसन रँगावैं मन रंगत ये
भसम रमावैं वे ये आपुहीं भसम हैं।
साँस साँस माहिं बहु बासर बितावत वे
इनकैं प्रतेक साँस जात ज्यौं जनम हैं॥
ह्वै कै जग-भुक्ति सौं बिरक्त मुक्ति चाहत वे
जानत ये भुक्ति मुक्ति दोऊ विष-सम हैं।
करिकै बिचार ऊधौ सूधौ मन माहिं लखौ
जोगी सौं वियोग-भोग-भोगी कहा कम हैं॥४८॥

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहाँ
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निबेरी हैं।
कहै रतनाकर न जानैं क्यौं इतै धौं आइ
साँसनि की सासना की बासना बखेरी हैं॥

हम जमराज की धरावतिं जमा न कछू
सुर-पति-संपति की चाहतिं न ढेरी हैं।
चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहे देतिं एक कान्ह की कमेरी हैं ॥४९॥

सरग न चाहैं अपवरग न चाहैं सुनौ
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहिं
तन मन साँसनि की साँसति प्रमानैं हम ॥
एक ब्रजचंद कृपा-मंद-मुसकानि हीं मैं
लोक परलोक कौ अनंद जिय जानैं हम।
जाके या बियोग-दुख हू मैं सुख ऐसौ कछू
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू मैं दुख मानैं हम ॥५०॥

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हैं
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुँह आवत सो बिबस बयात हौ ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं हीं तुम आपहीं सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग-जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ ॥५१॥

ऊधौ यह ज्ञान कौ बखान सब बाद हमैं
सूधौ बाद छाँड़ि बकबादहिं बढ़ावै कौन।
कहै रतनाकर बिलाइ ब्रह्म-काय माहिं
आपने सौं आपुनपौ आपुनौ नसावै कौन॥
काहू तौ जनम मैं मिलैंगी स्यामसुंदर कौं
याहू आस प्रानायाम-साँस मैं उड़ावै कौन।
परि कै तिहारी ज्योति-ज्वाल की जगाजग मैं
फेरि जग जाइबे की जुगति जरावै कौन॥५२॥

वाही मुख मंजुल की चहतिं मरीचैं सदा
हमकौं तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा।
कहै रतनाकर सुधाकर-उपासिनि कौं
भानु की प्रभानि कौं जुहारि जरिबौ कहा॥
भोगि रहीं बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै
ताके सोग सारन कौं जोग चरिबौ कहा।
जब ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भयौ
बिरह-चिँगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा॥५३॥

ऊधौ जम-जातना की बात ना चलावौ नैंकु
अब दुख सुख कौ बिवेक करिबौ कहा।
प्रेम-रतनाकर-गँभीर-परे मीननि कौं
इहिं भव-गोपद की भीति भरिबौ कहा॥

एकै बार लैहैं मरि मीच की कृपा सौं हम
रोकि-रोकि साँस बिनु मीच मरिबौ कहा।
छिन जिन झेली कान्ह-बिरह-बलाय तिन्हैं
नरक-निकाय की धरक धरिबौ कहा ॥५४॥

जोगिनि की भोगिनि की बिकल बियोगिनि की
जग मैं न जागती जमातैं रहि जाइँगी।
कहै रतनाकर न सुख के रहे जौ दिन
तौ ये दुख-द्वंद की न रातैं रहि जाइँगी ॥
प्रेम-नेम छाँड़ि ज्ञान-छेम जो बतावत सो
भीति ही नहीं तौ कहा छातैं रहि जाइँगी।
घातैं रहि जाइँगी न कान्ह की कृपा तैं इतौ
ऊधौ कहिबे कौं बस बातैं रहि जाइँगी ॥५५॥

कठिन करेजौ जो न करक्यौ बियोग होत
तापर तिहारौ जंत्र मंत्र खँचिहै नहीं।
कहै रतनाकर बरी हैं बिरहानल मैं
ब्रह्म की हमारैं जिय जोति जँचिहै नहीं ॥
ऊधौ ज्ञान-भान की प्रभानि ब्रजचंद बिना
चहकि चकोर चित चोपि नचिहै नहीं।
स्याम-रंग-राँचे साँचे हिय हम ग्वारिनि कैं
जोग की भगौंहीं भेष-रेख रँचिहै नहीं ॥५६॥

नैननि के नीर औ उसीर पुलकावलि सौं
जाहि करि सीरौ सीरी बातहिँ बिलासैँ हम।
कहै रतनाकर तपाई बिरहातप की
आवन न देतिँ जामैँ बिषम उसासैँ हम॥
सोई मन-मंदिर तपावन के काज आज
रावरे कहे तैँ ब्रह्म-जोति लै प्रकासैँ हम।
नंद के कुमार सुकुमार कौँ बसाइ यामैँ
ऊधौ अब हाइ कै बिसास उद्बासैँ हम॥५७॥

जोहैँ अभिराम स्याम चित की चमक ही मैँ
और कहा ब्रह्म की जगाइ जोति जोहैँगी।
कहै रतनाकर तिहारी बात ही सौँ रुकी
साँस की न साँसति कै औरौ अवरोहैँगी॥
आपुही भई हैँ मृगछाला ब्रज-बाला सूखि
तिनपै अपर मृगछाला कहा सोहैँगी।
ऊधौ मुक्ति-माल बृथा मढ़त हमारे गरैँ
कान्ह बिना तासौँ कहौ काकौ मन मोहैँगी॥५८॥

कीजै ज्ञान-भानु कौ प्रकास गिरि-सृंगनि पै
ब्रज मैँ तिहारी कला नैँकु खटिहैँ नहीँ।
कहै रतनाकर न प्रेम-तरु पैहै सूखि
याकी डार-पात तृन-तूल घटिहैँ नहीँ॥

रसना हमारी चारु चातकी बनी है ऊधौ
पी-पी की बिहाइ और रट रटिहैं नहीं।
लौटि-पौटि बात कौ बवंडर बनावत क्यौं
हिय तैं हमारे घन-स्याम हटिहैं नहीं ॥५९॥

नैननि के आगैं नित नाचत गुपाल रहैं
ख्याल रहैं सोई जो अनन्य-रसवारे हैं।
कहै रतनाकर सो भावना भरीयै रहै
जाके चाव भाव रचैं उर मैं अखारे हैं॥
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जौ रहैं
तौ तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं।
यह अभिमान तौ गवैंहैं ना गए हूँ भान
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं ॥६०॥

सुनीं गुनीं समझीं तिहारी चतुराई जिती
कान्ह की पढ़ाई कबिताई कुबरी की हैं।
कहै रतनाकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू मैं
आनैं आन नैंकु ना त्रिदेव की कही की हैं॥
कहहिं प्रतीति प्रीति नीति हूँ त्रिवाचा बाँधि
ऊधौ साँच मन की हिये की अरु जी की हैं।
वै तौ हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही औ
हम उनही की उनही की उनही की हैं॥ ६१॥

नेम ब्रत संजम के आसन अखंड लाइ
साँसनि कौं घूँटिहैं जहाँ लौं गिलि जाइगौ।
कहै रतनाकर धरैंगी मृगछाला अरु
धूरि हूँ दरैंगी जऊ अंग छिलि जाइगौ॥
पाँच-आँचि हूँ की झार झेलिहैं निहारि जाहि
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ।
सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ॥६२॥

साधि लैहैं जोग के जटिल जे बिधान ऊधौ
बाँधि लैहैं लंकनि लपेटि मृगछाला हू।
कहै रतनाकर सु मेल लैहैं छार अंग
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला हू॥
तुम तौ कही औ अनकही कहि लीनी सबै
अब जो कहौ तौ कहैं कछु ब्रज-बाला हू।
ब्रह्म मिलिबै तैं कहा मिलिहै बतावौ हमैं
ताकौ फल जब लौं मिलै ना नंदलाला हू॥६३॥

साधिहैं समाधि औ अराधिहैं सबै जो कहौ
आधि-व्याधि सकल स-साध सहि लैहैं हम।
कहै रतनाकर पै प्रेम-प्रन-पालन कौ
नेम यह निपट सछेम निरबैहैं हम॥

जैहैं प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ
तातैं ब्रह्म रावरे अनूप कौं मिलैहैं हम।
जौपै मिल्यौ तौ तौ धाइ चाय सौं मिलैंगी पर
जौ न मिल्यौ तौ पुनि इहाँ हीं लौटि ऐहैं हम ॥६४॥

कान्ह हूँ सौं आन ही विधान करिवे कौं ब्रह्म
मधुपुरियानि की चपल कँखियाँ चहैं।
कहै रतनाकर हसैं कै कहौ रोवैं अब
गगन-अथाह-थाह लेन मखियाँ चहैं॥
अगुन-सगुन-फंद-वंद निरारन कौं
धारन कौं न्याय की नुकीली नखियाँ चहैं।
मोर-पंखियाँ कौ मौर-वारौ चारु चाहन कौं
ऊधौ अँखियाँ चहैं न मोर-पंखियाँ चहैं ॥६५॥

ढौंग जात्यौ ढरकि परकि उर सोग जात्यौ
जोग जात्यौ सरकि स-कंप कँखियानि तैं।
कहै रतनाकर न लेखते प्रपंच ऐंठि
बैठि धरा लेखते कहूँधौं नखियानि तैं॥
रहते अदेख नाहिं वेष वह देखत हूँ
देखत हमारी जान मोर पँखियानि तैं।
ऊधौ ब्रह्म-ज्ञान कौ बखान करते ना नैंकु
देख लेते कान्ह जो हमारी अँखियानि तैं ॥६६॥

चाव सौं चले हौ जोग-चरचा चलाइवे कौं
चपल चितौनि तैं चुचात चित-चाह है।
कहै रतनाकर पै पार ना बसैहै कछू
हेरत हिरैहै भरयौ जो उर उछाह है॥
अंडे लौं टिटेहरी के जैहै जू विवेक वहि
फेरि लहिबे की ताके तनक न राह है।
यह वह सिंधु नाहिँ सोखि जो अगस्त लियौ
ऊधौ यह गोपिनि के प्रेम कौ प्रवाह है॥६७॥

धरि राखौ ज्ञान गुन गौरव गुमान गोइ
गोपिनि कौं आवत न भावत भड़ंग है।
कहै रतनाकर करत टायँ-टायँ वृथा
सुनत न कोऊ इहाँ यह मुहचंग है॥
और हूँ उपाय केते सहज सुढंग ऊधौ
साँस रोकिवे कौं कहा जोग ही कुढंग है।
कुटिल कटारी है अटारी है उतंग अति
जमुना-तरंग हैं तिहारौ सतसंग है॥६८॥

प्रथम भुराइ चाय-नाय पै चढ़ाइ नीकैं
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं।
प्रेम-रतनाकर की तरल तरंग पारि
पलटि पराने पुनि मन-पतवारी तैं॥

और न प्रकार अब पार लहिवे कौ कछू
अटकि रही है एक आस गुनवारी तैं।
सोऊ तुम आइ बात विषम चलाइ हाय
काटन चहत जोग-कठिन कुठारी तैं ॥६९॥

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति
केवट परान्यौ कूब-तूँबरी अधार लै।
कहै रतनाकर पठायौ तुम्हैं तापै पुनि
लादन कौं जोग कौ अपार अति भार लै॥
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरौ बनैहै कहा
ऐहै कछु काम हूँ न लंगर लगार लै।
विषम चलावौ ज्ञान-तपन-तपी ना बात
पारौ कान्ह तरनी हमारी मँझधार लै॥७०॥

प्रथम छुराइ प्रेम-पाठनि पढ़ाइ उन
तन मन कीन्हें विरहागि के तपेला हैं।
कहै रतनाकर त्यौं आप अब तापै आइ
साँसनि की साँसति के भारत भमेला हैं॥
ऐसे ऐसे सुभ उपदेस के दिवैयनि की
ऊधौ ब्रजदेस मैं अपेल रेल-रेला हैं।
वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरु हैं किधौं चेला हैं॥७१॥

एते दूरि देसनि सौं सखनि-सँदेसनि सौं
लखन चहैं जो दसा दुसह हमारी है।
कहै रतनाकर पै विषम वियोग-विथा
सबद-विहीन भावना की भाववारी है॥
आनैं उर अंतर प्रतीत यह तातैं हम
रीति नीति निपट भुजंगनि की न्यारी है।
आँखिनि तैं एक तौ सुभाव सुनिबै कौ लियौ
काननि तैं एक देखिबै की टेक धारी है॥७२॥

दौनाचल कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है।
कहै रतनाकर न कूबर बधू-बर कौ
जाहि रंच राँचैं पानि परसि गँवायौ है॥
यह गरु प्रेमाचल दृढ़-व्रत-धारिनि कौ
जाकैं भार भाव उनहूँ कौ सकुचायौ है।
जानै कहा जानि कै अजान ह्वै सुजान कान्ह
ताहि तुम्हैं बात सौं उड़ावन पठायौ है॥७३॥

सुधि बुधि जाति उड़ी जिनकी उसाँसनि सौं
तिनकौं पठायौ कहा धीर धरि पाती पर।
कहै रतनाकर त्यौं विरह-बलाय ढाइ
मुहर लगाइ गए सुख-थिर-थाती पर॥

और जो कियौ सो कियौ ऊधौ पै न कोऊ वियौ
ऐसी घात धूनी करै जनम-सँघाती पर।
कूबरी की पीठि तैं उतारि भार भारी तुम्हैं
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर ॥७४॥

सुघर सलोने स्यामसुंदर सुजान कान्ह
करुना-निधान के वसीठ वनि आए हौ।
प्रेम-मनधारी गिरिधारी कौ सनेसौ नाहिँ
होत है अँदेसौ झूठ बोलत बनाए हौ॥
ज्ञान-गुन-गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए हौ ॥७५॥

कान्ह कूबरी के हिय-हुलसे-सरोजनि तैं
अमल अनंद-मकरंद जो ढरारै है
कहै रतनाकर, यौं गोपी उर संचि ताहि
तामैं पुनि आपनौ प्रपंच रंच पारै है॥
आइ निरगुन-गुन गाइ ब्रज मैं जो अब
ताकौ उदगार ब्रह्मज्ञान-रस गारै है।
मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमारैं नेह
देह मैं अछेह विष विषम बगारै है ॥७६॥

सीता असगुन कौं कटाई नाक एक बेरि
सोई करि कूब राधिका पै फेरि फाटी है।
कहै रतनाकर परेखौ नाहिँ याकौ नैंकु
ताकी तौ सदा की यह पाकी परिपाटी है॥
सोच है यहै कै संग ताके रंगभौन माहिँ
कौन धौं अनोखौ ढंग रचत निराटी है।
छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट कोऊ
काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है॥७७॥

आए कंसराइ के पठाए वे प्रतच्छ तुम
लागत अलच्छ कुबजा के पच्छवारे हौ।
कहै रतनाकर वियोग लाइ लाई उन
तुम जोग बात के ववंडर पसारे हौ॥
कोऊ अबलानि पै न ढरिक ढरारे होत
मधुपुरवारे सब एकै ढार ढारे हौ।
लै गए अक्रूर क्रूर तन तैं छुड़ाइ हाय
ऊधौ तुम मन तैं छुड़ावन पधारे हौ॥७८॥

आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै
बीस बिसै ऊधौ बीरबावन कलाँच है।
कहै रतनाकर प्रपंच ना पसारौ गाढ़े
बाढ़े पै रहौगे साढ़े बाइस ही जाँच है॥

प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्यौ
एक है रहैं क्यौं दोऊ हीरा अरु काँच है।
तीन गुन पाँच तत्त्व बहकि बतावत सो
जैहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पाँच है ॥७९॥

कंस के कहे सौं जदुबंस कौ बताइ उन्हैं
तैसैं हीं प्रसंसि कुबजा पै ललचायौ जो।
कहै रतनाकर न मुष्टिक चनूर आदि
मल्लनि कौ ध्यान आनि हिय कसकायौ जो॥
नंद जसुदा की सुखमूरि करि धूरि सबै
गोपी ग्वाल गैयनि पै गाज लै गिरायौ जो।
होते कहूँ क्रूर तौ न जानैं करते धौं कहा
एतौ क्रूर करम अक्रूर है कमायौ जो॥८०॥

चाहत निकारन तिन्हैं जो उर-अंतर तैं
ताकौ जोग नाहिं जोग-मंतर तिहारे मैं।
कहै रतनाकर बिलग करिबै मैं होति
नीति विपरीत महा कहति पुकारे मैं॥
तातैं तिन्हैं ल्याइ लाइ हिय तैं हमारे बेगि
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे मैं।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि पिय प्रान-मूरि
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं॥८१॥

ह्याँ तौ ब्रजजीवन सौं जीवन हमारौ हाय
जानैं कौन जीव लै उहाँ के जन जनमैं।
कहै रतनाकर बतावत कछू कौ कछू
ल्यावत न नैंकु हूँ विवेक निज मन मैं॥
अच्छिनि उघारि ऊधौ करहु प्रतच्छ लच्छ
इत पसु-पच्छिनि हूँ लाग है लगन मैं।
काहू की न जीहा करै ब्रह्म की समीहा सुनौ
पीहा-पीहा रटत पपीहा मधुबन मैं॥८२॥

बाढ्यौ ब्रज पै जो ऋन मधुपुर-बासिनि कौ
तासौं ना उपाय काहूँ भाय उमहन कौं।
कहै रतनाकर बिचारत हुतीं हीं हम
कोऊ सुभ जुक्ति तासौं मुक्त ह्वै रहन कौं॥
कीन्यौ उपकार दौरि दोउनि अपार ऊधौ
सोई भूरि भार सौं उबारता लहन कौं।
लै गयौ अक्रूर-क्रूर तब सुख-मूर कान्ह
आए तुम आज प्रान-ब्याज उगहन कौं॥८३॥

पुरतीं न जो पै मोर-चंद्रिका किरीट-काज
जुरतीं कहा न काँच किरचैं कुभाय की।
कहै रतनाकर न भावते हमारे नैन
तौ न कहा पावते कहूँधौं ठाँय पाय की॥

मान्यौ हम मान कै न मानती मनाएँ बेगि
कीरति-कुमारी सुकुमारी चित-चाय की।
याही सोच माहिँ हम होतिँ दूबरी कै कहा
कूबरी हू होती ना पतोहू नंदराय की ॥८४॥

हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैँ
उमगि तपन तैँ तपाक करि धावै ना।
कहै रतनाकर त्रिलोक-ओक-मंडल मैँ
बेगि ब्रह्मद्रव उपद्रव मचावै ना॥
हर कौँ समेत हर-गिरि के गुमान गारि
पल मैँ पतालपुर पैठन पठावै ना।
फैलै बरसाने मैँ न रावरी कहानी यह
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना ॥८५॥

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी।
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौँ बतावत जो
कछु इहिँ नीति की प्रतीति गहि जाइगी॥
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्यौ बलि
तौ तौ भाँति काहूँ यह बात रहि जाइगी।
नातरु हमारो भारी बिरह-बलाय-संग
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ॥८६॥

आवत दिवारी बिलखाइ ब्रज-बारी कहैं
अबकैं हमारैं गाँव गोधन पुजैहै को।
कहै रतनाकर बिबिध पकवान चाहि
चाह सौं सराहि चख चंचल चलैहै को॥
निपट निहोरि जोरि हाथ निज साथ ऊधौ
दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को।
कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह
इंद्र-कोप-लोपक गुवर्धन उठैहै को ॥८७॥

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग
लखियत गोपिनि के अंग पियराने मैं।
बौरे बृंद लसत रसाल-बर बारिनि के
पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं॥
होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ
बैहरि बतास लै उसास अधिकाने मैं।
काम-बिधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा
ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने मैं ॥८८॥

ठाम ठाम जीवन-बिहीन दीन दीसैं सबै
चलति चवाई-बात तापत घनी रहै।
कहै रतनाकर न चैन दिन-रैन परै
सूखी पत-छीन भई तरुनि अनी रहै॥

जारयौ अंग अब तौ विधाता है इहाँ कौ भयौ
तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै।
बगर-बगर बृषभान के नगर नित
भीषम-प्रभाव ऋतु ग्रीषम बनी रहै ॥८९॥

रहति सदाई हरियाई हिय-घायनि मैं
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति हैं
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है॥
लागी रहै नैननि सौं नीर की झरी औ
उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रज-मंडल मैं
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है॥९०॥

जात घनस्याम के ललात दृग-कंज-पाँति
घेरी दिख-साध-भौंर-भीर की अनी रहै।
कहै रतनाकर विरह-बिधु बाम भयौ
चंद्रहास ताने घात घालत घनी रहै॥
सीत-घाम-बरषा-बिचार बिनु आने ब्रज
पंचबान-बाननि की उमड़ ठनी रहै।
काम बिधना सौं लहि फरद दवामी सदा
दरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहै॥९१॥

रीते परे सकल निषंग कुसुमायुध के
दूर दुरे कान्ह पै न तातैं चलै चारौ है।
कहै रतनाकर विहाइ बर मानस कौं
लीन्यौ है हुलास-हंस बास दूरिवारौ है॥
पाला परै आस पै न भावत बतास बारि
जात कुम्हिलात हियौ कमल हमारौ है।
षट ऋतु ह्वैहै कहूँ अनत दिगंतनि मैं
इत तौ हिमंत कौ निरंतर पसारौ है॥९२॥

काँपि-काँपि उठत करेजौ कर चाँपि-चाँपि
उर ब्रजवासिनि कैं ठिठुर ठनी रहै।
कहै रतनाकर न जीवन सुहात रंच
पाला की पटास परी आसनि घनी रहै॥
वारिनि मैं विसद विकास ना प्रकास करै
अलिनि विलास मैं उदासता सनी रहै।
माधव के आवन की आवतिँ न बातैं नैंकु
नित प्रति तातैं ऋतु सिसिर बनी रहै॥९३॥

माने जब नैंकु ना मनाएँ मनमोहन के
तौपै मन-मोहिनि मनाए कहा मानौ तुम।
कहै रतनाकर मलीन मकरी लौं नित
आपुनौहीँ जाल आपने हीँ पर तानौ तुम॥

कबहूँ परे न नैन-नीर हूँ के फेर माहिँ
पैरिबौ सनेह-सिंधु माहिँ कहा ठानौ तुम।
जानत न ब्रह्म. हूँ प्रमानत अलच्छ ताहि
तौपै भला प्रेम कौं प्रतच्छ कहा जानौ तुम ॥९४॥

हाल कहा बूझत बिहाल परीँ बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबे के जोग
सूधौ सौ सँदेस याहि तू न ठहराइयौ ॥
औसर मिलै औ सर-ताज कछु पूछहिँ तौ
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ॥९५॥

नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछू
बात वृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
कहै रतनाकर कहति सब हा हा खाइ
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियौ ॥
आँस भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वैहै हाय
ब्रज-दुख-त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।
नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ ॥९६॥

ऊधौ यहै सूधौ सौ सँदेस कहि दीजौ एक
जानति अनेक ना बिबेक ब्रज-बारी हैं।
कहै रतनाकर असीम रावरी तौ छमा
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं॥
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर
कीजै ना दरस-रस-बंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं
जो कहौ सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं॥९७॥

[उद्धव की ब्रज-बिदाई]

धाईं जित तित तैं बिदाई-हेत ऊधव की
गोपी भरीं आरति सँभारति न साँसुरी।
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए
कोऊ गुंज-अंजली उमाहै प्रेम-आँसुरी॥
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ
कीरति-कुमारी सुरवारो दई बाँसुरी॥९८॥

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ
भाषन की लाख लालसा सौं नहि जात हैं।
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के
कातर है प्रेम सौं सकल महि जात हैं॥

पीत पट नन्द जसुमति नवनीत नयौ कीरति-कुमारी सुरवारी दई बासुरी—पृ० १८४
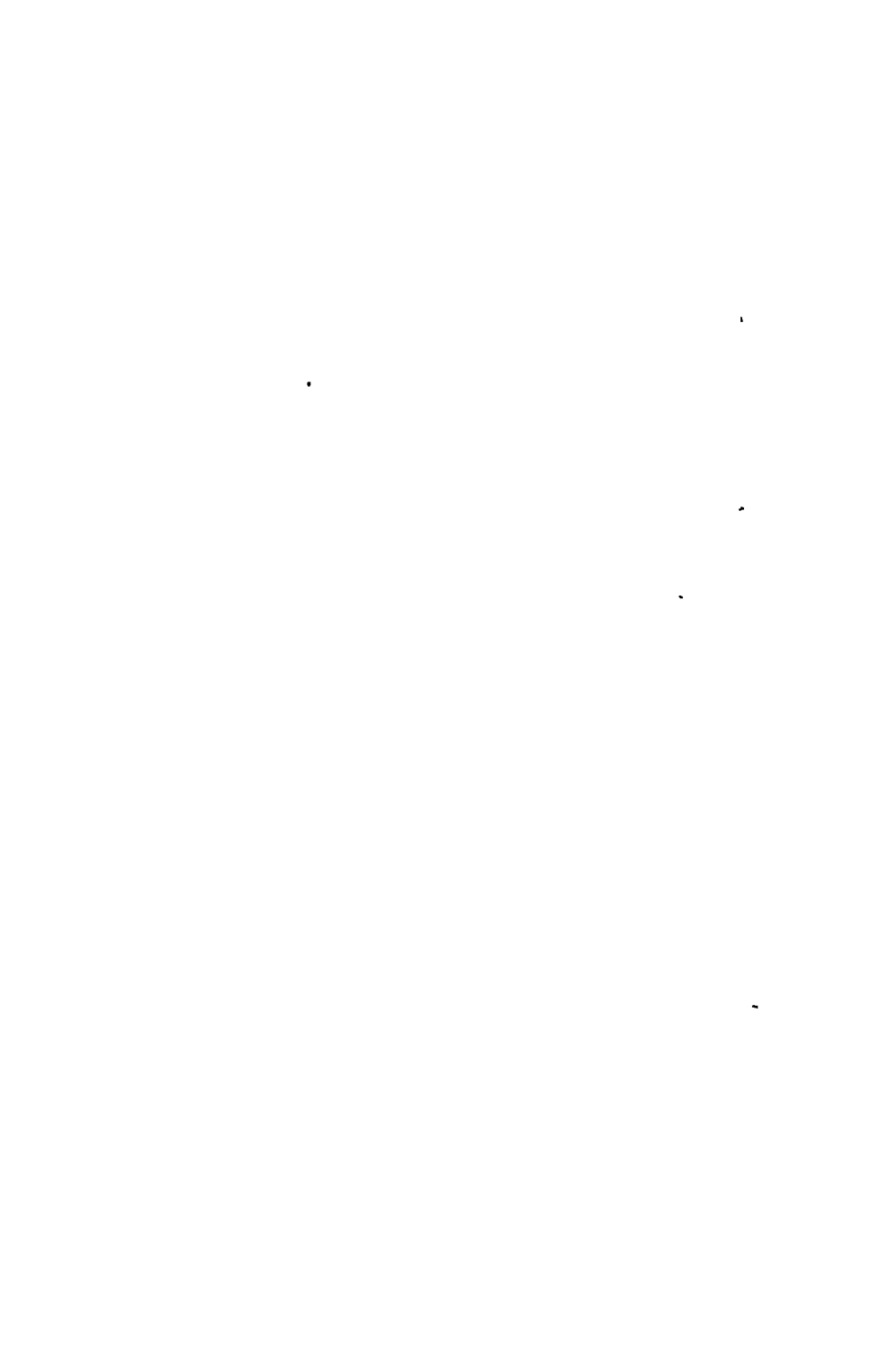
सबद न पावत सो भाव उमगावत जो
ताकि-ताकि आनन ठगे से ठहि जात हैं।
रंचक हमारी सुनैा रंचक हमारी सुनैा
रंचक हमारी सुनैा कहि रहि जात हैं ॥९९॥

दाबि-दाबि छाती पाती-लिखन लगायौ सबै
ब्यौंत लिखिबै कौ पै न कोऊ करि जात है।
कहै रतनाकर फुरति नाहिं बात कछू
हाथ धर्यौ ही-तल थहरि थरि जात है॥
ऊधौ के निहोरैं फेरि नैंकु धीर जोरैं पर
ऐसौ अंग ताप कौ प्रताप भरि जात है।
सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैंकु डंक लागैं
अंक लागैं कागद बररि बरि जात है॥१००॥

कोऊ चले काँपि संग कोऊ उर चाँपि चले
कोऊ चले कछुक अलापि हलबल से।
कहै रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले
कोऊ चले कहत सँदेस अबिरल से॥
आँस चले काहू के सु काहू के उसाँस चले
काहू के हियै पै चंदहास चले हल से।
ऊधव कैं चलत चलाचल चली यौं चल
अचल चले औ अचले हू भए चल से॥१०१॥

दीन्यौ प्रेम - नेम - गुरुवाई - गुन ऊधव कौं
हिय सौं हमेव-हरुवाई बहिराइ कै।
कहै रतनाकर त्यौं कंचन बनाई काय
ज्ञान-अभिमान की तमाई बिनसाइ कै॥
बातनि की धौंक सौं धमाइ चहुँ कोदनि सौं
निज बिरहानल तपाइ पघिलाइ कै।
गोप की बधूटी प्रेमी-बूटी के सहारे मारे
चल-चित-पारे की भसम भुरकाइ कै॥१०२॥

[उद्धव का मथुरा लौटना]

गोपी, ग्वाल, नंद, जसुदा सौं तौ बिदा ह्वै उठे
उठत न पाय पै उठावत डगत हैं।
कहै रतनाकर सँभारि सारथी पै नीठि
दीठिनि बचाइ चल्यौ चोर ज्यौं भगत हैं॥
कुंजनि की कूल की कलिंदी की रुऐंदी दसा
देखि देखि आँस औ उसाँस उमगत हैं।
रथ तैं उतरि पथ पावन जहाँ हीं तहाँ
बिकल बिसूरि धूरि लोटन लगत हैं॥१०३॥

भूले जोग-छेम प्रेम-नेमहिं निहारि ऊधौ
सकुचि समाने उर-अंतर हरास लौं।
कहै रतनाकर प्रभाव सब ऊने भए
सूने भए नैन बैन अरथ-उदास लौं॥

माँगी बिदा माँगत ज्यौं मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लैं।
बिथकित साँस लैं चलत रुकि जात फेरि
आँस लैं गिरत पुनि उठत उसास लैं ॥१०४॥

चल-चित-पारद की दंभ-कंचुली कै दूरि
ब्रज-मग-धूरि प्रेम-मूरि सुभ-सीली लै।
कहै रतनाकर सु जोगनि विधान भावि
अमित अमान ज्ञान-गंधक गुनीली लै॥
जारि घट-अंतर हीँ आह-धूम धारि सबै
गोपी बिरहागिनि निरंतर जगीली लै॥
आए लौटि ऊधव बिभूति भव्य भायनि की
कायनि की रुचिर रसायन रसीली लै॥१०५॥

आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अब
सब सुख-साधन कौ सूधौ सौ जतन लै।
कहै रतनाकर गवाँए गुन गौरव औ
गरब-गढ़ी कौ परिपूरन पतन लै॥
आए नैन नीर पीर-कसक कमाए उर
दीनता अधीनता के भार सौं नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैं पूरि
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सौ रतन लै॥१०६॥

आए दौरि पौरि लौँ अवाई सुनि ऊधव की
और ही बिलोकि दसा दृग भरि लेत हैँ।
कहै रतनाकर बिलोकि बिलखात उन्हैँ
येऊ कर काँपत करेजैँ धरि लेत हैँ॥
आवति कछूक पूछिबे औ कहिबे की मन
परत न साहस पै दोऊ दरि लेत हैँ।
आनन उदास साँस भरि उकसौँहैँ करि
सौँहैँ करि नैननि निचौँहैँ करि लेत हैँ॥१०७॥

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौँ आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौँ
सारत बँहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी वर राधिका-पठाई है॥१०८॥

ब्रज-रज-रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाए लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत॥

एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ एक कर बंसी वर राधिका-पठाई है—पृ० १८८

कीरति-कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत ॥१०९॥

[उद्धव के वचन श्रीभगवान प्रति]

आँसुनि की धार औ उभार कौं उसाँसनि के
तार हिचकीनि के तनक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच
भावनि के विषम प्रपंच सरि लेन देहु ॥
आतुर है और हू न कातर बनावौ नाथ
नैंसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।
कहत अबै हैं कहि आवत जहाँ लौं सबै
नैंकु थिर कढ़त करेजौ करि लेन देहु ॥११०॥

रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते
ज्ञान गुन गौरव के अति उद्गार मैं।
कहै रतनाकर पै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं॥
उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध उसासनि मैं
बहिधौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार मैं।
चूर है गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मैं
छार है गई धौं बिरहानल की झार मैं ॥१११॥

सीत-घाम-भेद खेद-सहित लखाने सबै
भूले भाव भेदता-निषेधन-बिधान के।
कहै रतनाकर न ताप ब्रजबालनि के
काली-मुख-ज्वाल ना दवानल समान के॥
पटकि पराने ज्ञान-गठरी तहाँ हीं हम
थमत बन्यौ ना पास पहुँचि सिवान के।
छाले परे पगनि अधर पर जाले परे
कठिन कसाले परे लाले परे प्रान के॥११२॥

ज्वालामुखी गिरि तैं गिरत द्रवे द्रव्य कैधौं
बारिद पियौ है बारि बिष के सिवाने मैं।
कहै रतनाकर कै काली दाँव लेन-काज
फेन फुफकारे उहिँ गावँ दुख-साने मैं॥
जीवन बियोगिनि कौ मेघ अँचयौ सो किधौं
उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने मैं।
हरि-हरि जासौं बरि-बरि सब वारी उठैं
जानैं कौन बारि बरसत बरसाने मैं॥११३॥

लैकै पन सूछम अमोल जो पठायौ आप
ताकौ मोल तनक तुल्यौ न तहाँ साँठी तैं।
कहै रतनाकर पुकारे ठौर-ठौर पर
पैरि बृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तैं॥

लीजै हेरि आपुहीँ न हेरि हम पायौ फेरि
याही फेर माहिँ भए माठी दधि-आँठी तैं।
ल्याए धूरि पूरि अंग अंगनि तहाँ की जहाँ
ज्ञान गयौ सहित गुमान गिरि गाँठी तैं ॥११४॥

ज्यौंहीं कछु कहन सँदेस लग्यौ त्यौंहीं लख्यौ
प्रेम-पूर उमँगि गरे लौं चढ्यौ आवै है।
कहै 'रतनाकर' न पाँव टिकि पावैं नैंकु
ऐसौ दृग-द्वारनि स-वेग कढ्यौ आवै है॥
मधुपुरि राखन कौ बेगि कछु ब्यौंत गढ़ौ
धाइ चढ़ौ वट कै न जौपै गढ्यौ आवै है।
आयौ भज्यौ भूपति भगीरथ लौं हौं तौ नाथ
साथ लग्यौ सोई पुन्य-पाथ बढ्यौ आवै है ॥११५॥

जैहै ब्यथा विषम विलाइ तुम्हैं देखत हीं
तातैं कही मेरी कहूँ झूँठि ठहरावौ ना।
कहै रतनाकर न याही भय भाषैं भूरि
याही कहैं जावौ बस विलँव लगावौ ना॥
एतौ और करत निवेदन सवेदन हैं
ताकौ कछु विलग उदार उर ल्यावौ ना।
तब हम जानैं तुम धीरज-धुरीन जब
एक बार ऊधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना ॥११६॥

आवते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ
तजि ब्रज-गाँव इतै पावँ धरते नहीं॥११७॥

भाठी कै बियोग जोग-जटिल-लुकाठी लाइ
लाग सौं सुहाग के अदाग पिघलाए हैं।
कहै रतनाकर सुवृत्त प्रेम-साँचे माहिँ
काँचे नेम संजम निवृत्त कै ढराए हैं॥
अब परि बीच खीचि बिरह-मरीचि-बिंब
देत लव लाग की गुबिंद-उर लाए हैं।
गोपी - ताप - तरुन - तरनि - किरनावलि के
ऊधव नितांत कांत-मनि बनि आए हैं॥११८॥

गंगावतरण—पृ० १६६

मंगलाचरण

जय विधि-संचित-सुकृत-सार-सुख-सागर-संगिनि ।
जय हरि-पद-अरविंद-मंजु-मकरंद-तरंगिनि ॥
जय सुर-सेवित-संभु-विपुल-बल-विक्रम-साका ।
जय भूपति-कुल-कलस-भगीरथ-पुन्य-पताका ॥
जय गंग सकल-कलि-मल-हरनि विमल-चरनि बानी करौ ।
निज महि-अवतरन-चरित्र के भव्य भाव उर मैं भरौ ॥१॥

जय वृंदारक-वृंद-वंद्य बुध-गन-आनंदिनि।
जय मुख-चंद-प्रकासि हृदय-तम-रासि-निकंदिनि॥
जय सुमंद मुसक्याइ कृपा-चंदक-संचारिनि।
जय कविंद-उर-अजिर सदा स्वच्छंद विहारिनि॥
तव वीना-पुस्तक-वाद वर रतनाकर उर मैं बसैं।
सुभ सब्द-अर्थ-लालित्य दोउ गंग-औतरन मैं लसैं॥२॥

सिंधुर-बदन-सुरंग गंग-सिर-धरन-दुलारे।
गिरजा-गोद विनोद करत मोदक मुख धारे॥
सुभ सुंडिका उभारि धारि सीतल जल धावत।
षड्मुख-सनमुख सुमुख साधि उभकत झभकावत॥
सो लुकत ओट नंदीस की लखि दंपति-मन मुद भरै।
यह बाल-खेल गनपाल को विघन-जाल सुमिरत हरै॥३॥

प्रथम सर्ग

पावनि-सरजू-तीर अवध-पुरि वसति सुहावनि।
महि-महिमा-आधार त्रिपुर सोभा-सरसावनि॥
मेदिनि-मंडल-मंजु-मुद्रिका-मनि सी राजै।
वन-राजी चहुँ फेर घेर-नग को छवि छाजै॥ १॥

वसुधा-सुभग-सिँगार-हार-लर सरजू सोहै।
मनि-नायक सु-ललाम धाम साकेत विमोहै॥
भुक्ति-मुक्ति की खानि वेद-इतिहास-बखानी।
जाकौ वास महान पुन्य सौँ पावत प्रानी॥ २॥

सप्त पुरिनि मैँ प्रथम रेख जाकी जग लेखत।
सुर-समाज है दंग रंग जाकौ जुरि देखत॥
ताकी जथा-स्वरूप कौन करि सकत बड़ाई।
जो त्रिलोक-अभिराम रामहूँ कैँ मन भाई॥ ३॥

धवल धाम अभिराम लसत तहँ विसद बनाए।
हाट बाट के ठाट सुघर सुंदर मन भाए॥
रुचिर रम्य आराम जिन्हैँ लखि नंदन लाजत।
वापी कूप तड़ाग भरे जल विमल विराजत॥ ४॥

दिनकर-बंस-अनूप-भूप-गन की रजधानी।
न्याय चाय कैं भाय सदा सासित सुख-सानी ॥
चारहुँ बरन पुनीत बसत जहँ आनँद माने।
धनी गुनी सुभ-कर्म धर्म-रत सुमति सयाने ॥ ५ ॥

भयौ भूप तिहिँ नगर सगर इक परम प्रतापी।
दिग-छोरनि लौं उमगि जासु कल कीरति ब्यापी ॥
रिपु-बल-खल-दल-दलन प्रजा-परिजन-दुख-भंजन।
गुनि-जन-जीवन-मूल सुकृति-सज्जन-मन-रंजन ॥ ६ ॥

गो-ब्राह्मन-प्रतिपाल ईस-गुरु-भक्त अदूषित।
बल-बिक्रम-बुधि-रूप-धाम सुभ-गुन-गन-भूषित ॥
नीति-पाल जिहिँ सचिव बाल की खाल खिँचैया।
सेनप स्वामि-प्रसेद-पात-थल रक्त-सिँचैया ॥ ७ ॥

भामिनि-भूषन भईं जुगल ताकी पटरानी।
ज्ञान-सुसंगिनि जथा भक्ति स्रद्धा सुख-सानी ॥
जोबन-रूप-अनूप भूप-सुचि-रुचि-अनुगामिनि।
जिनकी प्रभा निहारि हारि सकुचति सुर-स्वामिनि ॥ ८ ॥

इक केसिनी बिदर्भ-राज बर की कुल-कन्या।
दूजी सुमति सुपर्न-भव्य-भगिनी भुवि-धन्या ॥
दोउ पुनीत पति-प्रीति-पात्र दोउ पति-अनुरागिनि।
दोउ कुल-कमला-गिरा-रूप दोउ अति बड़-भागिनि ॥ ९ ॥
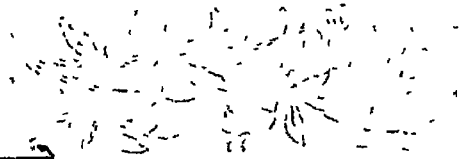
भव-वैभव कौ जदपि भूप-गृह अमित उज्यारौ।
तउ इक सुत कुल-दीप विना सब लगत अँध्यारौ॥
इक दिन मानि गलानि नीर नैननि नृप ढारयौ।
काया-कष्ट उठाइ इष्ट-साधन निरधारयौ॥१०॥

हिम-गिरि कैं प्रस्रवन-पार्स्व मुनि-जन-मन-हारी।
सुर-किन्नर-गंधर्व-सिद्ध-चारन-सुख-कारी॥
दोउ भामिनि लै संग भूप भृगु-आस्रम आए।
करि तप उग्र सहर्ष वर्ष सत सतत विताए॥११॥

ह्वै प्रसन्न ऋषिराज नृपति आदर अति कीन्यौ।
मन-मान्यौ वरदान दिव्य दोउ दारनि दीन्यौ॥
लहै केसिनी पूत एक कुल-संतति-कारी।
साठ सहस सुत सुमति विपुल-बल-विक्रम-धारी॥१२॥

लहि नरवर वर प्रवर पलटि निज नगर पधारे।
पुरजन-स्वजन-समूह भए सब सुहृद सुखारे॥
कछु दिन वीतैं भईं गर्भ-गरुई दुहुँ रानी।
भरि औरै द्युति देह नवल सोभा सरसानी॥१३॥

लहि सुभ समय-निदेस केसिनी सुत इक जायौ।
गुरुवर गुनि गुन तासु नाम असमंज धरायौ॥
सुमति सलोनी जनी एक तूँवी अति अद्भुत।
निकसे जासौं साठ सहस लघु वीज सरिस सुत॥१४॥

यह लखि मघवा बिलखि माखि मख-भंग बिचारयौ ।
स्यामकरन-अपहरण-मंत्र हिय हठि निरधारयौ ॥
पै रच्छक रन-दच्छ देखि अच्छय-बल-साली ।
भयौ मतच्छ न लच्छ अलच्छहिँ हरयौ कुचाली ॥२५॥

पुनि गुनि सगर-प्रताप ताहि निज नगर न राख्यौ ।
कोउ अति दुर्गम दूर देस गोपन अभिलाख्यौ ॥
पर्व-दिवस लै अस्व चल्यौ चहुँधा चख फेरत ।
नर-अभुक्त उपयुक्त थान ताकैँ हित हेरत ॥२६॥

महि-मंडल सब सोधि सपदि पाताल पधारयौ ।
कपिल-धाम अभिराम तहाँ हिय हरपि निहारयौ ॥
गयौ अस्व तहँ छोड़ि जहाँ मुनि करत तपस्या ।
बिरची राज-समाज-काज अति कठिन समस्या ॥२७॥

इत बिस्मित-चित चकित लगे चहुँ दिसि सब चाहन ।
बुधि-प्रमान अनुमान-सिंधु अवगाहन थाहन ॥
बायु-बेग रथ बाजि साजि कोउ दौर लगावत ।
कोउ बन-उपबन-हाट-बाट-बीथिनि मैँ धावत ॥२८॥

तिल-तिल सब मिलि सकल मेदिनी-मंडल सोध्यौ ।
अस्त्र सस्त्र बहु साजि गाजि दस दिसि अवरोध्यौ ॥
भए थकित सब खोजि अस्व की खोज न पाई ।
गए धर्म की धाक जथा नहिँ देति दिखाई ॥२९॥

तव भूपति-ढिग आनि व्यवस्था विषम बखानी।
विस्मय-व्रीड़ा-त्रास-हास-लटपट मृदु बानी॥
पर्‍यौ रंग मैं भंग दंग है सकल विचारत।
मूक भाव सौं एक एक कौ वदन निहारत॥३०॥

उपाध्याय-गन धाइ धवल आनन लटकाए।
त्रिकुटी उँचै ससंक बंक भ्रकुटी भभराए॥
भरि गँभीर स्वर भाव भूप सौं कियौ निवेदन।
गयौ पर्व-दिन अस्व भयौ भारी हित-छेदन॥३१॥

सुनि अति अनहित बैन भए नृप-नैन रिसौंहैं।
फरकि उठे भुजदंड तने 'तेवर तरजौंहैं॥
कह्यौ सारथी टेरि त्रिपथ-गामी रथ नाधौ।
महाचाप सायक अमोघ भाथनि भरि बाँधौ॥३२॥

सेनप होहिं सनद्ध सकल-जग-जीतनहारे।
हम चलि देखैं आप कौन कौं प्रान न प्यारे॥
काकौ सिर धर त्यागि धरा पर परन चहत है।
को जम-गाल कराल भाल निज भरन चहत है॥३३॥

चाह्यौ उठन भुवाल भाषि इमि वलकति बानी।
पै राख्यौ कर पकरि रोकि गुरुवर विज्ञानी॥
कह्यौ अहो नृप कौन ढार यह ढरन चहत हौ।
वृथा जज्ञ-फल-लोप कोप करि करन चहत हौ॥३४॥

जह्न-सरन ज्यौं त्यागि चरन बाहिर कढ़ि जैहै।
ह्वैहै त्यौं मख-भंग रंग रिपु कौ बढ़ि जैहै॥
पुनि याहू तै करि विवेक मन नैंकु विचारौ।
कापै साजत सेन कौन जग सत्रु तिहारौ॥३५॥

महि मंडल मैं भूप कौन ऐसौ भट मानी।
जो तव अच्छ-समच्छ सकत कर पकरि कृपानी॥
पै बिन जानैं कहौ कौन पै अस्त्र चलैहौ।
उथलपथल थल किऐं वृथा कछु लाभ न पैहौ॥३६॥

करि उपयुक्त उपाय प्रथम हय-खोज लगावौ।
जथाजोग उद्योग साधि ताकौं पुनि पावौ॥
अपकीरति अपमान अमंगल न तु जग छैहै।
विमल भानु-कुल आनि राहु-छाया परि जैहै॥३७॥

इमि सुनत वचन गुरुदेव के विधि-विवेक-आदर-भरे।
अति सोक सोच संकोच के खीच-बीच नरपति परे॥३८॥

द्वितीय सर्ग

तब नृप गुरु-पद बंदि चंदसेखर उर धाए।
जज्ञ पुरैबौ ठानि बिज्ञ दैवज्ञ बुलाए॥
पूजि जथाविधि असन बसन भूषन सौं तोषे।
दिए दच्छिना माहिँ लच्छ सुवरन पय-तोषे॥ १॥

बहुरि जोरि जुग पानि सानि मृदु रस बर बानी।
स्यामकरन की हरन-व्यवस्था विषम बखानी॥
कियौ मस्न पुनि गयौ कहाँ वह अस्व हमारौ।
हारे हेरि समस्त व्यस्त महि-मंडल सारौ॥ २॥

कढ़ी परति करवाल कोस सौं चमकि-चमकि कै।
निकसे आवत बान तून सौं तमकि-तमकि कै॥
उठि-उठि कर रहि जात कसकि तिनके वाहन कौं।
पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उत्साहन कौं॥ ३॥

जोग लगन दिन नखत सोधि सब लगे बिचारन।
रेखा अंक खँचाइ दीठि पाटी पर पारन॥
करि-करि पृथक बिचार मेलि सब सार निसारयौ।
गनपति गिरा मनाइ नाइ सिर बचन उचारयौ॥ ४॥

बाजी गयौ पताल यहै ग्रह-चाल बतावति।
हरनहार कौ धाम ठाम ऊँचौ ठहरावति॥
है मिलिबौ स्रम-साध्य दैव पर अंत मिलैहै।
ह्वैहै सुभ परिनाम आदि अति असुभ लखैहै॥५॥

सुनि गनकनि की गूढ़ गिरा सब विस्मय पागे।
असुभ-त्रास-सुभ-आस-भरे निरखन मुख लागे॥
मख राखन कौ रंग पाइ नरपति हरियाने।
मानौ सूखत सालि-खेत पर घन घहराने॥६॥

और भाव सब भूलि भूप मन मैं मुद मान्यौ।
परमारथ कौ लाभ अस्व-पावन मैं जान्यौ॥
साठ सहस सुत धीर बीर बरिबंड बुलाए।
कर्ष-हर्ष-आमर्ष-जनक अस वचन सुनाए॥७॥

जाके पूत सपूत होहिँ तुम से बल-साली।
ताकौ हय हरि लेहि हाय कोउ क्रूर कुचाली॥
देव दनुज थहरात देखि दल तात तिहारौ।
कहा बापुरौ चपल चोर आधे-जियवारौ॥८॥

ह्वैहै अति हित-हानि अस्व जो हाथ न ऐहै।
हंस-बंस की साक धाक माटी मिलि जैहै॥
है सनद्ध कटि-बद्ध सकल मन-सुद्ध सिधारौ।
पैठि पेलि पाताल तुरत हय हेरि निकारौ॥९॥

उथलपथल तल करहु सकल बसुधा धरि नाठौ।
जल-मय थल करि देहु जलधि सब थल भरि भाठौ॥
सुर किन्नर नर नाग अस्व-हर्ता जिहिँ पावै।
तुरत तुरंगम छीनि ताहि जम-लोक पठावै॥१०॥

रैहैँ आहुति देत भए दीच्छित हम तव लौँ।
करिहौ पूरन जज्ञ पाइ बाजी नहिँ जब लौँ॥
तातैँ तन मन लाइ बेगि विक्रम बिस्तारौ।
धरै ईस कर सीस करैं कल्यान तिहारौ॥११॥

पितु-आयसु सुनि सकल सुमति-नंदन मन माखे।
तमकि तोलि भुजदंड चंड विक्रम अभिलाषे॥
चले नाइ पद माथ हाथ मोछनि पर फेरत।
सिंहनाद विकराल लाल लोचन करि हेरत॥१२॥

जोजन जोजन बाँटि खोदि खोजन महि लागे।
सूल-कुदाल-गदाल घात-रव सब जग जागे॥
मनहु खाइ हिय घाइ मेदिनी मर्म-बिदारी—
टेरति उच्च बिषाद-नाद सौं हरि दुख-हारी॥१३॥

प्रबल प्रहारनि पौन चपल बाजी लौँ चमकत।
हलचल होत समुद्र भद्र-अद्री-उर धमकत॥
उड़त फुलिंग असेस सेस मानौ फुफुकारत।
सुरपतिहूँ पछतात प्रलय-आगम निरधारत॥१४॥

गैंड़ा सिंह गयंद रीछ आदिक बनचारी।
राकस-असुर-समाज उरग महि-उदर-बिहारी॥
बिदलित होत सगोत बिकल बिललात बिसूरत।
हाहाकार मचाइ दिसनि करुना सौं पूरत॥ १५॥

तहस-नहस करि सहस साठ जोजन बसुधा-तल।
जंबुदीप चहुँ कोद खोदि सब कियौ रसातल॥
उलट-पलट ह्वै गई सकल मिति थिति जलथल की।
उड़ी अचलता-धाक धूरि ह्वै बिचलि अचल की॥ १६॥

देव दनुज गंधर्व नाग तब सब अकुलाए।
सर्व लोक के पूज्य पितामह पहँ जुरि आए॥
माथ नाय मन पाइ हाथ जुग जोरि सुबानी।
ह्वै उदास भरि साँस कही जग-त्रास-कहानी॥ १७॥

सगर-सुवन सुख-दुवन भुवन खोदे सब डारत।
जलचारी बहु सिद्ध संत मारे अरु मारत॥
कछु काहू की कानि आन उर मैं नहिं राखत।
परम प्रचंड उदंड बदन आवत सो भाषत॥ १८॥

'इहै कियौ मख-भंग इहै हरि लियौ तुरंगम'।
यौं कहि हिंसत सबहिं लहहिं जासौं जहँ संगम॥
साठ सहस महिपाल-पूत महि-मर्म बिदारत।
त्राहि-त्राहि भगवंत भए प्रानी सब आरत॥ १९॥

लखि देवनि की भीति मीति-जुत कह्यौ विधाता।
धरहु धीर महि-पीर बेगि हरिहै जगत्राता॥
सोइ प्रभु करुना-पुंज मंजु महिषी यह जाकी।
कपिल-रूप धरि धरत करत रच्छा नित याकी॥ २० ॥

इहिँ विधि करत कुचाल जबै पाताल सिधैहैँ।
कपिल-कोप-विकराल-ज्वाल सौँ सब जरि जैहैँ॥
भूमि-भेद कौँ कियौ बेद आदिहिँ निर्धारन।
सगर-कुमारनि-काज आज जारन कौ कारन॥ २१ ॥

यह सुनि ढाढ़स पाइ ठाइ कछु देव ढिठाए।
कपिलदेव-गुन-गान करत निज-निज गृह आए॥
इत नृप-सगर-कुमार रसातल चहुँ दिसि धाए।
मिल्यौ पै न हय हारि पलटि पुनि पितु पहँ आए॥ २२ ॥

सादर सब सिर नाइ सकल बृत्तांत सुनायौ।
पुनि पूछ्यौ अब होत कहा आयसु मन-भायौ॥
सुनत विषम संवाद भूप टेढ़ी करि भौँहैँ।
मानि महा हित-हानि वचन बोले अनखौँहैँ॥ २३ ॥

महि नीचैँ हय-जोग ज्योतिसी-लोग बतावत।
तौ पुनि कारन कौन हेरि जो हाथ न आवत॥
फिरि धरि धीर गँभीर खोदि पाताल पधारौ।
हय-हर्ता-जुत हेरि स्वकुल-कीरति विस्तारौ॥ २४ ॥

पितु-प्रेरित पुनि चले विपुल-बल-बिक्रमधारी।
साठ सहस बरिबंड बीर सुर-नर-भय-कारी॥
खोदि पताल उताल खोरि सब खोजन लागे।
मच्यौ महा उत्पात नाग-असुरादिक भागे॥ २५॥

दिग-छोरनि की कोर लगे सब दौरि दबावन।
सगर-प्रचंड-प्रताप-दाप-धौंसा धमकावन॥
देखे दिग्गज तिन बिसाल बल बिक्रमवारे।
सिर पर परम अपार भार धरनी कौ धारे॥ २६॥

करि प्रदच्छिना पूजि सबनि सादर सिर नायौ।
कहि मख-भंग-प्रसंग सकल निज काज सुनायौ॥
पै तिनहूँ सौं मिली नैंकु नहिँ सोध तुरग की।
तब उदास ह्वै लही दसा मनि-हीन उरग की॥ २७॥

सब मिलि सोचन लगे कौन करतब अब कीजै।
जासौं पितु-हित साधि जगत अतुलित जस लीजै॥
खोजे सकल पताल ब्याल-असुरादि बिदारे।
बल बिक्रम स्रम सौर्य भए सब व्यर्थ हमारे॥ २८॥

कोउ आपुन बनि बिज्ञ अज्ञ दैवज्ञनि भाषत।
कोउ सरोष सब दोष दैव माथे पर राखत॥
कहत सबै बिन तुरग उरग-पुर सौं जौ जैहैँ।
पुरजन-परिजन-पितहिँ कौन मुख मलिन दिखैहैँ॥ २९॥

काहू विधि जौ सोध कहूँ बाजी की पावैं।
तौ कालहु कौ गाल फारि तुरतहिँ उगिलावैं॥
पै बिन जानैं हाय कौन पैं हाथ दिखावैं।
काकौ स्रोनित तृषित कृपानहिँ पान करावैं॥ ३० ॥

इमि बिलखत बतरात चकित चितवत चख रीतैं।
भए मंद-मुख-चंद गर्व-सर्वरि के बीतैं॥
पूरब-दक्खिन-छोर-श्रोर गवने उत्तर तैं।
चले अग्नि मैं मनहु प्रेरि भावी-कर बर तैं॥ ३१ ॥

भई छींक पग-संग श्रंग बाएँ सब फरके।
सरके सकल उछाह अकथ भय भरि उर धरके॥
पै निरास-हठ ठानि बढ़े यह मानि अभागे।
अब धौं अलहन कौन अस्व-अ-लहन के आगे॥ ३२ ॥

मिल्यौ जात मग माहिँ ठाम इक परम मनोहर।
निज सोभा मनु स्वर्ग गाड़ि तहँ धरी धरोहर॥
मनि-मय पर्वत-पुंज मंजु कंचन-मय धरनी।
तेज-रासि दिग-छोर उए मानौ सत तरनी॥ ३३ ॥

देखे तिन तप करत तहाँ मुनिवर-वपुधारी।
स्वयं कपिल भगवान भूमि-भय-निखिल-निवारी।
ध्यानावस्थित सांतरूप पदमासन मारे।
रोम-रोम सौं प्रभा-पुंज चहुँ पास पसारे॥ ३४ ॥

इक दिसि देख्यौ चरत चारु निज मख कौ बाजी।
उठी उमगि सब-अंग हर्ष-पुलकनि की राजी॥
दबी दीनता गई ग्लानि खिसियानि सिरानी।
भाबी-बस उर बहुरि अमित अहमति अधिकानी॥ ३५॥

निहचय जानि अजान कपिलदेवहिँ हय-हर्ता।
जज्ञ-बिघन कौ मूल सकल निज स्रम कौ कर्ता॥
धरि धरि सूल कुदाल सैल बिटपनि की साषा।
धाए बुद्धि-बिरुद्ध क्रुद्ध जलपत दुर्भाषा॥ ३६॥

रे दुरमति दुर्भाग्य दुष्ट दुर्वृत्त दुरासय।
कायर क्रूर कुपूत कपट-रत कुटिल-कला-मय॥
हय चुराइ पाताल पैठि बैठ्यौ बक-ध्यानी।
सगर-सुतनि की पै महान महिमा नहिँ जानी॥ ३७॥

कोलाहल सुनि चौंकि चपल पल कपिल उघारे।
निरखे सगर-किसोर घोर-बल-बिक्रमवारे॥
करि कराल दृग लाल तमकि तिनकैँ तन ताक्यौ।
कियौ हुमकि हुंकार छोभि त्रिभुवन भय छाक्यौ॥ ३८॥

सब अंगनि इक-संग दीठि दामिनि लौँ दमकी।
बज्र-घात लौँ अति कराल "हुं" की धुनि धमकी॥
देखत-देखत भए सकल जरि छार छनक मैँ।
दारु-पुत्तलनि माहिँ लगी मनु आगि तनक मैँ॥ ३९॥

इमि सगर-नृपति-नंदन सकल कपिल-कोप परि जरि गए।
मनु साठ सहस नरमेध मख गंग-अवतरन-हित भए॥ ४०॥

तृतीय सर्ग

इत नित आहुति देन रहे नृप जज्ञ जगाए।
अस्व अस्व-हर्तार अस्व-खोजिनि लव लाए।।
भए विविध अपसगुन परयौ उर भभरि अचानक।
मख-मंडप मुद-मूल लग्यौ दृग लगन भयानक ।। १ ।।

वहु दिन वीते जानि आनि कछु हृदय सकाए।
अंसुमान सौं कहे भूप वर वचन सुहाए ।।
तव पितरनि कौं गए तात वहु दिवस सुहाए।
हय-हेरन के फेर माहिँ सब आप हिराए ।। २ ।।

देव दनुज नर नाहिँ तिन्हैँ कोउ बाधनहारौ।
पै संकित चित होत दैव-करतव गुनि न्यारौ ।।
तिनकौ समुझि सुभाव सुद्ध उद्धत अभिमानी।
लखि असगुन उर उठति असुभ-संका अनजानी ।। ३ ।।

तुम निज पुरषनि सरिस विज्ञ बल-विक्रम-धारी।
हंस-वंस के सब-प्रसंस्य-गुन-गन-अधिकारी ।।
खोजि अस्व तिन सहित परम हित करौ हमारौ।
चारिहु जुग मैँ रहै सुजस सुभ अमर तिहारौ ।। ४ ।।

धारौ कठिन कृपान पानि धनु बान सँभारौ।
महि-नीचैं बहु बसत जीव हिंसक ध्रुव धारौ ॥
प्रतिवादक बधि बाँधि बंधु-बृंदनि अभिनंदौ।
लहौ सिद्धि सानंद सकल-दुख-दंद निकंदौ ॥ ५ ॥

धरि आयसु सुभ सीस ईस-चरननि चित दीने।
अस्त्र सस्त्र पाथेय सूर सेनप सँग लीने ॥
अंसुमान सुख मानि चल्यौ हेरन वर बाजी।
गुरु बसिष्ठ-पद पूजि बंदि बिप्रनि की राजी ॥ ६ ॥

गिरि-खोहनि खाड़िनि गँभीर सो स्रम करि सोध्यौ।
कूप-सरित-सर-ताल-खाल-पालनि मन बोध्यौ ॥
पै न अस्व की टोह कहूँ काहू सौं पाई।
न तु पताल-पुर-पंथ दियौ कहुँ द्गनि दिखाई ॥ ७ ॥

इक दिन देख्यौ जात भूमि-नीचे कौ मारग।
सगर-सुतनि कौ खन्यौ अतल-वितलादिक-पारग ॥
तिहिँ लखि ललकि कुमार लग्यौ द्ग-डोरनि थाहन।
कछु विस्मय कछु हर्ष कछुक चिंता सौं चाहन ॥ ८ ॥

भानु-बंस कौ बहुरि बीर बर बिरद बिचारयौ।
कर कृपान उर ईस-आस तिहिँ मग पग धारयौ ॥
जाइ रसातल धाइ दिव्य दिग्गज सब देखे।
देव-दनुज-सेवित निहारि अति सुभ करि लेखे ॥ ९ ॥

करि करि सबहिँ प्रनाम नाम कहि काम जनायौ।
पै तिनहूँ सौँ नैँकु अस्व-संवाद न पायौ॥
लहि असीस चलि चपल सकल पुनि पाय बढ़ाए।
सहत दुसह-दुख-दाह कपिल-आस्रम मैँ आए॥ १० ॥

सुगति गरुड़ तहँ मिल्यौ सुमति-भ्राता सुभ-दानी।
मानहु मंगल सकुन-राज कीन्ही अगवानी॥
जानि पितामह-सरिस कुँवर सादर सिर नायौ।
निज आगम कौ सकल विषम संवाद सुनायौ॥ ११ ॥

बहुरि कह्यौ कर जोरि विनय-रस बोरि बचन मैँ।
तात तुम्हैँ सब ज्ञात तिहारी गति त्रिभुवन मैँ॥
पितरनि कौ बृत्तांत कछुक करुना करि भाषौ।
पुनि कहि कहाँ तुरंग रंग रवि-कुल कौ राखौ॥ १२ ॥

अंसुमान के बैन बैनतेयहिँ अति भाए।
सगर-सुतनि कौँ सुमिरि सोचि लोचन भरि आए॥
करी भाँति बहु पच्छि-राज जुवराज-बड़ाई।
बरनि बीरता विनय बचन-रचना-चतुराई॥ १३ ॥

भाष्यौ बहुरि बताइ छार-रासिनि कौ लेखौ।
निज पितरनि की पूत दसा दारुन यह देखौ॥
भए छनक मैँ छार सकल निज पाप प्रबल सौँ।
अप्रमेय-तप-तेज कपिल के कोप-अनल सौँ॥ १४ ॥

यौँ कहि जथा-प्रसंग कथा संछेप बखानी।
कहत सुनत दुहुँ दृगनि सोक-सरिता उमगानी॥
अंसुमान सुनि समाचार सब अति दुख पाग्यौ।
लखि लखि छार पछार खाइ बिलपन लुठि लाग्यौ॥ १५॥

हाय तात यह भयौ घात बिन बात तिहारौ।
होम करत कर जर्‍यौ पर्‍यौ बिधि वाम हमारौ॥
आए बाजी लेन बेचि बाजी इमि सोवत।
उठत क्यौं न पितु लखत बाट उत इत सिसु रोवत॥ १६॥

सके न देखि उदास कबहुँ तुम बदन हमारौ।
बिलकत आज बिलोकि क्यौं न कर गहि बुलकारौ॥
खेलन खोरि न दियौ हमैं तुम धूर-धुरेटे।
सो अब आपुहिं आइ छार-रासिनि मैं लेटे॥ १७॥

पठयौ हमैं भुवाल तात सुधि लेन तिहारी।
कहैं कहा संवाद जाइ हम मर्म-बिदारी॥
सुनतहिं ताकी कौन दसा दारुन ह्वै जैहै।
सुमति केसिनी की बिषाद-मरजाद नसैहै॥ १८॥

सुनि यह बिषम बिलाप ताप खग-पति अति पायौ।
कहि अनेक इतिहास ताहि बहु बिधि समुझायौ॥
धीर वीर इक्ष्वाकु-बंस कौ बिरद उचार्‍यौ।
छत्रिनि कौ सुभ परम धरम धीरज निरधार्‍यौ॥ १९॥

गुरु वसिष्ठ कौ सिष्य भाषि दै मरक मषायौ।
भावी-भोग न टरन जोग सब भाँति लखायौ॥
पुनि इक दिसि चलि कपिलदेव कौ दरस करायौ।
तिनकैं पास पुनीत जज्ञ-हय चरत दिखायौ॥ २०॥

अंसुमान बिस्राम लह्यौ कछु मुनि-दरसन तैं।
कछुक तोष हय हेरि हियैं आसा ससरन तैं॥
माथ नाइ सकुचाइ मनहिं मन वंदन कीन्यौ।
धन्यवाद इहिं लाभ-काज खग-राजहिं दीन्यौ॥ २१॥

लग्यौ बहुरि सो लखन कोऊ सुचि-रुचिर-जलासय।
जासौं लहि जल-क्रिया जाहिं सब पितर सुरालय॥
करि लच्छित यह लच्छ पच्छि-पति चायनि चाह्यौ।
स्रद्धा सील विवेक बरनि कहि साधु सराह्यौ॥ २२॥

पुनि नैननि भरि नीर पीरजुत वचन उचार्‌यौ।
अप्रमेय-तप-कपिल-साप तव पितरनि जार्‌यौ॥
लहि यह लौकिक आप ताप तिनकौ नहिं जैहै।
सात समुंदर सींचि न बाड़व-ज्वाल जुड़ैहै॥ २३॥

तिनके तारन कौ उपाय दुस्साध्य महा है।
पै तिहिं स्रम-हित हंस-बंस वर बाध्य महा है॥
केवल गंग-तरंग पाप यह टारि सकति है।
कपिल-साप सौं ब्रह्मद्रव उद्धारि सकति है॥ २४॥

चतुर्थ सर्ग

अंसुमान सुनि गुप्त गंग-महिमा मन-मानी।
हाथ जोरि पुनि पच्छि-नाथ सौं विनय बखानी॥
सुनि यह रुचिर रहस्य-बात तव तात अनोखी।
अजगुत भयौ महान जाति चित-वृत्ति न तोखी॥ १॥

स्रद्धा बढ़ी अपार अपर वृत्तांत सुनन की।
तव आनन सौं चुवत चारु सुभ सुमन चुनन की॥
तातैं पूछन चहत कछुक उर ठाइ ढिठाई।
बालक जानि अजान धरौ जनि रोष-रुखाई॥ २॥

कोटिनि बिधि हरि संभु आदि सुर-गन तुम भाषे।
सबकौ नेता कह्यौ एक जाके सब राखे॥
ताकौ कछु सुभ नाम धाम अरु काम बखानौ।
जातैं यह भ्रम-भौंर-पर्यौ मन लहै ठिकानौ॥ ३॥

बहुरि कह्यौ सो अति अनूप जल-रूप भयौ क्यौं।
बिधिहीं कैं गृह पूज्य सकल सुर-भूप भयौ क्यौं॥
महा-मोह-तम-तोम भर्यौ उर-व्योम प्रकासौ।
ज्ञान-भानु स-मलान करत संसय-अहि नासौ॥ ४॥

सुनत कुँवर की विनय दीन छल-हीन सुहाई।
गुनत गंग-कल-कथा-सुनन की आतुरताई॥
हरिजानहु-हिय हुलसि कहन-स्रद्धा सरसानी।
इमि मुख-मग ह्वै अति उदार बानी उमगानी॥ ५॥

यह इतिहास पुनीत महा-मुद-मंगल-कारी।
जद्यपि परम रहस्य देव-मुनिहूँ-मन-हारी॥
तउ अधिकारी जानि तुम्हैं हम कछुक सुनावत।
कहत सुन्यौ निज प्रभुहिँ तत्त्व ताकौ गहि गावत॥ ६॥

अखिल-कोटि-ब्रह्मांड-परम-प्रभुता-ध्रुव-धारी।
कृस्नचंद आनंद-कंद स्वच्छंद-बिहारी॥
नित नव लीला ललित ठानि गोलोक-अजिर मैं।
रमत राधिका-संग रास-रस-रंग रुचिर मैं॥ ७॥

इक दिन लहि कातिक-पुनीत-पूनौ मन-भाई।
श्रीराधा-उत्सव महान अति आनँद-दाई॥
बिधि हरि हर लै मुख्य देव गोलोक सिधाए।
जुगल-दरस की सरस लालसा लोचन लाए॥ ८॥

देखि तहाँ की परम रम्य सुखमा सुघराई।
तजी चकित-चित-चखहुँ सुभाविक चंचलताई॥
लहि अमंद आनंद एकटक देखि रहन कौ।
लूट्यौ सुर-गन लाहु नैन अनिमेष लहन कौ॥ ९॥

वन उपवन आराम ग्राम पुर नगर सुहाए।
लसत ललित अभिराम चहूँ दिसि अति छवि छाए॥
बत्तिस-वन-संयुक्त वीच बृंदावन राजत।
गोवर्द्धन गिरिराज मंजु मनि-मय छवि छाजत॥ १० ॥

दिव्य द्रुमनि की पाँति लसतिँ सब भाँति सुहाई।
ललित लता बहु लहलहातिँ जिनसौं लपटाई॥
स्यामबरनि मन-हरनि नदी कृस्ना अति निर्मल।
कलित-कंज-बहु-रंग वहति तहँ मंजु मधुर-जल॥ ११ ॥

सीतल सुखद समीर धीर परिमल बगरावत।
कूजत विविध विहंग मधुप गूँजत मनभावत॥
वह सुगंध वह रंग ढंग की लखि टटकाई।
लगति चित्र सी नंदनादि वन की चटकाई॥ १२ ॥

जहँ-तहँ गोपी बृंद-बृंद सानंद कलोलतिँ।
जुगल-प्रेम-मद-छाक-छकी डगमग मग डोलतिँ॥
थिर-वर-वैस अनूप-रूप गुन-गर्व-गसीली।
विविध-विलास-हुलास-रास-रँग-रत्त रसीली॥ १३ ॥

जित-तित सुरभि सवत्स चरतिँ विचरतिँ सुखसानी।
विविध-वरनि मनहरनि तरुनि सुभ-गुन-सरसानी॥
हेम-कलित सुठि सृंग पुच्छ-मंडित-मुकताली।
पग नूपुर-झनकार झूल की झलक निराली॥ १४ ॥

मध्य कच्छ मैं अरुन अन्द अच्छयवट राजत।
मनहु लोक-पति-सीस छत्र मानिक-मय छाजत॥
कोटि-चंद-द्युति-दिव्य लसत तहँ चारु चँदोवा।
सज्जित विविध विधान लाइ सब साज सँजोवा॥ १५॥

ताके नीचैं सुघर सहस-दल कमल सुहायौ।
अति विचित्र जिहिँ चित्र न सब्दनि जात खँचायौ॥
सुभ षोड़स-दल कमल अमल राजत तिहिँ ऊपर।
अष्ट दलनि कौ बहुरि बनज सोभित ताहू पर॥ १६॥

तीन्यौ क्रम सौं अधिक अधिक सोभा-सरसाए।
पद्मराग बहु-रंग लाइ रचि रुचिर बनाए॥
कंचन-मय किंजलक-दलक-द्युति झलमल झलकति।
मर्कत-मनि-कृत-कलित-कर्निका-छवि छुटि छलकति॥१७॥

कंजहि सी सुख-पुंज परम अति अजगुतहाई।
सुवरन माहिँ सुगंध मनिनि मैं कोमलताई॥
तिहिँ थल की सुखमा अनूप कासौं कहि आवै।
जो माया निज-प्रभु-विलास-हित हुलसि बनावै॥ १८॥

मध्य कंज पर मंजु रतन-सिंहासन सोहै।
जाकी सुखमा कहत सहस-मनि-धर-मन मोहै॥
ताल-मेल सौं मेलि रतन बहु-रंग लगाए।
जिनकी द्युति सौं कोटि नवग्रह रहत चकाए॥ १९॥

तापर लखे विराजमान वर जुगल-बिहारी।
गौर - स्याम - दोउ - तेज - तत्त्व-मृदु - मूरति-धारी ॥
घनीभूत सुभ सुद्ध सच्चिदानंद अखंडित।
ब्रह्म अनादि सु आदि-सक्ति-जुत गुन-गन-मंडित ॥ २० ॥

इक इक बाहिँ उमाहि किए गलबाहिँ विराजैँ।
इक इक कर बड़भाग बनज बंसी कल भ्राजैँ ॥
मनु तमाल पर सोनजुही की लसै माल वर।
स्याम-तामरस-दाम प्रफुल्लित सोनजुही पर ॥ २१ ॥

नील पीत अभिराम वसन द्युति-धाम धराए।
मनहु एक कौ रंग एक निज अंग अँगाए ॥
निज-निज-रुचि-अनुहार धरे दोउ दिव्य विभूषन।
जो तन-द्युति की दमक पाइ चमकत ज्यौँ पूषन ॥ २२ ॥

उर बिलसत सुभ पारिजात के हार मनोहर।
सब लोकनि की फूल-गंध के मूल सुघर वर ॥
चारु चंद्रिका मंजु मुकुट छहरत छवि-छाए।
मनहु रतन तन-तेज पाइ सिर चढ़ि इतराए ॥ २३ ॥

विपुल पुलक दुहुँ गात परसपर सरस परस के।
पीत नील मनि माहिँ मनौ अंकुर सुचि रस के ॥
सुधि करि विविध विलास फुरति अँग-अंग फुरहरी।
मनु सुखमा कैँ सिंधु उठति आनँद की लहरी ॥ २४ ॥

दोउ दोउनि कौं निरखि हरषि आनँद-रस चाखत।
दोउ दोउनि की सुरुचि मूक भावनि सौं राखत॥
दोउ दोउनि की प्रभा पाइ इकरँग हरियाने।
इक-मन इक-रुचि एक-प्रान इक-रस सरसाने॥ २५॥

मुखनि मंद मुसकानि कृपा-उमगानि बतावति।
चखनि चपलता चारु ढरनि-आतुरी जतावति॥
जो ब्रह्मांड निकाय माहिँ सुखमा सुघराई।
द्वै दल ताके परम बीज के सुभ सुखदाई॥ २६॥

लखि वह सुखद समाज-साज वह निखिल निकाई।
वह माधुरी स-लौन तथा वह मधुर लुनाई॥
भए देव-गन मगन दृगनि आनँद-जल छायौ।
बलिहारी कहि रहे मौन गहरि गर आयौ॥ २७॥

यह देवनि की देखि दसा प्रभु जन-हितकारी।
कृपा-दृष्टि सौं हेरि हरषि हिय-हिलग निवारी॥
बहुरि पूछि कुसलात मंजु मृदु वचन उचार्‌यौ।
आसन उचित दिवाइ सबनि सादर बैठार्‌यौ॥ २८॥

लगी सारदा प्रेम-पुलकि कल कीरति गावन।
बीना मधुर बजाइ झूमि नूपुर झनकावन॥
लय-लोकनि सौं चारु चित्र बहु-भाय खँचाए।
रुचिर राग-रँग पूरि हृदय-दृग लोल लुभाए॥ २९॥

भई सभा सब दंग रंग ऐसौ कछु माच्यौ।
प्रेमानंद अमंद मनहु तहँ तन धरि नाच्यौ॥
सुनि वह गान-विधान लगे सुर सकल सराहन।
ब्रह्मदेव हिय हुलसि वंक संकर-दिसि चाहन॥ ३०॥

सिव सुजान तब उमगि डमकि डमरू सुख-पागे।
रचि तांडव रस-भूमि जुगल-गुन गावन लागे॥
भरयौ भूरि आनंद हृदय तिहिँ लगे उलीचन।
पान-पटल पर भव्य भाव अंतर के खीचन॥ ३१॥

सकल कला के परम-धाम संकर अविकारी।
प्रभु-गुन-गान सुजान सभा अवसर मनहारी॥
सब संघट मिलि मंजु बँध्यौ इमि समौ सुहायौ।
भए देव-गन मुग्ध देह-अध्यास सिरायौ॥ ३२॥

इमि वाढ्यौ आनंद-सिंधु सुधि-बुधि-लय-कारी।
आपुहुँ ह्वै सिव मगन गान की सुरति बिसारी॥
तब सब संज्ञा पाइ दीठि जो इत-उत फेरी।
विस्मय लह्यौ महान जुगल मूरति नहिँ हेरी॥ ३३॥

सिंहासन चहुँ पास अमल जल-रासि लखाई।
गौर-स्याम-द्युति-दाम ललित लहरनि छवि छाई॥
ह्वै अति विह्वल विकल लगे सुर सकल बिसूरन।
आरत-नाद विषाद-बाद सौं सब दिसि पूरन'॥ ३४॥

चतुरानन धरि ध्यान जानि तब मरम प्रकास्यौ।
सवनि धरायौ धीर पीर-संसय-तम नास्यौ॥
संभु-गान-सुख-सुधा-सिंधु सुभ की लहि लहरैं।
दोउ लावन्य-स्वरूप द्रवित है यह छिति छहरैं॥ ३५॥

यह सुनि सब सुख पाइ उमगि अस्तुति-अनुरागे।
पुनि-दरसन-हित करन विनय अति आतुर लागे॥
प्रभु मनसा लहि संभु जगत-हित पर चित दीन्यौ।
मुक्ति-दीप भरि नेह प्रकासन कौ मन कीन्यो॥ ३६॥

तब श्रीसक्ति-समेत भक्ति-वस-विस्व-विहारी।
विरही-दुख-कातर कृपाल प्रनतारति-हारी॥
घनीभूत है फेरि दरस दै हृदय सिराए।
कृपा अनुग्रह मनहु जुगल विग्रह धरि आए॥ ३७॥

तिनकैं संगहि भई प्रगट इक वाल मनोहर।
अखिल-लोक-सुख -पुंज - मंजु - जीवन - देवी वर॥
दोउ-सुख-संपति-परम-मूल-धन-वृद्धि-रमा सी।
वहुरि-दरस-रस-अलह-लाहु-आनंद-प्रभा सी॥ ३८॥

स्यामा सुघर अनूप-रूप गुन-सील-सजीली।
मंडित - मृदु - मुख - चंद-मंद - मुसक्यानि - लजीली॥
काम-वाम-अभिराम- सहस - सोभा - सुभ-धारिनि।
साजे सकल सिँगार दिव्य हेरत हिय-हारिनि॥ ३९॥

प्रियतम कौ लावन्य प्रिया की मंजु मिठौनी।
दोउ मिलि ताकैं अंग-अंग अद्भुत मिठ-लौनी॥
सुखमा-संग उमंग महा महिमा की धारे।
मनहु रूप-गुन-सार मेलि तन अतन सँवारे॥ ४० ॥

प्रभु के पावन प्रबल भाव सौं चाव चढ़ाई।
श्री-राधा-कल-कृपा-बानि की कानि पढ़ाई॥
गंगा नाम पुनीत स्रवन-रसना-मन-रंजिनि।
प्रबल-प्रभाव-अमोघ महा-अघ-ओघ-बिभंजिनि॥ ४१ ॥

लागी ललकि लुभाइ स्यामसुंदर-मुख जोहन।
निज जोहन कैं भाय बिस्व-मोहन-मन मोहन॥
ताकौ रूप अनूप अकथ गुन भाव लजौंहैं।
लखि सोउ सुख सरसाइ भए रस-बस ललचौंहैं॥ ४२ ॥

निरखि नीठि निज 'ओर परति दुहुँ-दीठि कनौड़ी।
अनख-घटा अति सघन घूमि राधा-उर औंड़ी॥
उठी चमक चित भए सजल दृग-छोर छबीले।
प्रगटे सब्द कठोर भाव बरसे तरजीले॥ ४३ ॥

देखि रोष कौ रंग गंग कछु सकुचि सकानी।
पुनि गुनि प्रेम-प्रसंग मनहिं मन मृदु मुसकानी॥
सूच्छम बपु धरि बहुरि बेगि, प्रभु-अंग समाई।
अर्धंगिनि को कहै भई सर्बांगिनि भाई॥ ४४ ॥

रहे देव-गन मगन विनय बहु विस्तारन मैं।
प्रभु के सगुन चरित्र-चित्र चित-पट-धारन मैं।
ब्रह्मद्रव कौ रूप दृगनि भरि देखि न पाए।
तातैं ताके दरस-लाभ-हित बहुरि ललाए॥ ४५॥

स्तुति-मंत्रनि विस्तारि विविध अस्तुति विधि ठानी।
सुर-गन की अभिलाष-उमग कर जोरि बखानी॥
तब प्रभु परम उदार सकुचि स्वामिनि-मुख चाह्यौ।
उन स-मंद-मुसकानि अनुग्रह दृगनि उमाह्यौ॥ ४६॥

तिहिँ अवसर सुख-पुंज मंजु सुभ-गुन-सरसाए।
सकल-सुकृत-फल-कल्प-विटप-ऋतुराज सुहाए॥
सुनि सुर-गन-वर-विनय गंग नाथहु मनसा ज्वै।
पद-नख तैं पुनि प्रगट भई जल-रूप रुचिर ह्वै॥ ४७॥

लखि वह पावन पाथ सकल मिलि माथ नवायौ।
बहु भाँतिनि अभिनंदि महा आनंद मनायौ॥
कोउ छुवायौ लै सीस दृगनि कोउ अंजन कीन्यौ।
कोउ मार्जन कोउ उमगि आचमन करि सुख भीन्यौ॥ ४८॥

प्रभु-चख चाहि उमाहि चतुर विधि भक्ति-भाव भरि।
लियौ कमंडल पूरि वेद-मंत्रनि मंडल करि॥
लहि प्रभु-दरस-प्रसाद देव मन मोद मढ़ाए।
करि करि दंड-प्रनाम सकल निज धामनि आए॥ ४९॥

राखत सजग बिरंचि ताहि धारे निज छाती।
जथा जुगावत सूम संचि संपति जिमि थाती॥
ताही कैँ बल अकर-सुकर की कानि करत ना।
अनमिल रचत प्रपंच रंच उर धरक धरत ना॥ ५० ॥

सुन्यौ गंग-गुन-ग्राम तात सुभ-धाम सुहायौ।
कहत-भान जिहिँ लखौ छार औरै रँग छायौ॥
गंग कहा यह गंग-कथा ऐसहिँ जहँ ह्वैहै।
सकल तहाँ कौ पाप-ताप-कलमप ध्रुव ध्वैहै॥ ५१ ॥

अब तुम तुरत तुरंग-संग निज पुर पग धारौ।
सगरराज-मख-काज पूरि जग सुजस पसारौ॥
पुनि करतव्य बिचारि बारि पावन सोइ आनौ।
पितरनि तारन-हेत अपर कोउ जतन न जानौ॥ ५२ ॥

इमि कहत कहत खग-पति पुलकि प्रेम-बारि ढारन लगे।
मनु मानस-मुकताहल हुलसि सुरसरि-सिर वारन लगे॥ ५३ ॥

पंचम सर्ग

अंसुमान करि कान गंग-गुन-गान मनोहर।
धर्‍यौ संचि तिहिं ध्यान माहिँ जिमि धर्म-धरोहर॥
पुनि पितरनि के दुसह-दसा-दुख पर चित दीन्यौ।
करि उसास कौ मंत्र आँसु सौं तरपन कीन्यौ॥ १॥

परि पायनि धरि धीर माँगि आयसु खगपति सौं।
चल्यौ कुँवर कर जोरि कुसल बिनवत जगपति सौं॥
कपिलदेव-पद पूजि पाइ कछु सांति सिरायौ।
सुमिरत गंग तुरंग-संग सेना मैँ आयौ॥ २॥

दै पताल लौं नीव भानु-कुल-सुकृत-सदन की।
श्री उतारि तहँ धारि सकल वृत्रारि-बदन की॥
जड़ जमाइ भवितव्य भगीरथ-जस-बर बट की।
सोधि खानि गंभीर भूति लै पुन्य-पुरट की॥ ३॥

हय-पावन कौ हरष सोक पितरनि कौ धारे।
कीन्यौ पलटि पयान कछुक उमगत मन मारे॥
निकस्यौ सदल सपाति हुमसि हरियात बिवर तैं।
सगर-सौख्य-तरु कढ़्यौ उर्वरा के उर बर तैं॥ ४॥

स्रम करि काटत बाट बेगि बिन मग बिलँबाए।
हय-रच्छा-हित सकट-ब्यूह अति बिकट बनाए॥
कीरति-मुकता-पुंज मंजु मग मैं बगरावत।
आए अवध-समीप सकल सुर सुकृत मनावत॥ ५॥

समाचार यह पाइ धाइ आए अगवानी।
परिजन पुरजन स्वजन सचिव सज्जन सेनानी॥
प्रेम-बारि दृग ढारि लग्यौ कोउ ललकि जुहारन।
कोउ असीस सुभ देन सीस कोउ मनि-गन वारन॥ ६॥

सगर-सुतनि कौ समाचार तब लौं तहँ ब्याप्यौ।
सब मुख-कंजनि खिलत सोक-पाला परि छाप्यौ॥
सादर चले लिवाइ सुभासुभ भाय बिचारत।
बिकचत सकुचत मधुर छार जल नैननि ढारत॥ ७॥

नृप-नंदहिँ अभिनंदि धीर गंभीर धरावत।
सांति-पाठ सुभ पढ़त सदासिव-संकर ध्यावत॥
उर आनँद सौं सोक सोक सौं आनँद मारे।
पहुँचे ज्यौं त्यौं आइ जज्ञ-मंडप के द्वारे॥ ८॥

तहँ ,बसिष्ठ कुल-इष्ट सिष्ट द्विज-गन सँग लीने।
मिले आनि' ,सुख मानि पढ़त मंगल मुद-भीने॥
अंसुमान परि पाय पाइ आसिष हरषायौ।
मौरि धूरि धरि सीस जज्ञसाला मैं आयौ॥ ९॥

नृपहिँ निरखि अकुलाइ धाइ पायनि लपटायौ।
छिति-पति उमगि उठाइ छोहि छाती छपटायौ॥
दै असीस सुभ सूँघि सीस सादर वैठार्‌यौ।
पै ज्यौँहीँ करि प्रेम छेम कौ प्रस्न उचार्‌यौ॥ १० ॥

पर्‌यौ करेजौ थामि थहरि त्यौँ रोइ कुँवर वर।
निकसे सकसि न वचन भयौ हिचकिनि गद्दर गर॥
आँसु ढारि भरि साँस सचिव-सुत तव अगुवायौ।
काहू विधि सविषाद विषम संवाद सुनायौ॥ ११ ॥

उमड़्‌यौ सोक-समुद्र भई विप्लुत मख-साला।
वड़वागिनि सी लगन लगी जज्ञागिनि-ज्वाला॥
गयौ तुरत फिरि सव उछाह आनँद पर पानी।
वढ़ी पीर की लहर धीर-मरजाद नसानी॥ १२ ॥

लगे सकल सिर धुनन कांड करुना कौ माच्यौ।
मनु वनाइ वहु वपुष वरुन तिहिँ मंडप नाच्यौ॥
लागीँ खान पछाड़ धाड़ मारन सव रानी।
मानहु माजा मज्जि तलफि सफरी अकुलानी॥ १३ ॥

भयौ भूप जड़-रूप अंग के रंग सिराए।
वज्राघात सहस्र साठ संगहिँ सिर आए॥
कढ़्‌यौ कंठ नहिँ वैन न नैननि आँसु प्रकास्यौ।
आनन भाव-विहीन गाँव ऊजड़ लौँ भास्यौ॥ १४ ॥

मुनिहुँ सकल ह्वै बिकल लगे लोचन-जल मोचन।
नृप की दारुन दसा देखि औरै कछु सोचन॥
कोउ परखत मुख मलिन हाथ छाती कोउ लावत।
अभिमंत्रित-जल-छीँट छिरकि कोउ सीस जगावत॥ १५॥

तब गुरुबर धरि धीर कियौ निर्धारित मन मैँ।
कोसल-पति-कुसलात बनति केवल रोवन मैँ॥
जौ अति उबलत सोक-सलिल दृग-पथ नहिँ पैहै।
भूरि भाप सौँ पूरि तुरत तौ घट फटि जैहै॥ १६॥

मनुष-सुभाव-प्रभाव बहुरि गुनि मुनि बिज्ञानी।
अति अचूक उपयुक्त जुक्ति ठानो हित-सानी॥
अंसुमान कौँ पकरि पानि नृप अंग लगायौ।
करुना-क्रंदन करत कुँवर कंपत लपटायौ॥ १७॥

लहि सन्निधि सम-सील पूत के धरकत हिय की।
अनुकंपित कछु भईँ सिरा नरपति जग-प्रिय की॥
ज्यौँ कोउ तंत्री-बाज उठत कछु गाजि गमक सौँ।
सम-सुर सात्म्य समीप-बाद को नाद-धमक सौँ॥ १८॥

सनै सनै पुनि परन लगीँ नरपति की पलकैँ।
आनन पर लहरान लगीँ प्रानिनि की झलकैँ॥
तब बसिष्ठ इमि कह्यौ नृपति निरखौ निज नाती।
काकौ यह असमंज कुँवर की सौँपत थाती॥ १९॥

यह सुनि करुना-भाव भूरि उर-अंतर जागे।
ह्वै कातर बिललाइ फूटि नृप रोवन लागे॥
लहि अवसर उपयुक्त लगे गुरुवर समुझावन।
सिवि-दधीचि-हरिचंद-कथा कहि धीर धरावन॥ २० ॥

पुनि मुनि भृगु-बरदान गूढ़ पर ध्यान दिवायौ।
सुमति-सुमति-प्रति-वदित-वाक्य-आसय समुझायौ॥
अस्वमेध की बहुरि महा महिमा मुनि भाषी।
जिहि सिहान करि बिघन-पात सहसा सहसाखी॥ २१ ॥

कह्यौ न उचित बिषाद-वाद मख-मंडप माहीं।
यामैं सोच असैाच सोक कैा अवसर नाहीं॥
मानि मन्यु मन अकरमन्य ह्वै जो रहि जैहैा।
कुल-कीरत-अभिराम-सहित निज नाम नसैहैा॥ २२ ॥

तातैं धीरज धारि प्रथम मख-काज पुरावैा।
स्वर्ग-लोक मैं अति बिसोक निज ओक बनावैा॥
पुनि गुनि करौ उपाय पाप तिनके मेटन कैा।
जातैं बनै बनाव बहुरि तहँ मिलि भेटन कैा॥ २३ ॥

अंसुमान तब उमगि गरुड़-इतिहास बखान्यौ।
पितरनि-तारन-हेत गंग-अवतारन ठान्यौ॥
बहुरि सगर-गर लागि मधुर बैननि समुझायौ।
साठ-सहस-छत-छन्न हियैं निज नेह लगायौ॥ २४ ॥

गुरु-निदेस सिसु-प्रेम नेम कुल-कानि-रखन कौ।
मख-पूरन कौ भाव चाव पुनि सुतनि लखन कौ॥
सब मिलि है घन सघन भूप-मन मंडप कीन्यौ।
तापन-तपन निवारि नीर धीरज कौ दीन्यौ॥ २५॥

तब सम्हारि चित-वृत्ति सांति भूपति उर आनी।
हरि-इच्छा धरि सीस मानि अंतर-हित-सानी॥
गुरु-पद पूजि मनाइ ईस विधिवत मख कीन्यौ।
असन-वसन-गो-हेम-दान विप्रनि कौं दीन्यौ॥ २६॥

अस्वमेध सौं है निवृत्त नृप पुर पग धार्‌यौ।
सुरसरि-आनन कौ उपाय बहु भाय विचार्‌यौ॥
लाई ध्यान अनेक बात नहिँ कछु बनि आई।
ऐसहिँ सोच-विचार माहिँ नृप-आयु सिराई॥ २७॥

अंसुमान तब भयौ भानु-कुल-कीरति-कारी।
धर्म-धीर वर वीर प्रजा-परिजन-दुख-हारी॥
सिंहासन-सौभाग्य मुकुट कौ मान-मढ़ैया।
छात्र-छत्र कौ छेम चमर-चित चाव-चढ़ैया॥ २८॥

कछु दिन न्याय चुकाइ प्रजा-गन तिन परिपोषे।
विप्र पितर सुर दान मान पूजा सौं तोषे॥
रहत रहित-उतसाह सदा पितरनि हित सोचत।
गुनत गरुड़-इतिहास गूढ़ लोचन जल मोचत॥ २९॥

निसि-दिन करत विचार चारु सुरसरि ल्यावन कौ।
पितरनि तारि अपार छेम सौं छितिछावन कौ॥
पै साधन-उपयुक्त-जुक्ति कोउ चित्त चढ़ति ना।
सोइ चिंता की सदा चुभति नट-साल कढ़ति ना॥ ३० ॥

इक दिन गुरु-गृह जाइ पाय परि अति मृदु बानी।
करि अस्तुति बहु भाँति भूरि-स्रद्धा-सरसानी॥
कह्यौ जोरि जुग हाथ अनुग्रह नाथ तिहारैं।
सुख संपति सौभाग्य जदपि सब साथ हमारैं॥ ३१ ॥

तउ पितरनि की दुसह-दसा-चिंता नित जागति।
परत न चल'चित चैन नैन निद्रा नहिँ लागति॥
मन कैँ भार अपार सदा सिर रहत निचौंहीं।
अवलोकत सब जगत लगत निज ओर हँसौंहीं॥ ३२ ॥

सगर-सुतनि की सुनी दसा दारुन-दुख-सानी।
सुरसरि-महिमा मंजु गरुड़ की गूढ़ कहानी॥
तुम सर्वज्ञ सुजान भानु-कुल-नित-हितकारी।
धरहु माथ मुनि-नाथ हाथ गुनि आरत भारी॥ ३३ ॥

सुरधुनि आनन कौ उपाय करुना करि भाषौ।
होइ सुगम कै अगम सकुच गहि गोइ न राखौ॥
अंसुमान की देखि दसा कातर मुनि-नायक।
कहे पुलकि भरि नैन बैन इमि धीरज-दायक॥ ३४ ॥

धन्य भानु-कुल-भानु धन्य जग जनम तिहारौ।
तुम बिन कौन महान ठान यह ठाननहारौ॥
तुम बुधि-बल-गुन-धाम वीर छत्री-व्रत-धारी।
होहु न आतुर सुनहु धीर धरि बात हमारी॥ ३५॥

बिसद बिहंगम-राज गंग-महिमा जो भाषी।
ताके सत्य-प्रमान माहिँ हमहूँ सुचि साखी॥
महा पाप अरु साप सकल सो टारि सकति है।
साठ सहस की कहा जगत उद्धार सकति है॥ ३६॥

कोउ न असंभव काज न कछु दुस्तर तिहिँ आगे।
ताकौ गुन-गन गुनत रहत जम-गन भय-पागे॥
जो करि जुक्ति अनेक सुकवि अत्युक्ति प्रकासैँ।
सो सब गंग-प्रसंग माहिँ सहजोक्तिहि भासैँ॥ ३७॥

पै अति दुस्तर काज भूमि ताकौ संचारन।
तारन कठिन न ताहि कठिन ताकौ अवतारन॥
फनि जिमि मनि तिमि रहत सदा बिधि ताहि जुगाए।
स्तुति-बिधि-रच्छित मंजु कमंडल माहिँ पुगाए॥ ३८॥

जो कोउ कष्ट उठाइ जाइ सेवै गिरि कानन।
साधि तपस्या उग्र इतौ तोषै चतुरानन॥
कै वह सहसा उमगि देहि कछु वह जल पावन।
तौ आवै महि गंग होइ सब काज सुहावन॥ ३९॥

यह सुनि मुनि-पद पूजि तुरत नृप आज्ञा लीनी।
तप-बिधि संजम-नियम-रीति उर अंकित कीनी ॥
लहि आयसु हरषाइ आइ निज गेह गुहार्‌यौ।
मंत्री मित्र कलत्र 'पुत्र सब आनि जुहार्‌यौ ॥ ४० ॥

दै दिलीप कौं राज बिबिध नृप-काज बुझायौ।
मंत्रिनि मित्रनि सौंपि प्रजा-पालन समुझायौ ॥
बर-बिहंगपति-बदित गंग-महिमा सब भाखी।
बहुरि दई दृढ़ आन राखि दिग-पालनि साखी ॥ ४१ ॥

जो इहिँ आसन होइ राज-सासन-अधिकारी।
सुरसरि-आनन-हेत करै कानन तप भारी ॥
जब लौं कोउ पतंग-बंस महि गंग न आनै।
तब लौं सलभ पतंग-अर्थ इहिँ कुल-हित मानै ॥ ४२ ॥

यौं कहि चले भुआल नेह नातौ सब तोरे।
सुरपुर-दुर्लभ राज-सदन-सुख सौं मुख मोरे ॥
कियौ जाइ हिमवंत-सिखर तप महा कठिन तिन।
अंत लह्यौ सुरलोक-बास बीतैं आयुस-दिन ॥ ४३ ॥

तब दिलीप तप-काज बिदा माँगी गुरुवर सौं।
पै तिन जान न दियौ ग्रस्त गुनि रोग-रगर सौं ॥
रोगी रुनिया 'अंग-भंग आतुर अबिचारी।
ये नहिँ काहू भाँति तपस्या के अधिकारी ॥ ४४ ॥

करि प्रकास कछु काल अंत अथयौ वह पूषन।
भए भगीरथ भूप भव्य भारत के भूषन॥
दृढ़-व्रत धर्म-धुरीन दीन-दुख-दंद-निवारी।
ईस-भक्त द्विज-पितर-साधु-गो-द्विज-हितकारी॥ ४५॥

जाकौ प्रखर प्रताप ताप सौं अरि-उर तावत।
हंस-बंस-सुभ-सुजस-कलानिधि-द्युति दमकावत॥
संपति मानि सुहाग चलति जापैं उमगानी।
करत कामना कछुक सिद्धि आवति अगवानी॥ ४६॥

कीन्यौ भूप विचार धार पावनि पावन कौ।
सगर-कुमारनि पिता-पास पुनि पहुँचावन कौ॥
सकल जगत-हित साधि अटल कीरति छावन कौ।
स्वकुल ब्रह्म-अवतार-जोग महिमा ठावन कौ॥ ४७॥

जुवा बैस पर मानि जानि संतान न आगे।
कीन्यौ कछुक विलंब अंब संकर अनुरागे॥
अंसुमान की आन ध्यान करि पुनि मन माष्यौ।
उहै अवस्था माँहिँ जान कानन अभिलाष्यौ॥ ४८॥

सोच्यौ जौ यह बयस बृथा ऐसहिँ चलि जैहै।
तौ उतरत दिन माँहिँ कठिन तप पार न पैहै॥
अंसुमान इहिँ हेत कछुक पायौ करि नाहीँ।
यातैँ उचित विलंब नाहिँ सुभ कारज माहीँ॥ ४९॥

यह विचारि नृप राज-भार मंत्रिनि सिर धार्‌यौ ।
दान मान सौं तोषि सबनि इमि वचन उचार्‌यौ ।।
अब हम तप-हित जात गंग जासौं महि आवै ।
होइ मिलन पुनि आइ ईस जौ आस पुरावै ।। ५० ।।

बहुरि जाइ गुरु-गेह नेह-जुत माथ नवायौ ।
कहि मृदु वचन विनीत सकल संकल्प सुनायौ ।।
सिख आसिष बहु भाँति पाइ सब संसय सार्‌यौ ।
करि प्रनाम उर सुमिरि ईस वन-मग पग धार्‌यौ ।। ५१ ।।

इमि कर्मवीर सहसा भवन त्यागि गवन कानन कियौ ।
छुट सद्धा साहस धीर अरु धर्म न कछु निज सँग लियौ ।।५२।।

षष्ठ सर्ग

जाइ गोकरन-धाम नृपति अति आनद पायौ।
मनु गज तोरि अलान उमगि कदली-बन आयौ॥
सिद्धि-छेत्र सुभ देखि नेत्र तहँ ललकि लुभाए।
मनहु सोधि मनि-खानि-सोध सोधी हुलसाए॥ १॥

तरु वल्ली बहु भाँति फलित प्रफुलित तहँ भावैं।
मनहु कामना सफल होन के सगुन दिखावैं॥
सर सरिता सब स्वच्छ जथा-इच्छित जल पावत।
मनु मन-आसय पूर होन के जोग जतावत॥ २॥

गुंजत मंजु मलिंद-पुंज मकरंद-अघाए।
मनहु मुदित मन करत तोष के घोष सुहाए॥
पसु-पच्छिनि के बृंद करत आनंद-नाद कल।
धन्यवाद मनु देत पाइ बांछित जीवन-फल॥ ३॥

विद्याधर गंधर्व सिद्ध तप-वृद्ध सयाने।
विचरत तहाँ विनोद-मोद-मंडित मनसाने॥
मुनि-आस्रम अभिराम ठाम-ठामनि छबि छावैं।
साधक-गन पैं सिद्धि तहाँ खोजति चलि आवैं॥ ४॥

सो सुभ धाम ललाम देखि भूपति-मन मान्यौ।
तहँ तप-कष्ट उठाइ इष्ट-साधन ठिक ठान्यौ॥
पूजि छेत्र-पति पुलकि माँगि आयसु मुनि-गन सैाँ।
लगे भूप-मनि करन कठिन जप तप तन मन सैाँ॥ ५॥

कंद मूल तिन करि अहार कछु वार विताए।
कछुक दिवस तृन पात परे पुहुमी चुनि खाए॥
कछु दिन वारि बयारि पान करि कछु दिन टेरे।
इहिँ विधि कष्ट उठाइ किए ब्रत घोर घनेरे॥ ६॥

रह्यौ भूप कौ रूप भावना के लेखा सौ।
अस्ति नास्ति कैँ वीच गनित-कल्पित रेखा सौ॥
सुर-मुनि अग्र समग्र देखि तप उग्र सिहाए।
नृपहिँ निवारन-हेत सवनि वहु हेत बुझाए॥ ७॥

रहे ध्यान धरि जपत भूप विधि-मंत्र निरंतर।
भरि जिय यहै उमंग गंग आवैँ अवनी पर॥
तरैँ सगर के सुवन भुवन मुद मंगल छावैं।
डरैँ देखि जम-दूत पुरी पुरहूत वसावैं॥ ८॥

बीते वरस अनेक टेक जव नैँकु न टारी।
सह्यौ सीस धरि धीर वीर हिम आतप वारी॥
तव ताकैँ तप-तेज तपन लाग्यौ महि-मंडल।
उफनि उठ्यौ ब्रह्मंड भभरि भय भर्‍यौ अखंडल॥ ९॥

सुर नर मुनि गंधर्ब जच्छ किन्नर कहलाने।
नभ-जल-थल-चर विकल सकल थल थल हहलाने॥
जानि पर्यौ त्रिपुरारि तमकि तीजौ दृग खोल्यौ।
त्रासनि परी पुकार चारमुख-आसन डोल्यौ॥ १० ॥

लै सँग देव-समाज काज बिसराइ जगत कौ।
उठि आतुर अकुलाय ल्याय मन भाय भगत कौ॥
चले प्रसंसत हँसत हंस हाँकत चतुरानन।
पहुँचे आनि तुरंत तपत भूपति जिहिँ कानन॥ ११ ॥

कृपा-छलक-छबि नैन बैन गद्गद मुख मुलकित।
बर बरदान-उमंग-तरंगनि सौं तन पुलकित॥
मृदुल मनोहर उर-उछाह-कारी स्रम-हारी।
सुघर सब्द सौं कलित ललित बिधि गिरा उचारी॥ १२ ॥

अहो भूप-कुल-कमल-अमल-अति-प्रबल-प्रभाकर।
कियौ कठिन तप जाहि निरखि रबि लगत सुधाकर॥
जाकैं प्रखर प्रभाव पदारथ परम सुलभ सब।
तजि सँकोच जो चहहु लहहु सानँद हमसौं अब॥ १३ ॥

सुनत बैन सुख-दैन भगीरथ नैन उघारे।
बिबुधनि-बलित प्रसन्न-बदन बिधि निकट निहारे॥
तप-तापैं तन परी सुखद आसा-जल-धारा।
सुधा स्रवन भरि चली उबरि दृरि नैननि द्वारा॥ १४ ॥

सरक्यौ सब दुख-दंद चंद-आनन मुद छरक्यौ।
फरक्यौ सुभग सरीर चीर वलकल कौ दरक्यौ॥
जोरि पानि परि भूमि भूमि-पति सिर पद परसे।
सब देवनि सादर प्रनाम करि अति सुख सरसे॥ १५॥

पाद अरघ आसन सुमूल फल फूल सुहाए।
अरपि जथा-विधि विनय-वचन कर जोरि सुनाए॥
जय चतुरानन चतुर चतुर-जुग-जगत-विधायक।
जय सुर-नर-मुनि-वंद्य सदा सुंदर-वर-दायक॥ १६॥

तव दरसन सौं आज काज पूजे सब मन के।
लखि यह देव-समाज साज छाए सुख-गन के॥
धर्‌यौ माथ पर हाथ नाथ तौ देहु यहै वर।
तारन-विरद-उतंग गंग आवैं पुहुमी पर॥ १७॥

असन वसन वर वाम धाम भव-विभव न चाहैं।
सुरपुर-सुख विज्ञान मुक्तिहूँ पै न उमाहैं॥
अति उदार करतार जदपि तुम सरवस-दानी।
हम लघु जाचक चहत एक चिल्लू-भर पानी॥ १८॥

ताही सौं तप-ताप दूरि करि अंग जुड़ैहैं।
ताही सौं सब साप-दाप पितरनि के जैहैं॥
ताही सौं जग सकल महा मुद मंगल छैहैं।
ताही सौं सुख पाइ लाख अभिलाष परैहैं॥ १९॥

यह सुनि मृदु मुसकाइ चतुर चतुरानन भाख्यौ।
धन्य धन्य महि-पाल मही-हित पर चित राख्यौ ॥
तुम्हैं न कछुहुँ अदेय एक यह असमंजस पर।
गंग-धार कौ बेग धरै किमि धरनि धरा-धर ॥ २० ॥

धमकि धूम सौं धाइ धँसै जबहीं ब्रह्मद्रव।
उथलपथल तल होइ रसातल मचहि उपद्रव ॥
जगत जलाहल होइ कुलाहल त्रिभुवन व्यापै।
है सनद्ध कटिबद्ध कौन थिरता फिरि थापै ॥ २१ ॥

तातैं कहत उपाय एक अतिसय हितकारी।
आराधौ तुम आसुतोष संकर त्रिपुरारी ॥
सो सब भाँति समर्थ अर्थ-दायक चित-चाहे।
करत न नैंकु बिचार चार फल देत उमाहे ॥ २२ ॥

विकल सकल जग जोहि छोहि करुना जिन धारी।
निधरक धरि गर गरल सुरासुर-बिपति बिदारी ॥
गर्व खर्ब करि सर्व कठिन कालहु दुर्दर कौ।
चिर जीवन थिर कियौ मारकंडे मुनिबर कौ ॥ २३ ॥

सोइ इक सकत सँभारि गंग कौ बेग बिपुल बर।
करि जु कृपा बर देहिँ लेहिँ यह काज सीस पर'॥
सकल मनोरथ होहिँ सिद्ध तब तुरत तिहारे।
यौं कहि विधि सब सुरनि सहित निज लोक सिधारे ॥ २४ ॥

यह सुनि महा धीर भूपति-मन नैँकु डग्यौ ना।
संसय संका सोक सोच मैँ पलहुँ पग्यौ ना॥
वरु बाढ़ी चित चोप ओप आनन पर आई।
अमित उमंग-तरंग अंग-अंगनि मैँ छाई॥ २५॥

अब तौ हम सुभ ढंग गंग-आवन कौ पायौ।
पारावार-अपार-परे कौँ पार लखायौ॥
यह विचार निर्धारि हियेँ आनँद सरसायौ।
धन्यवाद है नीर निकरि नैननि तैँ आयौ॥ २६॥

पुनि लागे तप तपन जपन संकर दुख-भंजन।
वर-दायक करुना-निधान निज-जन-मन-रंजन॥
इक अँगुठा है ठाढ़ गाढ़ व्रत संजम लीने।
सहे विविध दुख गहे मौन इक दिसि मन दीने॥ २७॥

खान पान बस किए नीँद नारी बिसराए।
और ध्यान सब धोइ देवधुनि की धुनि लाए॥
गयौ बीति इहिँ रीति एक संवतसर सारौ।
उठ्यौ गगन लौँ गाजि भूप कौ सुजस-नगारौ॥ २८॥

तब तजि अचल समाधि आधि-हर संकर जागे।
निज-जन-दुख मन आनि कसकि करुना सौँ पागे॥
आतुर चले उमंग-भरे भंगहु नहिँ छानी।
कृपा-कानि बरदान-देन-हित हिय हुलसानी॥ २९॥

डगमग पग मग धरत तजे वरदहु हरबर सौं।
आए तिहिँ वन सघन विभूपित जो नरवर सौं॥
देखि भूप कौ कृसित रूप नैननि जल छायौ।
सृंगी-नाद विपाद-हरन सुख-करन वजायौ॥ ३०॥

दृग उघारि त्रिपुरारि निरखि नृप निपट चकाए।
रहे ललकि छवि-छकित पलक बिन पलक गिराए॥
सुंदर अमल अनूप भव्य भव-रूप सुहायौ।
मनु तप-तेज-स्वरूप भूप-आगैँ चलि आयौ॥ ३१॥

हेम-वरन सिर जटा चंद-छवि-छटा भाल पर।
कलित कृपा की कटा-घटा लोचन विसाल पर॥
फनि-पति-हार-विहार-भूमि वच्छस्थल राजै॥
जग-अवलंब प्रलंब भुजनि फरकति छवि छाजै॥ ३२॥

दृढ़ कटि-धाम ललाम चाम सुभ दुरद-दुवन कौ।
गूढ़ जानु जो भार भरत सहजहिँ त्रिभुवन कौ॥
अरुन-कोकनद चरन सरन जो असरन जन के।
जिनकौ गुन-गुंजार करत मन-अलि मुनि-गन के॥ ३३॥

गौर सरीर विभूति भूति त्रिभुवन की सोहै।
आनन परम-उदार-प्रकृति-छवि-छलक विमोहै॥
उमगि कृपा कौ वारि पगनि डगमग उपजावत।
तकि तकि तांडव नचत दमकि-दम डमरु वजावत॥ ३४॥

मानि कामना सिद्ध जानि तूठे दुख-हारी।
भयौ भूप-मन मगन बढ़ैं आनँद-नद भारी॥
किं-कर्तव्य-विमूढ़ गूढ़ भायनि भरि भाए।
रहे थकित से ढंग छनक विन अंग डुलाए॥ ३५॥

पुनि कछु धीर बटोरि जोरि कर परे धरनि पर।
वरुनिनि झारत पाय पखारत नैन-नीर-झर॥
कंपित गात लखाति प्रेम-पुलकावलि विकसति॥
उमगि कंठ लौं आइ बात हिचकी ह्वै निकसति॥ ३६॥

यह करुनामय दृस्य संभु मनतारति-हारी।
सके न देखि विसेषि भक्त-दुख भए दुखारी॥
नृपहिं और कछु करन कहन कौ ठौर न दीन्यौ।
अंतरजामी जानि भाव अंतर कौ लीन्यौ॥ ३७॥

भुज उठाइ हरषाय बाँकुरौ विरद सँभार्यौ।
दियौ विसद बर-राज भूप कौ काज सँवार्यौ॥
हम लैहैं सिर गंग ढंग जग होहि जाहि ज्वैं।
यौं कहि अंतर्धान भए नृप रहे चकित ह्वै॥ ३८॥

उठि महि सौं महिपाल लगे चारौं दिसि हेरन।
कृपा-सिंधु करुना-निधान कहि इत उत टेरन॥
सिव कौ सुखद स्वरूप चखनि भरि चहन न पाए।
मन की मनहीं रही हाय कछु कहन न पाए॥ ३९॥

इहिँ गिलानि को आनि घटा आसा घुँघराई।
भयौ मंद मुख-चंद दुंद-उम्मस उमगाई॥
पै सुनि हर के बैन नैन आनँद-रस बरसे।
जप तप कौ करि बिहित बिसर्जन अति सुख सरसे॥ ४०॥

इहिँ भाँति भगीरथ भूप वर साधि जोग जप तप मखर।
लीन्यौ सिहात जिहिँ लखि अमर मान-सहित चित-चहत वर॥४१॥

सप्तम सर्ग

तब नृप करि आचमन मारजन सुचि-रुचि-कारी।
प्रानायाम पुनीत साधि चित-बृत्ति सुधारी॥
बहुरि अंजली बाँधि ध्यान विधि कौ विधिवत गहि।
माँगी गंग उमंग-सहित पूरब प्रसंग कहि॥ १॥

बद्ध-अंजली देखि भूप विनवत मृदु बानी।
मुसकाने विधि आनि चित्त "चिल्लू-भर पानी"॥
लागे करन विचार बहुरि जग-हित-अनहित पर।
पाप-पुन्य-फल-उचित-लाभ-मर्याद खचित पर॥ २॥

पुनि गुनि वर वरदान आपनौ औ संकर कौ।
सगर-सुतनि कौ साप-ताप तप नर-पति वर कौ॥
सुमिरि अखिल-ब्रह्मांड-नाथ मन माथ नवायौ।
सब संसय करि दूरि गंग-दैवौ ठिक ठायौ॥ ३॥

किए सजग दिग-पाल ब्याल-पति-हृदय दृढ़ायौ।
कोल कमठ पुचकारि भूधरनि धीर धरायौ॥
स्वस्ति-मंत्र पढ़ि तानि तंत्र मुद-मंगल-कारी।
लियौ कमंडल हाथ चतुर चतुरानन-धारी॥ ४॥

इत सुरसरि की धाक धमकि त्रिभुवन भय-पागे।
सकल सुरासुर विकल बिलोकन आतुर लागे॥
दहलि दसौं दिग-पाल विकल-चित इत उत धावत।
दिग्गज दिग दंतनि दबोचि दृग भभरि भ्रमावत॥ ५॥

नभ-मंडल थहरान भानु-रथ थकित भयौ छन।
चंद चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारागन॥
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब मौन सनासन।
सोचत सबै सकाइ कहा करिहै कमलासन॥ ६॥

विंध्य - हिमाचल - मलय - मेरु - मंदर - हिय हहरे।
ढहरे जदपि पषान ठमकि तउ ठामहिँ ठहरे॥
थहरे गहरे सिंधु पर्व बिनहूँ लुरि लहरे।
पै उठि लहर-समूह नैकुँ इत उत नहिँ ढहरे॥ ७॥

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैँ।
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैँ॥
लै स-बेग-बिक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्म-लोक कौँ बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ॥ ८॥

सिव सुजान यह जानि तानि भौँहनि मन माषे।
बाढ़ी-गंग-उमंग-भंग पर उर अभिलाषे॥
भए सँभरि सन्नद्ध भंग कैँ रंग रँगाए।
अति दृढ़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि आए॥ ९॥

बाघंबर कौ कलित कच्छ कटि-तट सौं नाध्यौ ॥
सेसनाग कौ नागबंध तापर कसि बाँध्यौ ॥
ब्याल-माल सौं भाल बाल-चंदहिँ दृढ़ कीन्यौ।
जटा-जाल कौ झाल-ब्यूह गह्वर करि लीन्यौ ॥ १० ॥

मुंड-माल यज्ञोपवीत कटि-तट अटकाए।
गाढ़ि सूल सृंगी डमरू तापर लटकाए ॥
वर बाहँनि करि फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि।
बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाय भिनि ॥ ११ ॥

तमकि ताकि भुज-दंड चंड फरकत चित चोपे।
महि दबाइ दुहुँ पाय कछुक अंतर सौं रोपे ॥
मनु बल-विक्रम-जुगल-खंभ जगथंभन-हारे।
धीर-धरा पर अति गँभीर-दृढ़ता-जुत धारे ॥ १२ ॥

जुगल कंध बल-संध हुमकि हुमसाइ उचाए।
दोउ भुज-दंड उदंड तोलि ताने तमकाए।
कर जमाइ करिहायँ नैन नभ-ओर लगाए।
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए ॥ १३ ॥

बल विक्रम पौरुष अपार दरसत अँग-अँग तैं।
बीर रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँगरँग तैं ॥
मनहु भानु-सितभानु-किरन-बिरचित पट बर की।
झलक दुरंगी देति देह-द्युति सिवसंकर की ॥ १४ ॥

वचन-बद्ध त्रिपुरारि -ताकि सन्नद्ध निहारत।
दियौ ढारि विधि गंग-बारि मंगल उच्चारत॥
चली विपुल-बल-वेग-वलित बाढ़ति ब्रह्मद्रव।
भरति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव॥ १५॥

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल-खंडति।
धाई धार अपार वेग सौं वायु विहंडति॥
भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महा मेघ मिलि मनहु एक संगहिं सब गर्जे॥ १६॥

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके वाहन रुकत नैंकु नहिं विधि हरि हर के॥
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरके।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके॥ १७॥

कढ़ि-कढ़ि गृह सौं विबुध विविध जाननि पर चढ़ि-चढ़ि।
पढ़ि-पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि॥
सुर-सुंदरी ससंक बंक दीरघ दृग कीने।
लगीं मनावन सुकृत हाथ काननि पर दीने॥ १८॥

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति॥
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा॥ १९॥

विपुल बेग सौं कबहुँ उमगि आगे कौं धावति।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति॥
फटिकसिला के वर विसाल मन विस्मय बोहत।
मनहु बिसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत॥ २०॥

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कैधौं आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी॥
मीन-मकर-जलब्यालनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल-छवि-छाई॥ २१॥

रुचिर रजतमय कै वितान तान्यौ अति विस्तर।
झिरतिं बूँद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर॥
ताके नीचैं राग-रंग के ढंग जमाए।
सुर-बनितनि के बृंद करत आनंद-बधाए॥ २२॥

बर-बिमान-गज-बाजि-चढ़े जो लखत देव-गन।
तिनके तमकत तेज दिव्य दमकत आभूषन॥
प्रतिबिंबित जब होत परम प्रसरित प्रवाह पर।
जानि परत चहुँ ओर उए बहु बिमल बिभाकर॥ २३॥

कबहुँ सु धार अपार-बेग नीचे कौं धावै।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवै॥
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य-खेत-उतपन्न हीर की रासि उसावत॥२४॥

कै निज नायक बँध्यौ बिलोकत ब्याल पास तैं।
तारनि की सेना उदंड उतरति अकास तैं॥
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत।
हर हर करि हर-सीस एक संगहि सब डारत॥ २५॥

छहरावति छबि कबहुँ कोऊ सित सघन घटा पर।
फबति फैलि जिमि जोन्ह-छटा हिम-प्रचुर-पटा पर॥
तिहिं घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै।
जल-प्रतिबिंबित दीप-दाम-दीपति सी दमकै॥ २६॥

कबहुँ वायु-बल फूटि छूटि बहु बपु धरि धावै।
चहुँ दिसि तैं पुनि डटति सटति सिमटति चलि आवै॥
मिलि-मिलि द्वै-द्वै चार-चार सब धार सुहाई।
फिरि एकै ह्वै चलति कलित बल बेग बढ़ाई॥ २७॥

जैसैं एकै रूप प्रबल माया-बस मैं परि।
बिचरत जग मैं अति अनूप बहु बिलग रूप धरि॥
पै जब ज्ञान-बिधान ईस-सनमुख लै आवै।
तब एकै ह्वै बहुरि अमित आतम-बल पावै॥ २८॥

जल सौं जल टकराइ कहूँ उच्छलत उमंगत।
पुनि नीचैं गिरि गाजि चलत उत्तंग तरंगत॥
मनु कागदी कपोत गोत के गोत उड़ाए।
लरि अति ऊँचैं उलरि गोति गुथि चलत सुहाए॥ २९॥

कहूँ पौन-नट निपुन गौन कौ बेग उघारत।
जल-कंदुक के बूंद पारि पुनि गहत उछारत॥
मनौ हंस-गन मगन सरद-बादर पर खेलत।
भरत भाँवरैं जुरत मुरत उलहत अवहेलत॥ ३० ॥

कबहुँ वायु सौं बिचलि बंक-गति लहरति धावै।
मनहु सेस सित-बेस गगन तैं उतरत आवै॥
कबहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै।
मनु मुकतनि की भीर छीर-निधि पर छवि छाजै॥ ३१ ॥

कबहुँ सुताड़ित ह्वै अपार-बल-धार-बेग सौं।
छुभित पौन फटि गौन करत अतिसय उदेग सौं॥
देवनि के दृढ़ जान लगत ताके झकझोरे।
कोउ आँधी के पोत होत कोउ गगन-हिँडोरे॥ ३२ ॥

उड़ति फुही की फाव फबति फहरति छवि-छाई।
ज्यौं परवत पर परत झीन बादर दरसाई॥
तरनि-किरन तापर विचित्र बहु रंग प्रकासै।
इंद्र-धनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै॥ ३३ ॥

मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हे निज अंगी।
नव भूषन नव-रत्न-रचित सारी सत-रंगी॥
गंगागम-पथ माहिँ भानु कैधौं अति नीकी।
बाँधी बदनवार विविध बहु पटापटी की॥ ३४ ॥

इहिँ बिधि धावति धँसति ढरति ढरकति सुख-देनी।
मनहु सवाँरति सुभ सुर-पुर की सुगम निसेनी॥
विपुल··बेग बल विक्रम कैं ओजनि उमगाई।
हरहराति हरषाति संभु-सनमुख जब आई॥ ३५॥

भई थकित छवि छकित हेरि हर-रूप मनोहर।
है आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर॥
भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई॥ ३६॥

छोभ-छलक है गई प्रेम की पुलक अंग मैं।
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग मैं॥
भयौ बेग उद्वेग पेंग छाती पर धरकी।
हरहरान धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की॥ ३७॥

भयौ हुतौ भ्रू-भंग-भाव जो भव-निदरन कौ।
तामैं पलटि प्रभाव पर्‌यौ हिय हेरि हरन कौ॥
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरै सुखकारी।
है थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी॥ ३८॥

कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी।
दियौ सीस पर ठाम बाम करि कै मन मानी॥
सकुचति ऐंचति अंग गंग सुख-संग लजानी।
जटा-जूट-हिम-कूट सघन बन सिमिटि समानी॥ ३९॥

पाइ ईस कौ सीस-परस आनँद अधिकायौ।
सोइ सुभ सुखद निवास बास करिबौ मन ठायौ॥
सीत सरस संपर्क लहत संकरहु लुभाने।
करि राखी निज अंग गंग कैँ रंग भुलाने॥ ४० ॥

बिचरन लागी गंग जटा-गह्वर-बन-बीथिनि।
लहति संभु-सामीप्य-परम-सुख दिननि निसीथिनि॥
इहिँ बिधि आनँद मैँ अनेक बीते संबत्सर।
छोड़त छुटत न बनत ठनत नव नेह परस्पर॥ ४१ ॥

यह देखि दुखित भूपति भए चित चिंता प्रगटी प्रबल।
अब कीजै कौन उपाय जिहिँ सुरसरि आवै अवनि-तल॥४२॥

———

अष्टम सर्ग

पुनि नृप उर धरि धीर वरद संकर आराधे।
विविध जोग जप जज्ञ नेम व्रत संजम साधे ॥
इक पग ऊपर उनइ सनय वहु विनय वखानी।
जोरि पानि मृदु वानि सानि ढारत दृग पानी ॥ १ ॥

जय जय भव-भय-हरन दरन दुख-दंद दयामय।
जय जय तरुनादित्य-तेज करुना-वरुनालय ॥
जय जय असरन-सरन-भरन जग-विपति-विदारन।
जय जय औढर-सरनि-ढरन सुरसरि-सिर-धारन ॥ २ ॥

व्यापक ब्रह्म-स्वरूप भूप करि सुर जिहिँ जानत।
कहि कहि अकह-अनूप-रूप जिहिँ वेद वखानत ॥
जय जय दीन-दयाल प्रनत-प्रतिपाल पुरारी।
काम-क्रोध-मद-मोह-रहित सेवक-हितकारी ॥ ३ ॥

कीन्यौ नाथ सनाथ माथ सुरसरि जो धारी।
तुम विन सकत सम्हारि कौन ताकौ वल भारी ॥
सकल सुरासुर कौ अपार भय-भार निवार्यौ।
राख्यौ पैज-प्रमान दियौ वरदान सँभार्यौ ॥ ४ ॥

पै कृपाल नहिँ होइ कामना सफल हमारी।
जब लौं महि न सिँचाइ पाइ सुरसरि-बर-बारी॥
कृपा-कोर सौं अब कीजै कोउ सुगम मनाली।
जातैं सुरसरि आइ भरै धरनी-सुख-साली॥ ५॥

सुनि बिनती गुनि दुखित दास संकर दिन-दानी।
निज बिलंब मन मानि सकुच बोले मृदु बानी॥
अहो गंग सुभ-अंग अहो सुख-सागर-संगिनि।
करनि दुरित-भय-भंग तरल-उत्तंग-तरंगिनि॥ ६॥

कीन्यौ अकथ अनूप उग्र तप भूप भगीरथ।
तव आगम तैं सुगम-करन-हित अगम परम पथ।
लहि बिधि सौं बरदान मान हमहूँ सौं पायौ।
तव उतरन आतंक पूरि त्रिभुवन थहरायौ॥ ७॥

तुम मन मानि सनेह सील पहिचानि पुरानी।
करि भूषित मम सीस भरी जग सुजस-कहानी॥
हम तव सुख-मद परस पाइ इहिँ भाय लुभाने।
रहे राखि निज संग सरस बहु बरस बिताने॥ ८॥

भई भूप की अति अनूप अभिलाष न पूरी।
जउ असाध्य स्रम साधि लही बिधि सौं निधि रूरी॥
अब तिहिँ निरखि अधीर पीर कसकति अति उर मैं।
तातैं तुम जग जाइ सुजस पूरौ तिहुँ पुर मैं॥ ९॥

हरहु पाप के दाप ताप के पुंज नसावौ।
सुर-पुर उर मैं महि-महिमा कौ चाव उचावौ॥
भए छार जरि सगर-कुमारनि कौं निस्तारौ।
भूप भगीरथ-अति-अनूप-कीरति बिस्तारौ॥ १०॥

बिलग न मानौ नैंकु प्रमानौ गिरा हमारी।
बसिहौ नित मो सीस कबहुँ ह्वैहौ नहिं न्यारी॥
नित तव धार अखंड जटामंडल तैं कढ़िहै।
जिहिं लहि परम प्रमोद गोद बसुधा की मढ़िहै॥ ११॥

यह कहि कर गहि जटा सटा लौं सूँति सटाई।
बिंदु सरोवर ओर छोर ताकी लटकाई॥
तातैं निकसि अपार धार परिपूरि सरोवर।
चली उबरि ढरि करि उदोत षट सोत धरा पर॥ १२॥

नलिनी नीत पुनीत पावनी ललित ह्लादिनी।
इन तीननि सौं भई आनि प्राची-प्रसादिनी॥
सुभ सुचच्छु बलसंध सिंधु सीता सुपुनीता।
इनसौं पच्छिम चली पढ़ति भूपति-गुन-गीता॥ १३॥

पै न भगीरथ-चित-चाहे पथ सौं महि आई।
यह लखि बिलखि भुवाल रहे चिंता अधिकाई॥
आइ सरोवर-तीर धीर धरि भरि दृग बारी।
है आरत-आधीन दीन बिनती उच्चारी॥ १४॥

जय ब्रह्मा-संपत्ति-सार जय जय ब्रह्मद्रव ।
जय महेस-मन-हरनि दरनि दुख-दंद-उपद्रव ॥
जय बृंदारक-बृंद-बंद्य जय हिमगिरि-नंदिनि ।
जय जम-गन-मन-दंड-दान-अभिमान-निकंदिनि ॥ १५ ॥

जदपि बक्र तउ सक्र-सदन की सरल निसेनी ।
जउ नीचे कौं चलति उच्च पद तउ नित देनी ॥
जदपि छुभित अतिकांति सांति-दायनि तउ मन की ।
जउ उज्जल-जल-रूप तऊ रंजनि रुचि जन की ॥ १६ ॥

देहु कृपा-अवलंब अंब त्र्यंबक-गुन धारौ ।
भारत भूमि पवित्र करौ वैभव विस्तारौ ॥
सागर पूरि पताल पैठि तहँहूँ जस छावौ ।
सगर-सुतनि कौं सोक सारि सुर-लोक पठावौ ॥ १७ ॥

सुनि नृप-विनय निदेस गंग गुनि मन महेस कौ ।
सरित सातवीँ होइ गह्यौ पथ पुन्य-देस कौ ॥
भागीरथी-पुनीत-नाम-धारिनि दुख-हारिनि ।
गारिनि जम-गन-दाप पाप-संताप-निवारिनि ॥ १८ ॥

भूप भगीरथ भए दिव्य स्यंदन चढ़ि आगे ।
लगी गंग तिन संग भाग भारत के जागे ॥
स्रृंगनि सिखरनि तोरि फोरि ढाहति ढहरावति ।
औघट घाट अघाट चली निज बाट बनावति ॥ १९ ॥

प्रथम निकसि हिम-कलित कूल पर छवि छहराई।
पुनि चहुँ दिसि तैं ढरकि ढार धारा है धाई॥
चंद्रकांत-चट्टान चंद्रिका परत सुहाई।
मनु पसीजि रस-भीजि सुधा-सरिता उपजाई॥ २०॥

तिहिँ प्रवाह मैं मिलित ललित हिम-कन इमि दमकत।
सारद बारद माहिँ मनो तारा-गन चमकत॥
कै वसुधा-सृंगार-हेत करतार सँवारी।
सुघर सेत सुख-सार तार-बाने की सारी॥ २१॥

कहुँ हिम ऊपर चलति कहूँ नीचैं धँसि धावति।
कहुँ गालनि बिच पैठि रंध्र-जालनि मग आवति॥
सरद-घटा की बिज्जु-छटा मानौ लुरि लहरति।
ऊरध अध मधि माहिँ मचलि मंजुल छवि छहरति॥ २२॥

कहुँ अटूट बहु धार गिरतिं हिमकूट-तुंड तैं।
एरावत के सुंड मनहु लटकत भुसुंड तैं॥
छटकि छीँट छवि छाइ छत्र लौं छिति पर छहरै।
सुंड भर्‌यौ जल मनहु फैलि फुफकारनि फहरै॥ २३॥

इमि हिम-खंड विहाइ आइ पाहन-पथ मंडति।
ढरकि ढार इक-डार चली गिरि-खंडनि खंडति॥
फाँदति फैलति फटति सटति सिमिटति सुढंग सौं।
सृंगनि बिच बिच बढ़ी गंग सरि भरि उमंग सौं॥ २४॥

कहुँ ढाहे ढोकनि ढुकाइ निज गति अवरोधति।
पुनि ढकेलि ढुरकाइ तिन्हैं पकर्‌यौ मग सोधति॥
कवहुँ चलति कतराइ वक्र नव वाट काटि गहि।
कवहुँ पूरि जल-पूर कूर ऊपर उमंडि वहि॥ २५॥

कहुँ विस्तर थल पाइ वारि-विस्तार बढ़ावति।
लघु गुरु वीचि पसारि छंद-प्रस्तार पढ़ावति॥
कै दिग-दंती-दंत-दिव्य-दीरघ-पाटी पर।
लिखति सतोगुन घोटि भूप-जस-रूप रुचिर वर॥ २६॥

पुनि कोउ घाटी वीच भीचि जल-वेग वढ़ावति।
ढुरकत ढोकनि खड़वड़ाइ धुनि-धूम मचावति॥
मनहु भूप कौ अति अनूप वर विरद उचारति।
जम-गन कौ दरि दंभ खंभ ठोकति ललकारति॥ २७॥

हरहराति हर-हार सरिस घाटी सौं निकरति।
भव-भय-भेक अनेक एक संगहि सव निगरति॥
अखिल हंस-वर-वंस घेरि साँकर घर धारे।
भरभराइ इक संग कढ़त मनु खुलत किवारे॥ २८॥

कहुँ कोउ गह्वर गुहा माहिँ घहरति घुसि घूमति।
प्रवल वेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति॥
कढ़ति फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति।
मानहु उड़ति सुरंग गूढ़ गिरि-सृंगनि चूरति॥ २९॥

सकल सुरासुर सिद्ध नाग गुह्यक गिरि-वासी।
इत उत हेरत हरवरात हिय भरे उदासी॥
छाड़ि जोग जप जज्ञ अज्ञ लौं चौंकि चकाए।
जहँ तहँ दौरत दुरत जुरत कर कान लगाए॥ ३० ॥

बिसद वितुंड दबाइ कुंडलित सुंड भुसुंडनि।
भय भरि नैन भ्रमाइ धाइ पैठत जल-कुंडनि॥
चीते तिँदुवे बाघ भभरि निज आघ भुलाए।
जित तित दौरत दाबि पुच्छ अरु कान उठाए॥ ३१ ॥

हरिन चौकड़ी भूलि दरिनि दौरत कदराए।
तरफरात बहुसृंग सृंग झाड़िनि अरुझाए॥
गहत प्लवंग उतंग सृंग कूदत किलकारत।
उड़ि बिहंग बहु-रंग भयाकुल गगन गुहारत॥ ३२ ॥

गुफा फारि फहराइ चलत फैलत वर वारी।
मानहु दुख-द्रुम-दलन-काज विधि रचत कुठारी॥
सगर-सुतनि के दुरित-जूह पर कै मन-मरकी।
वृंत-व्यूह रचि चलत सुकृत-सेना नर वर की॥ ३३ ॥

कै त्रिताप के हरन-हेत सुभ व्यजन सुहायौ।
विरचत रुचिर बिरंचि विसद हिम-पटल-मढ़ायौ॥
कै हीरक-मय मुकुट मंजु करि महि देवी कौ।
सब लोकनि मैं करत मान ताकौ अति नीकौ॥ ३४ ॥

इहिँ बिधि घाटिनि दरिनि कंदरिनि पैठति निकसति।
कहूँ सिमिटि घहराति कहूँ कल-धुनि-जुत विकसति॥
कहूँ सरल कहुँ वक्र कहूँ चलि चारु चक्र-सम।
कहुँ सुढंग कहुँ करति भंग गिरि-सृंग सक्र-सम॥ ३५॥

गंगोत्तरि तैँ उतरि तरल घाटी मैँ आई।
गिरि-सिर तैँ चलि चपल चंद्रिका मनु छिति छाई॥
बक-समूह इक संग गोति गिरि-तुंग-सिखर तैँ।
गए फैलि दुहुँ-बाहु बीचि कै फाबि फहर तैँ॥ ३६॥

तहाँ राजऋषि जह्नु परम हरि-भक्त प्रतापी।
द्वादस-अच्छर-महामंत्र के अविकल-जापी॥
पूरि भूरि अनुराग जाग कोउ सुभ ठान्यौ हो।
सकल देव-मुनि-गोत न्यौति सानँद आन्यौ हो॥ ३७॥

ताकौ वह मख-वाट बिसद वह ठाट सजायौ।
औचक गंग-तरंग आइ करि भंग बहायौ॥
भयौ जह्नु-उर कोप जज्ञ कौ लोप निहारत।
आमंत्रित द्विज-देव-सिद्ध-अपमान बिचारत॥ ३८॥

सुमिरत हरि कौतुकिहिँ कछुक कौतुक उर आयौ।
उठि सम्हारि धृत धारि सवनि सादर सिर नायौ॥
हरि-माया की परम प्रबल महिमा मन धारी।
हरि हरि करि हरषाइ अंजली उमगि पसारी॥ ३९॥

ताकैं अंतर-ओक बसत गो-लोक-बिहारी।
सक्ति-सहित सुख-धाम भक्ति-बस जन-दुख-हारी॥
जाकौ बिछुरन-छोभ अजौं सुरसरि उर राखति।
सफरिनि-मिसि धरि अमित नैन दरसन अभिलाषति॥४०॥

यह अवसर सुभ सुलभ पाइ सो दुख-मेटन कौ।
पैठि जह्नु-उर-अजिर सपदि प्रभु सौं भेटन कौ॥
अति मंगल मन मानि गंग आनँद सरसानी।
निज बिस्तार समेटि अंजली आनि समानी॥ ४१॥

कियौ जह्नु तिहिं पान हरषि हरि-नाम उचारत।
भावी भूत कुपूत पूत निज कुल के तारत॥
सुर मुनि सब तिहिं समय परम बिस्मय सौं पागे।
पर्बत-नृप-महिमा महान गुनि गावन लागे॥ ४२॥

यह दुर्घट घट देखि भगीरथ निपट चकाए।
सुठि स्यंदन तैं उतरि तुरत आतुर तहँ आए॥
माथ नाइ कर जोरि सकल सुर मुनि नृप बंदे।
गदगद स्वर सति भाय जह्नु सादर अभिनंदे॥ ४३॥

सगर-सुतनि की कही प्रथम अति करुन-कहानी।
पुनि बिरंचि-हर-कृपा गंग जासौं महि आनी॥
कह्यौ भयौ अपराध घोर यह सब बिन जानैं।
अनजानत की चूक-हूक पर साधु न मानैं॥ ४४॥

छोभ-छलक अव छाड़ि छमा-छादित चित कीजै।
ब्रह्म रुद्र लौं ह्वै दयाल सुरसरि सुभ दीजै॥
नित निज-महिमा-संग गंग तुव जस जग छैहै।
धारि जाह्नवी नाम हरषि तुव सुता कहैहै॥ ४५॥

दीन वचन सुनि भए सकल द्विज देव दुखारी।
जह्नु-जोग-बल बरनि भगीरथ बात सकारी॥
ह्वै प्रसन्न तब जह्नु कृपा-चितवनि सौं चाह्यौ।
अति असेस अवधेस-महास्रम-सुकृत सराह्यौ॥ ४६॥

सगर-सुतनि की दुसह दसा गुनि अति दुख मान्यौ।
सकल-जगत-हित माहिं निजहिं बाधक जिय जान्यौ॥
करुना-सिंधु-तरंग तुंग इमि उर मैं बाढ़ी।
बन्यौ न राखत गंग पलटि काननि सौं काढ़ी॥ ४७॥

बैसाख सुक्ल सुभ सप्तमी गंग-नाम-गौरव गह्यौ।
जब निकसि जह्नु के अंग सौं गंग जाह्नवी-पद लह्यौ॥ ४८॥

नवम सर्ग

सादर सबहिँ नवाइ सीस अवनीस भगीरथ।
बढ़े बहुरि अगुवाइ 'धाइ चढ़ि बायु-बेग रथ॥
चली गंगहू संग अंग ओजनि उमगाए।
ज्यौं कल-कीरति रहति सदा सुकृतिहिँ पछियाए॥ १॥

पुन्य-पाथ परिपूरि करति पर्वत-पथ पावन।
सब प्रतिबंध नसाइ आइ गिरि-कंध सुहावन॥
कूदी धरि धुनि-धमक घोर ठाढ़ी खाढ़ी मैं।
परी गाज सी गाजि पुहुमि-पातक-पाढ़ी मैं॥ २॥

अति उछाह सौं उछरि परी फहराति फलंगति।
प्रवन-पाद सौं दूरि भूरि-बल-पूरि उमंगति॥
चढ़त चंद की चारु छटा ज्यौं छिति छवि छावति।
उच्च-धाम-अभिराम-पाँति पच्छिम-दिसि आवति॥ ३॥

फलकि फेन उफनाइ आइ राजत जुरि जल पर।
मनहु सुधा-निधि महत सुधा उमहत तरि तल पर॥
फबति फुही की फाब धूम-धारा लौं धावति।
गिरि-कोरनि पर मोर-पंख-तोरन-छवि छावति॥ ४॥

जिनके हाड़ पहाड़-खाड़-बिथुरित तिहिँ परसत।
सो लहि लहि बर बपुष जाइ सुरपुर सुख सरसत॥
जुरत न तिते बिमान जिते तारति इक संगहि।
निज प्रताप-बल पर पहुँचावति गंग-तरंगहि॥ ५॥

बिपुल बेग सौं जदपि गाजि गवनत जल तर कौं।
तउ सफरिनि हित होत सुपथ उमहत ऊपर कौं॥
निज अधीन पर ज्यौं प्रवीन बिक्रम न जनावैं।
वरु दै बाहँ उमाहि उच्च पद पर पहुँचावैं॥ ६॥

देव दनुज गंधर्व जच्छ किन्नर कर जोरे।
निज निज नारिनि संग अंग बहु भावनि बोरे॥
भय बिस्मय बिस्वास आस आनँद उर छाए।
दुहुँ कूलनि सुख-मूल स्वच्छ पर परे जमाए॥ ७॥

अद्भुत अकथ अनूप गंग-कौतुक कल देखत।
अति अलभ्य यह लाभ ललकि लोचन कौ लेखत॥
स्वस्ति-पाठ कोउ पढ़त कोऊ अस्तुति गुनि गावत।
कोऊ भगीरथ भव्य भाग को राग कढ़ावत॥ ८॥

कोउ झुकि झाँकन-चाय बाढ़ पर पाय जमावत।
पै झाईं सौं झुलझुलाइ पाछैं हटि आवत॥
पुनि साहस करि सँभरि सकल खाढ़ी मैं उतरत।
पग पग पर दृग दिए किए चित-वित अच्युत-रत॥ ९॥

कोउ ढिठाइ नियराइ ठाइ पग झुकि जल परसत।
सुधा-स्वाद-सुख बाद बदत रसना रस सरसत॥
ताकी देखादेख सेष सब चाव उचावत।
हिचकिचात ललचात नीर नेरैं चलि आवत॥ १० ॥

सींचि सीस आचम्य रम्य सुखमा सुभ देखत।
नंदनबन-आनंद-अमित-लेखा लघु लेखत॥
कोउ ठमकत गहि ठाम ठठोली करि कोउ ठेलत।
कोउ भाजत छल छाइ धाइ कोउ ताहि पछेलत॥ ११ ॥

कोउ सीतल-जल-छींट छपकि काहू पर छिरकत।
कोउ काहू कौं पकरि पीठि-पाछैं हटि हिरकत॥
कोउ अधार कछु धारि धँसत जानू लगि जल मैं।
हरबराइ पर कढ़त थमत नहिँ पूर प्रबल मैं॥ १२ ॥

कोउ कटि-तट पट बाँधि खेल अटपट अति ठावत।
इत तैं उत जल-धार-द्वार-नीचैं ह्वै धावत॥
यह कौतुक कल अपर सकल विस्मित-चित चाहत।
साधु साधु कहि गहि जुहारि जुरि ताहि सराहत॥ १३ ॥

जहँ कोउ मंजुल मोड़ तोड़-गति तरल निवारत।
प्रबल-बेग जल फैलि सांति-सुखमा विस्तारत॥
तहाँ जूह के जूह जुरत जल-केलि-उमाहे।
बहु बिनोद आमोद करत आनँद अवगाहे॥ १४ ॥

कोउ नहात कोउ तिरत कोऊ जल-अंतर धावंत।
रविहिँ अर्घ कोउ देत कोऊ हर-हर-धुनि लावत॥
लै चुभकी कोउ भजत सीत-भय-भीत विलोकत।
कोउ परिहास-विलास-हेत ताकौं गहि रोकत॥ १५॥

कोऊ अच्छरिनि छरत छेड़ि छटि छींट उछारत।
तिनकी उभकनि झुकनि झाँकि कहुँ अनत निहारत॥
कोउ कहुँ तरु-तर बैठि विसद यह दृस्य निहारत।
मोद-आँस-मुक्तालि प्रकृति-देवी पर वारत॥ १६॥

सुमुखि-सुलोचनि-बृंद मंद मुसकात कलोलत।
दर-विकसित अरविंद मनौ बीचिनि-विच डोलत॥
जगर-मगर तन-रतन-जोति जल-तल इमि चमकति।
तरनि-किरन ज्यौं परत दिव्य दरपन पर दमकति॥ १७॥

न्हाइ आइ पुनि तीर चीर सुंदर सब धारत।
करि षोड़स उपचार आरती उमगि उतारत॥
जहँ तहँ मंगल-रंग-संग साजे जुवती-गन।
नाचत गावत विविध वजावत वाद मगन-मन॥ १८॥

इहिँ विधि सुरसरि सुर-समाज-सेवित सुख-सानी।
भरि विनोद गिरि-गोद मोद-मंडित उमगानी॥
कढ़त सिमिटि इक ओर घोर धुनि सौं नभ पूरति।
ढोँकनि ढेला करति ढुरत ढेलनि चकचूरति॥ १९॥

कहूँ तरल कहुँ मंद कहूँ मध्यम गति धारे।
दरति कूल-द्रुम-मूल ढहावति कठिन करारे॥
द्वै गिरि-स्रेनिनि बीच बढ़ति उमड़ति इमि आवति।
ज्यौं बादर की जोन्ह बिसद बीथिनि मैं धावति॥ २०॥

गिरि-बिहार इमि करति हरति दुख-दुरित-समूहनि।
देत निरासिनि आस त्रास जम-गन के जूहनि॥
कर्न-प्रयाग बिभूषि कर्न-गंगा सँग लावति।
उत्तर-कासी कौ महत्त्व लोकोत्तर ठावति॥ २१॥

भरि टिहरी-उत्संग संग भृगु-गंग समेटति।
देव-प्रयागहिँ पूरि अलक-नंदहिँ भरि भेँटति॥
हृषीकेस सौं होति सैल-बंधहिँ बिलगावति।
हरिद्वार मैं आइ छेम छिति-मंडल छावति॥ २२॥

जेठ मास सित पच्छ स्वच्छ दसमी सुखदाई।
तिहिँ दिन गंग उमंग-भरी भूतल पर आई॥
दस-बिधि-पातक-हरन-हेत फहरान फरहरा।
तातैं ताकौ परयौ नाम अभिराम दसहरा॥ २३॥

सुर-धुनि आवन-धूम धाम-धामनि मैं धाई।
चहुँ दिसि तैं चलि चपल जुरे बहु लोग लुगाई॥
चारहु बरन पुनीत नीति-नाधे गृह-बासी।
जोगी जंगम परमहंस तापस संन्यासी॥ २४॥

कोउ नहान कोउ दान करत कोउ ध्यान सुधारत।
कोउ स्त्रद्धा सौं पितर स्त्राद्ध तरपन करि तारत॥
कोऊ वेद वेदांत मथत रस सांत उगाहत।
कोऊ चढ्यौ चित-चाव भक्ति के भाव उमाहत॥ २५॥

कोउ निरूपि निर्वान पुलकि सानँद दृग फेरत।
कोउ अघाइ जल-स्वाद पाइ ताकौं हँसि हेरत॥
कोउ अन्हात पछितात न पुनि जग-जनम विचारत।
कोउ कुटीर-हित हुलसि तीर पर ठाम निहारत॥ २६॥

कवि कोविद कोउ भव्य भाव उर अंतर खाँचत।
निरखि उतंग तरंग रंग प्रतिभा कौ जाँचत॥
सुमिरि गिरा गननाथ गंग कौं माथ नवावत।
रुचिर काव्य-कल-करन-काज चित चाव चढ़ावत॥ २७॥

उज्जल-अमल-अनूप-रूप-उपमा बहु सोधत।
मुकता-पानिप सरिस स्वच्छ कहि कछु मन बोधत॥
पै तिहिँ अचल विचारि चित्त तासौं विचलावत।
पुनि बरनन कौं बरन बरन आनन नहिँ आवत॥ २८॥

विपुल वेग बल विक्रम कौं गुनि गिरि-तरु-गंजन।
तिनकी समता-हेत चेत चित परत प्रभंजन॥
पै तामैं सुख-परस सरस कौ दरस न देखत।
प्रबल बाह मैं वहीं सकल उपमा तब लेखत॥ २९॥

सुचि सीतल जल परखि हरषि ही-तल उमगावत।
हिम-पट-पटतर प्रगटि नैंकु निज जीव जुड़ावत॥
पै तिहिँ गुनद न जानि हीन-उपमा उर आनत।
आन सीत उपमान परे पाला तर मानत॥ ३० ॥

आधि-व्याधि-दुख-दोष-दलन-गुन गुनि अभिलाषत।
सकुचि सजीवन-मूरि-स्वरस समता-हित भाषत।
पै ताकैँ सुख-स्वाद माहिँ संसय मन पारत।
तव गुन-गन-निरधार धनंतर कैँ सिर धारत॥ ३१ ॥

मृदुल-माधुरी-मोद कहन-हित हिय हुलसात।
कबहुँ सुकृत-बस सुधा-स्वाद चाख्यौ चित आवत॥
पै सोउ उपमा माहिँ नाहिँ पावत कहि तोलन।
अकथ गंग-जल-स्वाद देत अधरहिँ नहिँ खोलन॥ ३२ ॥

इमि गोचर-गुन गुनत उमगि उपमा निरधारत।
समता असम विचारि सकल सुरसरि पर वारत॥
रसना रुचिर पखारि धारि प्रतिभा पर पानी।
तारन-परम-प्रभाव चहत बरनन वर बानी॥ ३३ ॥

चित चलाइ चढ़ि चाय लोक तीनहुँ परिसोधत।
पै न कोऊ उपमान ध्यान मैँ आनि प्रबोधत॥
तव सारद-पद-कंज-मंजु मधुकर-मन लावत।
सुमति-स्वच्छ-मकरंद लहत दुख-दंद नसावत॥ ३४ ॥

सुरसरि-सरि-हित विसरि आन उपमान न आनत।
कहे-सुने चित गुने सकल अनुचित सो जानत॥
सुमिरि गंग कहि गंग गंग-संगति अभिलाषत।
भाषि गंग-सम गंग रंग कविता कौ राखत॥ ३५॥
सुमुखि-बृंद सानंद सुघर तन रतन सजाए।
विहरत वलित-विनोद ललित लहरत जल भाए॥
तारनि-सहित अमंद-चंद-प्रतिबिंब मनोहर।
मनु बहु बपु धरि फबत फलक-जुत फटिक सिला पर॥ ३६॥
गोरे गात सुहात स्वच्छ कलधौत छरी से।
तिन मैं चल चख चमचमात सुंदर सफरी से॥
मनु जग-जीतन-काज साज सब सबल बनावत।
मीनकेतु निज-केतु-मीन सुभ जल बिचरावत॥ ३७॥
तैरत बूड़त तिरत चलत चुभकी लै जल मैं।
चमकति चपला मनहु सरद-घन-विमल-पटल मैं॥
तरल तरंगनि-बीच लसतिं बहुरंगनि सारी।
मनहु सुधा-सरि-बाढ़ परी सुरपुर-फुलवारी॥ ३८॥
अंग-संग जल-धार धँसत जिनके मुकता-गन।
सो करि धरि बर बपुष जाइ बिहरत नंदनबन॥
जिन मृग के मद परत छूटि घट-तट तें पानी।
तिनकी करत सचोप चंद-वाहन अगवानी॥ ३९॥
इमि निकसि गंग गिरि-गेह तैं गह्यौ पंथ महि-ओक कौ।
करि हरिद्वार कौं अति सुगम द्वार अगम हरि-लोक कौ॥ ४०॥

दशम सर्ग

महि-बासिनि उर भरति भूरि आनँद-नद-नारे।
दुख-दारिद-द्रुम दरति बिदारति कलुष-करारे॥
बसुधहिँ देति सुहाग माँग मोतिनि सौं पूरति।
भरति गोद आमोद करति मन-मोहिनि मूरति॥ १॥

कर्मज-कृषि पर अति प्रचंड पाला सौ पारति।
चित्रगुप्त की लेख-रेख निस्सेष पखारति॥
चली देवधुनि धाइ धरा-तल धूम मचावति।
भप-भगीरथ-सुभ्र-बेष-जस-रेख खचावति॥ २॥

कबहुँ सघन बन पैठि परम स्वच्छंद कलोलति।
कहुँ धावति कहुँ चलति चारु कहुँ डगमग डोलति॥
कहुँ दै थपकि थपेड़ पैँड़ के पैँड़ ढहावति।
कहुँ उत्तंग-तरंग-संग तट-बिटप बहावति॥ ३॥

बन-देबिनि के बृंद करत आनंद-बधाए।
बिबिध-पत्र-फल-फूल-मूल-उपहार सजाए॥
नाग-कन्यका बहु प्रकार उपचार प्रचारैँ।
फनि-मनि के करि दीप आरती उमगि उतारैँ॥ ४॥

निर्जन बन लहि सकल हेलि जल-केलि उमाहैं।
दुसह दुपहरी-दाह विसरि सरि-सलिल सराहैं॥
मनु वन-सुषमा सुखम विषम ग्रीषम की जारी।
विहरतिं गंग-प्रसंग देह धरि दिव्य सुढारी॥ ५॥

दीरघ-दाघ निदाघ माहिं पानी कौं तरसे।
सीतल धार अपार पाइ वनचर सुख सरसे॥
अति-अमंद-आनंद-मगन-मन उमगत डोलत।
सहज वैर विसराइ आइ कल कूल कलोलत॥ ६॥

लखत कनखियनि चखत नीर मृग बाघ परसपर।
भाजत झपटत बनत पै न तजि नीर सुखद वर॥
नाचत मुदित मयूर मंजु मद-चूर अघाए।
अहि जुड़ात तिन पास पाइ सुख त्रास भुलाए॥ ७॥

कहुँ क्रीड़त करि-निकर तरंगनि मैं सुख सरसत।
मनु कलिंद के सिखर-वृंद सित-घन-बिच दरसत॥
कहुँ कपि लटकत नीर अटकि तट-विलुलित डारनि।
वालखिल्य मनु लहत सु तप-संचित-सुख-सारनि॥ ८॥

कहुँ जल-वीचिनि बीच अड़े महिषाकर अरने।
जम-वाहन है व्यर्थ परे मनु सुरधुनि-धरने॥
सिमिटि ससा कहुँ तीर नीर छकि अधर हलावत।
ससि-मंडलहिं अखंड रखन की विनय सुनावत॥ ९॥

सुरधुनि-स्वागत-काज साज वन-राज सजायौ।
सहित सहाय समाज न्यौति ऋतु-राज पठायौ॥
ठाम ठाम अभिराम सुखद सुखमा सौं पागे।
नंदन-वन-आनंद मंद लागत जिहिँ आगे॥ १० ॥

वर वल्लिनि के कुंज-पुंज कुसमित कहुँ सोहैँ।
गुंजत मत्त मलिंद-वृंद तिन पर मन मोहैँ॥
मनौ सुहागिनि सजे अंग बहुरंग दुकूलनि।
गावतिँ मंगल मोद-भरीँ छाजे सिर फूलनि॥ ११ ॥

कहुँ तरुवर बहु भाँति पाँति के पाँति सुहाए।
नव-पल्लव-फल-फूल-भार सौं डार झुकाए॥
मनहु धारि सुख-भरित हरित बाने वर माली।
अवसर अकथ अलेख लेखि साजीँ सुभ डाली॥ १२ ॥

कूजत विविध विहंग संग अति आनँद-साने।
मानहु मंगल-पाठ पढ़त द्विज-गन उमगाने॥
कहुँ विरदावलि वदत कीर-चारन मन-चारी।
सावधान-धुनि धुनत कहूँ परभृत-प्रतिहारी॥ १३ ॥

नाचत मंजुल मोर भौंर साजत सारंगी।
करति कोकिला गान तान तानति बहुरंगी॥
स्यामा सीटी देति चटक चुटकी चुटकावत।
घूमि झूमि झुकि कल कपोत तवला गुटकावत॥ १४ ॥

इमि राँचति रस-रंग गंग वन बाहिर आवति।
जलद-पटल विलगाइ जोन्ह मनु छिति छवि छावति ॥
चलति चपल त्रय-ताप पाप-तम-दाप निवारति।
कलित कृपा अभिराम सुभासुभ धाम पसारति ॥ १५ ॥

कोउ पटपर पर कबहुँ पाट सोभा विस्तारति।
काटि कूल छिति छाँटि बाट निज सुघट सुधारति ॥
ऊसर के सर भरति निरस महि रस सरसावति।
आस-पास के गाम सुभग सुख-धाम बनावति ॥ १६ ॥

ग्राम-वधूटी जुरतिँ आनि तट गागरि लै-लै।
गावतिँ परम पुनीत गीत धुनि लावतिँ जै-जै ॥
धारे सहज सिँगार गात गोरे गदकारे।
विहँसत गोल कपोल लोल लोचन कजरारे ॥ १७ ॥

सुनकिरवा की आड़ ताड़ तरकी तरपीली।
ठाढ़े गाढ़े कुचनि चिहुँटनी-माल सजीली ॥
रँगे चोल-रँग चीर लगे भोडर-नग चमकत।
गृह-स्रम संचित-स्वास्थ उमगि आनन पर दमकत ॥ १८ ॥

कोउ पैठति जल हंसति धँसति एँड़ी कोउ तट पर।
कोउ मुख पानि पखारि वारि छिरकति निज पट पर ॥
कोउ कर जोरि नवाइ सीस दृग मूँदि मनावति।
ऐपन घुघुरी रोट अर्पि कोउ दीप दिखावति ॥ १९ ॥

कहुँ मिलि जुलि दस पाँच नाच-रँग रुचिर रचावतिँ।
हूहौ दै इठलाइ झमकि झुकि लंक लचावतिँ॥
कोउ गोरुनि जल प्याइ न्हाइ परखति पनघट पर।
कोउ गागरि भरि चलति सीस धरि कोउ कटि-तट पर॥ २०॥

लखि मसान कहुँ गंग मान ताकौ छिति छापति।
तहँ मिलान सुभ सरल स्वर्ग-पथ कौ थिर थापति॥
हाड़ माँस तन-सार छार जिनके जल परसत।
सो सुभ गति अति लहत जाहि जोगी-जन तरसत॥ २१॥

तुरत गंग-गन धाइ मगन-मन जुरत जुहारत।
जम-दूतनि सौं अटकि झटकि महि पटकि पछारत॥
बरबस तिनहिँ छुड़ाइ बेगि बैठाइ बिमाननि।
पहुँचावत सुर-लोक सोक के लाँघि सिवाननि॥ २२॥

कोउ मग ही सौं मुरत कोऊ जमराज-सभा सौं।
कोउ नरकनि कौ फारि द्वार परिपूरि प्रभा सौं॥
चित्रगुप्त चितवत चरित्र यह चित्र भए से।
जकित जोहि जमराज काज निज बिसरि गए से॥ २३॥

कोउ पापिहिँ पंचत्व-प्राप्त सुनि जमगन धावत।
बनि बनि बावन-बीर बढ़त चौचंद मचावत॥
पै ताकी तकि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत।
नौ-द्वै ग्यारह होत तीन-पाँचहिँ बिसरावत॥ २४॥

दंग होत सुर-राज गंग कौ रंग निहारत।
भरति भीर के सुख सुपास कौ ब्यौंत बिचारत॥
नव-पुर-न्यौधन-हेत लेत बिधना सौं पट्टा।
सुचि रचना कौ करत बिस्वकर्मा सौं सट्टा॥ २५॥

इहिँ बिधि तरल-तरंग गंग महिमा उदघाटति।
बसुधा सुधा-निवास करति बिबुधालय पाटति॥
ठाम ठाम बहु धर्म-धाम अभिराम बनावति।
मुक्ति भुक्ति के अटल सदाव्रत-छेत्र चलावति॥ २६॥

ब्रह्मावर्त पुनीत पुरी आई उमगाई।
करि सनमान प्रदान ताहि महिमा अधिकाई॥
गंग-परस तैं पौन-गौन है सरस सुहावन।
करत रम्य आराम सरिस चहुँ दिसि उपवन वन॥ २७॥

मुनि-गन-मन सुख भरत हरत आतप-तप-तापहिँ।
लै लै तूँबा चलत धाइ सब तजि जग-जापहिँ॥
न्हाइ पाइ जल-स्वाद ब्रह्म-चरचा बिस्तारत।
नेति-नेति निवटाइ ठाइ इति-इति-धुनि धारत॥ २८॥

पुर-बासिनि की भीर तीर आवति उमगाई।
बिस्मय - संक - बिनोद - मोद - स्रद्धा - सरसाई॥
स्नान दान करि सकल पूजि सुरसरि सुख-साने।
करत बैठि जल-पान लोक परलोक भुलाने॥ २९॥

F. 36

भरि-भरि गागरि चलतिँ नवल नागरि सुख-दैनी।
ललकि लचावति लंक बंक चितवनि करि पैनी॥
धरि कमला बहु बपुष सुधा-निधि सौँ मनु आई।
सुधा निदरि भरि गंग-बारि ऐँड़ति छवि-छाई॥ ३०॥

चलि बिठौर सौँ ठौर ठौर आनँद उपजावति।
दपटि दरेरति दुरित झपटि दुरभाग भजावति॥
पहुँची आनि प्रयाग रम्य दुहुँ कूल बनावति।
झाऊ-झाड़िनि माहिँ मुक्ति-मुक्ताफल लावति॥ ३१॥

तहँ बिरजा गोलोक-कुंज की सखी सयानी।
है जमुना उमगाइ आइ भेँटी सुखसानी॥
हरि-हर-प्रिया-पुनीत-सुभग-संगम जगबंदित।
बिधि-पतनीहूँ गुप्त मिली है द्रवित अनंदित॥ ३२॥

सोभा अकथ अनूप लखत सुर चढ़े बिमाननि।
गावत सारद-नारदादि अस्तुति तनिताननि॥
एक पार्स्व सौँ बढ़ति गंग उत्तंग तरंगति।
इक तैँ जमुना आनि मिलति सुख-संग उमंगति॥ ३३॥

मनहु सितासित चमर ढुरत दुहुँ दिसि तैँ आवत।
तीर्थराज पर हिलत मिलत सुखमा सरसावत॥
उभय कछारनि बीच बिसद अच्छयवट राजै।
मरकत मनि कौ अटल छत्र मानौ छवि छाजै॥ ३४॥

चहुँ दिसि संख-मृदंग-झाँझ-भेरी-धुनि छाई।
मनहु मंजु राज्याभिषेक की बजति बधाई॥
जय जय हर हर तुमुल सब्द नभ-मंडल पूरत।
जिहिँ सुनि दुरित दुरूह दौरि दुरि दूरि बिसूरत॥ ३५॥

दोउ धारा टकराइ उछरि मुरि पुनि जुरि धावतिँ।
सेत-नील-घन-पाँति लरति नभ मैँ ज्यौँ भावतिँ॥
हलरति लहर दुरंग संग मिलि-जुलि मनभाई।
तरु-तर ज्यौँ चल-पत्र-बीच ह्वै परति जुन्हाई॥ ३६॥

सुकृति-बृंद सानंद जुरत जोहत संगम पर।
तिनके पुन्य-प्रभाव हँसत जोगी जंगम पर॥
कोउ अन्हात गहि तीर कोऊ मंचनि पर चढ़ि-चढ़ि।
कोउ तरनी तैँ उतरि मंझ-धारा मैँ बढ़ि-बढ़ि॥ ३७॥

आर-पार की माल कोऊ चढ़ि चाव चढ़ावत।
कोउ थाननि के थान तानि पियरी पहिरावत॥
कोऊ भरे चित भाव नाव चढ़ि खेलत नावर।
कोउ पट भूषन देत कोऊ बाँटत न्यौछावर॥ ३८॥

सुघर-सलोनी-जुवति-जूह गृह-काज बिसारे।
गंग-परस पर सरस काम-क्रीड़ा-सुख-वारे॥
विविध-विभूषन-वसन-वलित विहरत कहुँ तट पर।
दुहरी दीपति करति देह-दीपति परि पट पर॥ ३९॥

कोउ अन्हाति सकुचाति गात पट-ओट दुराए।
कोउ जल-बाहिर कढ़ति सु-उर-ऊरुनि कर लाए॥
कोउ ऐंड़ति इतराति उच्च-कुच-कोर उचावति।
लचकावति कोउ लंक बंक भृकुटी मचकावति॥ ४० ॥

मृग-मद चंदन-बंदनादि कोउ चायनि चरचति।
दधि अच्छत तंबूल फूल फल कोउ लै अरचति॥
चित्रित होति विचित्र भाँति जल-पाँति सुहाई।
महि-बेनी पर मनहु चारु-चूनरि-छबि छाई॥ ४१ ॥

जीवन-मुक्त विरक्त कहूँ विचरत सुख-साने।
मुनि-मंडल कहुँ कहत सुनत इतिहास पुराने॥
कहुँ द्विज-गन सुर साधि बाँधि लय बेद उचारत।
कहुँ कवि-जन स्वच्छंद छंद-बंधहिँ बिस्तारत॥ ४२ ॥

इमि सब-तीरथ-मय देवधुनि धरि प्रयाग-गौरव गह्यौ।
मनु रुचिर राज्य-अभिषेक-हित सब-तीरथ-सुचि-जल लह्यौ॥४३॥

एकादश सर्ग

गंग जमुन लै असि दुधार है चली चमंकति।
काटति पातक-ब्यूह विकट जम-जूह धमंकति ॥
विंध्य-छेत्र सौं होति करति चरनाद्रिहिँ नंदित।
विंध्य-हिमाचल-मध्य-देस सुर-नर-मुनि-वंदित ॥ १ ॥

अति उछाह सौं चाह-भरी आनँद-सरसाई।
उमगति तरल-तरंग-संग कासी नियराई ॥
मिली तहाँ अगवानि मानि असि जाति-मिताई।
चली बतावति बाट जतावति निखिल निकाई ॥ २ ॥

संभु-पुरी-सुखमा अपार सुरधार निहारत।
ताकी महिमा कौ महान महि मान विचारत ॥
चली मंद गति धारि धाम अभिरामहिँ देखति।
लघु वीचिनि करि गुन-अपार-लेखा उर लेखति ॥ ३ ॥

सीँचि स्वाति जल मुक्ति-खेत-बल विपुल बढ़ावति।
भव-भय-भंजनि संभु-सक्ति पर पानि चढ़ावति ॥
महा मसानहिँ परम-बाट कौ घाट बनावति।
चिर-इच्छित-फल-लाहु मुमुच्छुनि तुच्छ जनावति ॥ ४ ॥

मनिकनिका लौं आइ निरखि सुखमा सुख-सानी।
धँसी धाइ तिहिँ कुंड मुंडमाली-मनमानी॥
स्वाति-घटा सुभ भव-निधि अच्छय सीप समाई।
मुक्ति-पाँति धरि देह लगी बिथुरन मन-भाई॥ ५॥

भूप भगीरथ उतरि तुरत रथ सौं सुख लीन्यौ।
संध्यादिक करि चंदचूर कौ वंदन कीन्यौ॥
सुखमा निरखि अनूप जानि सिव-रूप निवासी।
सबनि नवायौ सीस विविध वर विनय बिकासी॥ ६॥

पुनि सोच्यौ सकुचाइ कहैँ किहिँ भाय कढ़न कौं।
परम वंद्य स्वच्छंद गंग सौं बिनइ बढ़न कौं॥
पर पातक पर समुझि सहज अमरष मन ताकैँ।
भयौ बहुरि संतोष सपदि मन महि-भर्ता कैँ॥ ७॥

जोरि पानि तब माँगि बिदा सुभ सिवसंकर सौं।
करि प्रनाम अभिराम धाम कासिहुँ आदर सौं॥
सगर-सुतनि के साप-ताप कौ दाप बखान्यौ।
सुनत गंग स-उमंग चेति चलिवौ चित आन्यौ॥ ८॥

कढ़ी भरत आतंक अंक दै मनिकनिका कौं।
सिवहिँ विलोकति बंक करति गत-संक सिवा कौं॥
चली करति हुंकार धार-विस्तार बढ़ावति।
महि-महिमा की भरति गोद मन मोद मढ़ावति॥ ९॥

भूपहु संपदि सम्हारि भए स्यंदन चढ़ि आगे।
जय-जय-धुनि नभ पूरि सुमन सुर बरसन लागे॥
पुरवासिनि की भरी भीर सुभ तीर सुहाई।
भय - विस्मय - सुविनोद - मोद - स्रद्धा - सरसाई॥ १० ॥

कोउ दूरहि तैं दवकि भूरि जल-पूर निहारत।
कोउ गहि बाहिँ उमाहि बढ़त-बालक कौं बारत॥
कोउ कहुँ ठठकि अवाइ लखत बिन पलक गिराए।
गंग-दरस तैं मनहु अंग देवनि के पाए॥ ११ ॥

ग्रीवा चरन उचाइ चाय सौं कोउ चल चाहत।
सुभ-सुखमा-सुख-लहन-काज औरनि आवाहत॥
जानु-पानि-जुग जोरि कोऊ जय-जय-धुनि लावत।
कहत सुनत गुन गुनत कोऊ पुलकत पुलकावत॥ १२ ॥

कोउ हर-हर करि कर पसारि जल-तल हलकोरत।
दोउ हाथनि मनु अति अमंद आनंद बटोरत॥
लै चुभकी ह्वै मगन मोद-वारिधि कोउ थाहत।
जीवन-मुक्ति-महान-लाहु लहि उमगि उमाहत॥ १३ ॥

कोउ अंजलि जल पूरि सूर-सनमुख ह्वै अरपत।
कोउ देवनि कौं देत अर्घ पितरनि कोउ तरपत॥
कोउ तट हटि पट सुघट साजि संध्या सुभ साधत।
जप-माला मन लाइ इष्ट-देवहिँ आराधत॥ १४ ॥

जहँ तहँ करत कलोल लोल-लोचनि-ललना-गन।
सुंदर सुघर सुजान रूप-गुन-मान-मुदित-मन॥
कोउ ऐंठति तन तोरि छोरि अँगिया कोउ बैठति।
कोऊ उमैठति भौंह सौंह करि कोउ जल पैठति॥ १५॥

कोउ काहू कौ पकरि पानि डगमग पग धारति।
कोउ चंचल करि चलनि बिचल अँचलहिँ सम्हारति॥
कोउ निवटति कटि-तट समेटि चट पट-गुफरौटा।
हँसति धँसति जलधार कसति कोउ कलित कछौटा॥ १६॥

सीस सजल कर छाइ छपकि कोउ छींट उछारति।
सुर-तरु-डारनि मथति सुधा सुख-सार निसारति॥
कर-पिचकी-जल-केलि करति कोउ आनँद धारे।
अरविंदनि तैं चलत मनहु मकरंद-फुहारे॥ १७॥

भूषन-जरित-जराय-कलित पैरति कोउ जल पर।
मनहु रतन उतरात छीर-सागर-वर-तल पर॥
न्हाइ-न्हाइ तट आइ सकल सुंदरि छवि छाजैं।
मुकुर-धाम मनु काम-वाम-प्रतिबिंब विराजैं॥ १८॥

कोउ ऊरुनि बिच दाबि बसन गीले गहि गारति।
उसरत पट कटि उरसि संक-जुत बंक निहारति॥
कोउ लंकहिँ लचकाइ लचकि कच-भार निचोरति।
मर्कत-बल्लिनि मीड़ि मंजु मुकता-फल झोरति॥ १९॥

लै कर चंदन-वंदनादि कोउ सादर ढारति।
मनु पराग अनुराग-सहित कंजनि सौं ढारति॥
कोउ अंजलि भरि सुमन सु-मन भरि भाव चढ़ावति।
सुमन-सुमन-मन महि-उपजन कौ चाव चढ़ावति॥ २० ॥

कोउ ढारति सिर छाइ छीर लीन्हे करवा कर।
सुर-धारा पर सुधा-धार मनु स्रवत सुधाधर॥
सजि वातिनि की पाँति उमगि कोउ करति आरती।
विधि-सरवस पर वारति मनि-गन मनहु भारती॥ २१ ॥

असन वसन बहु भाँति भेटि कोउ सानँद राजति।
मनहु परम-पथ-काज साज सुख के सब साजति॥
कोउ झुकि करति प्रनाम टेकि महि माथ मयंकहिँ।
मेटति मनहु विसाल भाल के कठिन कु-अंकहिँ॥ २२ ॥

माँगति अचल सुहाग मंजु अंजलि कोउ धारे।
कलप-लता मनु चहति परम-फल पानि पसारे॥
इहिँ विधि विविध विधान ठानि विधिवत सब पूजतिँ।
मंगल-गीत पुनीत प्रीति-संजुत कल कूजतिँ॥ २३ ॥

बहु रंगनि की चलतिँ धारि सुभ अंगनि सारी।
मनहु कलित कसमीर-तीर तैरति फुलवारी॥
लिए सकल जल-पात्र पसारतिँ रूप-उज्यारी।
निखिल-लोक-ससि मनहु सुधा भरि चलत सुखारी॥ २४ ॥

दो सौ नवासी

संन्यासिनि के झुंड लिए कर दंड कमंडल।
न्हाइ-न्हाइ कहुँ तीर करत हर-हर करि मंडल॥
मनहु जानि महि-अजिर महा मंगल कौ दंगल।
सुंदर संग बनाइ आइ राजत तहँ मंगल॥ २५॥

कहुँ बटु-गन मन-मुदित मज्जि वर वेद उचारैं।
विविध विनोद प्रमोद करत भरि नीर सिधारैं॥
मथत पयोनिधि स्वच्छ सुधा भरि हिय हरषाए।
मानहु देव-कुमार चलत चित चाय उचाए॥ २६॥

तट-बासिनि मन गंग मोद मंगल इमि छावति।
बढ़ी बढ़ावति बेग नेग मैं मुक्ति लुटावति॥
पावन तरल तरंग देखि अति आनँद-पागी।
बरनत बिरद उतंग संग बरुना वर लागी॥ २७॥

बिस्वामित्र- पवित्र- धाम आई उमगाई।
सरजू परम पुनीत प्रीति-जुत भेटन आई॥
नृप-कुल-गुरु की मानि मंजु कल कीरति-कन्या।
लै उछंग तिहिँ गंग चली हलरावति धन्या॥ २८॥

दच्छिन दिसि तैं आनि भाग-अनुराग-लपेटी।
मगधदेस-मग धाइ सोन-धारा सुभ भेटी॥
मिलि हिमगिरि-वर-बिंध्य-बिसद-महिमा मनभाई।
प्रगट्यौ हरि-हर-पुन्य-छेत्र सुर-मुनि-सुखदाई॥ २९॥

बढ़ी बहुरि सुरधार धरा-दुख-दारिद मेटति।
कोसीं आदि अनेक नदिनि निज संग समेटति॥
अंग बंग के दुरित भंग करि रंग रचावति।
जंगल-जंगल माहिँ महा मुद मंगल छावति॥ ३० ॥

सुंदरवन मैं भरति भूरि सुठि सुंदरताई।
सगर-सुतनि हित मानि आनि सागर समुहाई॥
जानि भगीरथ-वंस-भूरि-जस-भाजन भारी।
सहस-धार ह्वै चली भरन तिहिँ उमग-उभारी॥ ३१ ॥

सागर-तरल-तरंग-गंग-संगम देखन कौं।
तारन-प्रबल-प्रभाव-भाव उर अवरेखन कौं॥
भूप-भगीरथ-अमित-सुजस-लेखा लेखन कौं।
सगर-सुतनि की साप-औधि-रेखा रेखन कौं॥ ३२ ॥

दमकावत दुति दिव्य भव्य भूषन चमकावत।
गमकावत सुर-सुमन विसद वाहन हमकावत॥
जुरे उमगि सुख मानि आनि त्रिभुवन के वासी।
भरी नीर-निधि-तीर भीर नृप-पुन्य-प्रभा सी॥ ३३ ॥

कहुँ विधि विबुधनि संग वेद-धुनि मधुर उचारत।
रचि तांडव त्रिपुरारि कहूँ डमरू डमकारत॥
कहुँ हरि हरन कलेस वट्यौ स्रम गुनि गुन गावत।
कहुँ सुर-राज स्वराज् बढ़त लखि मोद मचावत॥ ३४ ॥

जहँ-तहँ बिद्याधर बिचित्र कौतुक बिस्तारत।
सिद्धि बगारत सिद्ध सुजस चारन उचारत॥
गावत गुन गंधर्व नचत किन्नर दै तारी।
उमगि भरत कल कच्छ यच्छ सुख संपति भारी॥ ३५॥

इक दिसि चढ़े बिमान भानु-कुल-भव्य-पितर-गन।
सिवि दधीचि हरिचंद आदि आनंद-मगन-मन॥
निज सपूत की अति अभूत करतूति निहारत।
साधु-बाद दै उमगि आँस-मुकता बर बारत॥ ३६॥

कहुँ मुनि-गन मन-मगन लगन सुरसरि की लाए।
चहुँ दिसि चितवत चाह-भरे भाजन खनियाए॥
नाग-कन्यकनि-संग कहूँ बिचरत बढ़ि तट पर।
सेस बासुकी आदि कान दीने आहट पर॥ ३७॥

बाहन बिबिध बिधान जुरे तहँ आनि सुहाए।
सगर-सुतनि के काज सकल सुख-साज सजाए॥
कहुँ जाननि की सजी सुखद सुभ सुंदर स्रेनी।
सागर-तट तैं मनु सुरपुर लगि लगी निसेनी॥ ३८॥

कहुँ हंसनि के बिसद बंस काटत कल कावा।
कहूँ गरुड़-गन करत धरा-अंबर-बिच धावा॥
बलिबरदनि के बृंद कहूँ बिचरत तट घूमत।
कहुँ ऐरावत-झुंड सुंड फेरत झुकि झूमत॥ ३९॥

इक दिसि सजे सिँगार लसतिँ सुर-सदा-सुहागिनि।
सगर-सुतनि वरि वेगि होन-हित अति वड़-भागिनि॥
विचरत कौतुक-निरत देव-ऋषि विरति विसारे।
गंग - सुजस - रस - लीन बीन काँधे पर धारे॥ ४० ॥

इहिँ विधि ठाटे ठाट-वाट सव सानँद हेरत।
ग्रीवा चरन उचाइ चपल चहुँघाँ चख फेरत॥
हर-हर सब्द पुनीत उठ्यौ तव लौं वेला तैं।
इत जय-जय-धुनि धाइ भरी नभ लौं मेला तैं॥ ४१ ॥

उमगति - अमित - तरंग - तुंग - वर - बाँह पसारे।
फेन - फूल - सिंगार - हार - उपहार सुधारे॥
वढ़्यौ वेगि वारीस सुखद सुरसरि भेटन कौं।
सुधा-हीन ह्वै भयौ छीन सो दुख-मेटन कौं॥ ४२ ॥

सहस-धार सुरधार मिली तिहिँ अति आदर सौं।
विज्जु-छटा मनु छहरि लहरि विहरी वादर सौं॥
किधौं नील-सत-सिखर परी ढरि विखरि जुन्हाई।
कै मरकत कैं छत्र सेत चामर-छवि छाई॥ ४३ ॥

मीन मकर सिसुमार उरग आदिक उतराने।
लहत गंग - सुभ - परस - पान परमानँद - साने॥
पाप-साप-वस विवस परे तिनके जे तन मैं।
ते धरि धरि वर वपुष वेगि विहरत सुर-गन मैं॥ ४४ ॥

उतरि उतरि सुर-बृंद सकल सानंद कलोलत।
डामाडोल हिँडोल-सरिस लहरनि लगि डोलत॥
बहु बिधि रचत बिनोद मोद चहुँ-कोद परस्पर।
ठमकत ठेलत डटत हटत हटकत झटकत कर॥ ४५॥

पग जमाइ झुकि-झपट कोऊ लहरनि की झेलत।
कोउ बूँदुनि महि टेकि अटल औरनि अवहेलत॥
कोउ भाजत भय-भभरि ताकि उत्तंग तरंगनि।
कोउ साहस करि बढ़त पढ़त अस्तुति बहु रंगनि॥ ४६॥

इहि बिधि सकल अन्हाइ पाइ सुख सुकृत कमाए।
पूजि सहित सनमान गान निज जाननि आए॥
सजि-सजि भूषन बसन लगे चितवन चित दीन्हे।
तारन-कौतुक-लखन-लालसा लोचन लीन्हे॥ ४७॥

इमि गंगासागर धाम सुभ जगत-उजागर जस लह्यौ।
जउ सागर-रूप अनूप तउ भव-सागर-बोहित भयौ॥ ४८॥

द्वादश सर्ग

कौतुक निरखि अनूप भूपहू निपट अनंदे।
पितरनि कियौ प्रनाम देव-बृंदनि-पद बंदे॥
पुनि सुर-धुनि-मन पाइ नाइ सिर जान बढ़ायौ।
पितरनि परम प्रसन्न जानि मन मोद मढ़ायौ॥ १॥

इत सुरसरि भरि सिंधु उभरि उर ओज बढ़ाए।
सगर सुतनि के साप-दाप पर चाप चढ़ाए॥
चली चपल अति सुमन-बृंद-मन आनँद पूरति।
फिरि-फिरि-लखत-ससंक भूप-चिंता चकचूरति॥ २॥

कपिल-धाम उत धाइ धूम सुरधुनि की धमकी।
सुभ-आगम की ओप उमगि दसहूँ दिसि दमकी॥
सगर-सुतनि-की-छार-छई छिति भूरि भयावनि।
लगी लगन ह्वै मोद-मगन अति सुभग-सुहावनि॥ ३॥

सगर-कुमारनि-संग जरे जे तरु-बल्ली-बन।
लगे बहुरि हरियान मनहु पाए नव जीवन॥
सरस्यो सुखद समीर कपिल पल पुलकि उघारे।
निरखि धाम अभिराम ताप जारन के टारे॥ ४॥

तब लौं सुरसरि अति अपार आवर्त बनाए।
महा गर्त मैं धँसी धाइ धुनि-धूम मचाए॥
कपिलदेव-अति-कठिन-साप-बल-विजय विचारति।
चक्रव्यूह रचि चली मनौ ललकति ललकारति॥ ५॥

अभिनंदत-सुर-बृन्द-सहित सानंद उमाही।
कपिल-धाम-ढिग आइ धाइ चहुँ ओर उमाही॥
दुख-दुर्मति-दुर्भाग्य-दुरित-रेखा हठि मेटीँ।
साठ-सहस सब छार-रासि निज अंक समेटीँ॥ ६॥

परसत गंग-तरंग रंग अद्‌भुत तहँ माच्यौ।
कौतुक निरखि महान मोद सुर-गन-मन राँच्यौ॥
लगे ललकि सब लखन चखनि अध ऊरध फेरन।
अद्‌भुत-रस-स्वामिहु सराहि विस्मित-चित हेरन॥ ७॥

कढ़ि-कढ़ि सगर-कुमार छार-रासिनि सौं बढ़ि-बढ़ि।
मढ़ि-मढ़ि दमकति दिव्य देह चित-चायनि चढ़ि-चढ़ि॥
चमकत तमकत चले चपल मंडत नभ-मंडल।
गंगागम मैं मची मनहु पावक-क्रीड़ा कल॥ ८॥

इक दिसि बिसद विमान होड़ करि दौड़ लगावत।
केतनि लै लै चलत हलत सोभा सरसावत॥
मनहु विविध-बर-बरन साँझ-जलधर धर धावत।
गंग-सुजस-रस पूरि भूरि छवि सौं नभ छावत॥ ९॥

हंस-बंस इक ओर पिलत निज अंस झुकाए।
केतनि पीठि चढ़ाइ चलत चहकत चटकाए॥
करि अधिकार अखंड मंडि महि-मंडल मानौ।
ब्रह्म-लोक-दिसि भूप-सुकृत-दल करत पयानौ॥ १० ॥

कहुँ केतनि लै ललकि गरुड़-गन मगन उमंडत।
उड़त जुड़त मँडरात मंजु नभ-मंडल मंडत॥
अस्वमेध-फल न्हाइ गंग धरि अंग सुहाए।
जात मनौ हरि-नगर सगर भेटन उमगाए॥ ११ ॥

धौरे धरम-धुरीन पीन पीठिनि लै केते।
बढ़त बाँधि सुभ ठाट बाट हर-गिरि की चेते॥
निज गुन-सागर-सार भार मुक्तनि के नीके।
मनहु गंग उपहार भौन भेजति भगिनी के॥ १२ ॥

उन्नत-बिसद-बितुंड-झुंड सुंडनि फटकारत।
केतनि लहि सुख पाइ धाइ सुर-सदन सिधारत॥
अखिल-लोक सुर-राज इंद्र मनु न्यौति पठाए।
गंगोत्सव लखि लौटि चलत गज-व्यूह बढ़ाए॥ १३ ॥

उचकावति कुच पीन खीन लंकहिँ लचकावति।
अधर दबाइ हलाइ ग्रीव अंगनि मचकावति॥
सस्मित भ्रुकुटि-बिलास करति करि त्रिकुटि तनेनी।
गावति मंगल चली संग सुर-सुंदरि-स्रेनी॥ १४ ॥

झूमि-झूमि झुकि लचत नचत किन्नर अनुरागे।
भानु-बंस-जस-गान करत चारन सँग लागे॥
हरषत बरषत सुमन सुमन बढ़ि बाट बतावत।
बादर धरि धुनि मधुर छत्र सादर सिर छावत॥ १५॥

बाजे बिबध बिधान ब्योम बाजे सुभ-साजे।
गाजे पुन्य-समूह जूह पातक के भाजे॥
पूरत परम प्रमोद चली चहुँ-कोद बधाई।
जय-जय की धुनि-धूम-धाम-धामनि मैं धाई॥ १६॥

भूप-भगीरथ-अति - उदार-अति-अद्भुत - करनी।
तारनि-तरल-तरंग-गंग- महिमा मन - हरनी॥
सुर किन्नर गंधर्व सर्बे लखि आनँद-पागे।
पुलकि अंग स-उमंग गंग-गुन गावन लागे॥ १७॥

करि अस्तुति बहु भाँति सकल मिलि माथ नवायौ॥
छोभ-समन सुभ साम-गान धरि ध्यान सुनायौ॥
स्वस्ति-पाठ पढ़ि चढ़्यौ-गंग-चित-रोष निवार्‌यौ।
हर्‌यो अमित उद्वेग सांति-सुख जग संचार्‌यो॥ १८॥

न्हाइ-न्हाइ चढ़ि जाय पूजि स्रद्धा सरसाए।
नंदनादि-बन-सुमन - हार - उपहार चढ़ाए॥
कपिलदेव सौं मिलि जुहारि स्रद्धा-सरसाए।
तोष-जनित-आमोद-ओप आनन पर छाए॥ १९॥

निज-निज-देव-समूह-संग जुरि जूह सँवारे।
विधि हरि हर हरषाइ हुलसि नृप-निकट पधारे॥
पुलकित-सुभग-सरीर नीर नैननि अवगाहे।
इक सुर सौं सब भूप-सुकृत-स्रम-सुजस-सराहे॥ २० ॥

अभिनंदत सुर-बृंद देखि भूपति सकुचाने।
धाइ पाय लपटाइ ललकि आनँद अरसाने॥
बहुरि जुगल कर जोरि कोरि अस्तुति मन ठानी।
पै भावनि की भीर चीरि निकसी नहिँ बानी॥ २१ ॥

सावर-मंत्र-समान अमिल आखर कछु आए।
जिहिँ प्रभाव सौं भूप-भाव सबकैं मन छाए॥
बढ़ि कृतज्ञता उमड़ि द्रवित ह्वै अजगुत कीन्यौ।
रसना कौ कल काम सरस नैननि सौं लीन्यौ॥ २२ ॥

भए देवहू मगन भूप की भक्ति निहारत।
सके न कहि कछु उमहिँ मनहिँ मन रहे विचारत॥
तब बिरंचि अगुवाइ उमगि बर बचन उचारे।
प्रेम-पुलकि अवनीस-सीस कंपित कर धारे॥ २३ ॥

धन्य भानु-कुल-भानु धन्य तप-तेज-तपाकर।
जासौं लहत प्रकास सुकृत-सुख-सुजस-सुधाकर॥
मात-पिता-दोउ-बंस उजागर तुम अति कीने।
महि-बासिनि के सकल दोष-दुख-तम दरि दीने॥ २४ ॥

अंसुमान की कठिन आन करि कानि उतारी।
कर्म-बीरता-सुभग-सीख त्रिभुवन संचारी ॥
मुरे न लखि घन बिघन ठान ठानी सो ठानी।
किए सुरासुर दंग गंग अवनी पर आनी ॥ २५ ॥

मृत्यु-लोक मैँ धरयौ आनि सुभ स्रोत अमी कौ।
दै महिमा महि कियौ सारथक नाम मही कौ ॥
यह अति दुस्तर काज आज लौं अपर न साध्यौ।
जद्यपि सहि बहु कष्ट इष्ट-देवनि आराध्यौ ॥ २६ ॥

साठ सहस नृप-सगर-पूत करि पूत उधारे।
पुन्य सलिल सैं कपिल-साप के ताप निवारे ॥
जब लौं सुरधुनि-धवल-धार सागर मैँ धसिहैँ।
तब लौं ते गत-सोक दिब्य लोकनि मैँ बसिहैँ ॥२७ ॥

सगर हिये कौ पुत्र-बिरह-उद्वेग थिरायौ।
सुरपुरहूँ मैँ देत ताप संताप सिरायौ ॥
कपिलदेवहूँ लह्यौ तोष लखि सुरसरि-करनी।
निज आस्रम की बढ़ी मानि महिमा-मल-हरनी ॥ २८ ॥

तब पितरनि-हित लागि गंगहूँ अति हुलसाई।
बर मुकतिनि की रासि निछावरि माहिँ लुटाई ॥
थल-थल थापे पुन्य-छेत्र चारहु-फल-दाई।
दस दिगंगननि तब कीरति-सारी पहिराई ॥ २९ ॥

अब त्रिपंथगा गंग गरबि तव सुता कहैहै।
भागीरथी पुनीत नाम सौं जग जस छैहै ॥
त्रेता जुग मुनि बालमीकि द्वापर पारासर।
कलि मैं यह सुचि चरित चारु गैहै रतनाकर ॥ ३० ॥

देव पितर सब भए तृप्त जग जीवन भीन्यौ।
जीव जंतु सु-अघाइ पाइ जल अति सुख लीन्यौ ॥
करि नहान जल-दान-क्रिया सब वेद-बखानी।
अब तुमहूँ तौ पियौ पूत चिल्लू-भर पानी ॥ ३१ ॥

सकल-स्वर्ग-अपवर्ग-लाहु तुम तप-बल पायौ।
अब दै कहा उमंगि करैं हमहूँ मन-भायौ ॥
सिख आसिख यह देत तदपि हित-हेत सुहाई।
सुख सौं भोगौ धर्म-सहित कल कर्म-कमाई ॥ ३२ ॥

तब हरि हित करि हेरि हुलसि हँसि अति मृदु बानी।
बोले वलित-विनोद कृपा-रस सौं सरसानी ॥
दै सुरसरित स्वयंभु संभु सिर लै जस लीन्यौ।
इहिं समाज हम लहत लाज कछु काज न कीन्यौ ॥ ३३ ॥

यातैं यह बरदान मान-जुत दै सुख पावत।
तव जस जग थिर थापि आपनी सकुच सरावत ॥
जब लौं सुरसरि-धार-हार बसुधा उर धारै।
तब लौं तन तव सुजस-छीर-सर-चीर सँवारै ॥ ३४ ॥

गंग-अवतरन-चरित चारु जे सादर गावैं।
पढ़ैं गुनैं मन लाइ सुनैं कै सरुचि सुनावैं ॥
संपति संतति मान ज्ञान गुन ते बहु पावैं।
बिलसि बिलास अनंत अंत सुर-लोक सिधावैं ॥ ३५ ॥

औरहु जो बर चहहु लहहु सकुचहु जनि बोलौ।
दरि दुराव चढ़ि चाव भाव अंतर कौ खोलौ ॥
हाँ हाँ सकुच बिहाइ कहौ इच्छा मनमानी।
भुज उठाइ इमि उठे बोलि संकर दिन-दानी ॥ ३६ ॥

सबनि जोरि जुग हाथ कह्यौ नृप माथ नवाए।
है सनाथ हम नाथ सकल इच्छित फल पाए ॥
तदपि यहै करि बिनय चहत अज्ञा-अनुगामी।
भारत पर निज कृपादृष्टि राखहु नित स्वामी ॥ ३७ ॥

सदा होइ यह धर्म-धान्य-धन-धीरज-धारी।
विद्या बुद्धि बिबेक बीरता कौ अधिकारी ॥
याके पूत सपूत नित्य निज करतब साधैं।
गंग गाय गोलोक-नाथ सादर आराधैं ॥ ३८ ॥

करैं प्रेम कौ नेम सकल मिलि छेम पसारैं।
याकैं हित हठि प्रान पानि-तल पर सब धारैं ॥
जब जब बिपति-समुद्र याहि बोरन कौं कोपै।
तब तब आप-प्रताप ताहि कुंभज है लोपै ॥ ३९ ॥

न सौ दो

यह सुनि सकल सराहि नृपति निस्पृह कामनि कौं।
"एवमस्तु" कहि चले मुदित निज निज धामनि कौं॥
नभ तैं बरसे सुमन बजी आनंद-बधाई।
उमग्यौ मोद अनंत दिगंतनि जय-धुनि छाई॥ ४० ॥

इमि भूप-सुकृत-राकेस-द्युति गंग सकल कलमस हरयौ।
बर-बानी-बिमल-बिलास बढ़ि रतनाकर-उर संचरयौ॥ ४१ ॥

त्रयोदश सर्ग

भूप भगीरथ तब अन्हाइ अदभुत सुख लीन्यौ।
संध्या-वंदन साधि देव-पितरनि जल दीन्यौ॥
मन प्रमोद तन पुलक प्रेम-जल पलकनि छाए।
गदगद स्वर सौं करी गंग-अस्तुति उमगाए॥ १॥

जय तांडव-द्रव-भूत-ब्रह्म-मूरति अति पावनि।
प्रबल-प्रभाव-अमोघ सकल-अघ-ओघ-नसावनि॥
चतुरानन-हरि-ईस-परम- पद - बिसद - वितरनी।
दस-पातक-असुरारि-रूप दस इक-अवतरनी॥ २॥

जय बिरंचि-कृत-बंक-अंक-निस्संक-पखारिनि।
सुख-संपति-संतान-मान-बिस्तारिनि तारिनि॥
जय हरि की स्रम-हरनि बाँटि तारन-कृति भारी।
निज महिमा-बल-बिपुल बहुरि बहु रचि असुरारी॥ ३॥

जय गिरीस-सुभ-सीस-सरस-सोभा-संचारिनि।
हृत-त्रिलोक-त्रय-ताप-जनित-संताप-निवारिनि॥
जय अमृतासन-बृंद-तोष-निज-बाढ़-बढ़ावनि।
स्वल्प-सुधा-कृत-देव-दनुज-दल-द्रोह-बहावनि॥ ४॥

जय विप्रनि हित परम ब्रह्म-विद्या की स्रेनी।
तोप मोष विज्ञान मान इच्छित सब देनी ॥
जय क्षत्रिय-कुल-दुरित-दलन-संगर की संगिनि।
चार-वर्ग-जय-हेत चमू चमकति चतुरंगिनि ॥ ५ ॥

जय वनिकनि के काज धनिक गाहक मति भोली।
खोट-पोट लै देति खरी मुक्तिनि की झोली ॥
जय सूद्रनि हित अति उदार कोमल-चित स्वामिनि।
सेवत सद्यः देति सौख्य-संपति सुरधामिनि ॥ ६ ॥

जय जोगिनि की परम-तत्त्व सुख-निधि भोगिनि की।
सोगिनि की दुख-दरनि हरनि आरति रोगिनि की ॥
जय जग-जननि अनंत छोह संतति पर छावनि।
मृतकहुँ लै निज गोद मोद सुख दै दुलरावनि ॥ ७ ॥

जय किल केहरि-माल कर्म-वन-गहन-सुचारिनि।
पातक-कुंजर-पुंज गंजि वर-मुक्ति-पसारिनि ॥
दुख-दारिद-दुरभाग-दुरित-गिरि-गुहा-विदारिनि।
चिंता-भ्रम-उद्वेग-वेग-मृग-निखिल-निवारिनि ॥ ८ ॥

जय कलपद्रुम-कुसुम-मंजु-मकरंद-तरंगिनि।
सुर-नर-मुनि-मन-मधुप-पुंज-सरवस-सुख-संगिनि ॥
जय वृंदारक-वृंद-वंद्य कल कामदुहा की।
धवल धार सुख-सार जीवनाधार धरा की ॥ ९ ॥

जय आनंद-तरंग गंग गिरि-नायक-नंदिनि ।
जय जाह्नवी पुनीत ईति-भव-भीति-निकंदिनि ॥
जय दिनेस-कुल-सुभ्र-सुजस-त्रिभुवन-संचारिनि ।
भागीरथी कहाइ अमर-कल-कीरति-कारिनि ॥ १० ॥

जय सुचि-सुकृत-पयोधि-सुधा की धार सुधारी ।
चारु-चार-फल-देन - पुन्य-तरु - सींचनहारी ॥
जाकैं अर्घ अघात सुधा-भोगी विबुधाकर ।
जिहिँ नव-जीवन-पूरि भूरि उमगत रतनाकर ॥ ११ ॥

नृप-अस्तुति सुनि उठी गंग-उर कृपा-फुरहरी ।
जल-तल पर लहरान लगीं आनँद की लहरी ॥
यह धुनि मंजुल मधुर धार-कलकल तैं आई ।
धन्य भगीरथ भूप धन्य तव पुन्य-कमाई ॥ १२ ॥

यह तप-तेज प्रचंड सील की यह सियराई ।
पावक पाला लसत सुमिल तुम मैं इकठाई ॥
सब देवनि वर दिए दिव्य मन-मोद-मढ़ाए ।
अब हमहूँ सौं लहौ चहौ जो चाव-चढ़ाए ॥ १३ ॥

यह सुनि नृप कर जोरि निवेदन सादर कीन्यौ ।
सगर-कुमारनि तारि हमैं सब कछु तुम दीन्यौ ॥
दानी परम उदार पाइ पर तृषा न त्यागति ।
यातैं यह वरदान-लाहु-लालच जिय जागति ॥ १४ ॥

पापी पतित स्वजाति-त्यक्त सौ-सौ पीढ़िनि के।
धर्म-विरोधी कर्म-भ्रष्ट च्युत स्रुति-सीढ़िनि के॥
तव जल स्रद्धा-सहित न्हाइ हरि नाम उचारत।
ह्वै सब तन-मन-सुद्ध होहिँ भारत के भारत॥ १५॥

यह सुनि पुनि धुनि भई धन्य तव नय-निपुनाई।
देस-भक्ति भरपूर जाति-अनुरक्ति सुहाई॥
सफल कामना होहिँ सकल तव सुचि-रुचि-वारी।
भारत पर नित करैं कृपा हरि आरति-हारी॥ १६॥

सुरसरि-आसिख पाइ निपट नरपति आनंदे।
कपिलदेव अभिनंदि विविध पुनि सादर वंदे॥
धन दिलीप कौ लाल धन्य यह जस सिख-दानी।
साधि सकल निज कठिन काज पीयौ तव पानी॥ १७॥

करि प्रनाम तव पुलकि माँगि आयसु सुरधुनि सौं।
चढ़ि स्यंदन सानंद चले आसिष लहि मुनि सौं॥
लखत तुरंग तरंग गंग-गुन गुनत सुहाए।
पूरित अमित उमंग अंग वेला पर आए॥ १८॥

तहँ देखे निज वाट लखत सुभ ठाठ जमाए।
गंगागम सुधि पाइ धाइ उमगत चलि आए॥
मंत्री सेनप सखा दास मुखिया हित-भीने।
असन वसन सुख-साज-बाज नाना-विधि लीने॥ १९॥

उतरि तुरत नरनाह तहाँ दीन्यौं सुभ दरसन।
धाइ-धाइ सुख पाइ लगे सब पायनि परसन॥
पुलकित-तन नर-नाह सबनि भुज भरि-भरि भेट्यौ।
पूछि-पूछि कुसलात तोपि दारुन दुख मेट्यौ॥ २० ॥

तब सब हठ करि उबटि भूप सादर अन्हवाए।
बसन बिभूषन बिविध-भाँति हिय हुलसि धराए॥
रसना-रंजन बहु प्रकार ब्यंजन सुचि परसे।
सबनि संग बैठाइ पाइ भूपति सुख-सरसे॥ २१ ॥

गिरिजा-नंदन बंदि चले चढ़ि चढ़ि सब स्यंदन।
भरत भूरि आनंद करत नरवर-अभिनंदन॥
जहँ-तहँ उतरि भुआल गंग-कल-कीरति गावत।
मग के परम पुनीत धाम अभिराम लखावत॥ २२ ॥

इहिँ विधि सुरसरि-तीर-तीर कासी लौं आए।
तहाँ पूजि पुनि माँगि बिदा लोचन जल छाए॥
बिस्वनाथ-पद बंदि बिविध द्विज-गन सनमाने।
चले अवध-पुरि-ओर उमगि उर आनँद-साने॥ २३ ॥

नृप-आगम-सुभ-समाचार पुर-बासिनि पाए।
चौहट हाट बिराट बाट बहु ठाट सजाए॥
ध्वजा पताका प्रचुर चारु तोरन छबि-छाजी।
मंजुल मंगल-कलस रंभ-खंभनि की राजी॥ २४ ॥

पुरजन परिजन स्वजन चले उमगत अगवानी।
आगैं किए वसिष्ठ आदि द्विज-गन विज्ञानी॥
पुर बाहिर ह्वै लगे लखन लोचन ललकाए।
तब लौं दृग-पथ आइ भगीरथ-रथ नियराए॥ २५॥

लखि वसिष्ठ कुल-इष्ट भूप स्यंदन तजि धाए।
पुलकि ढारि दृग वारि सपद पायनि लपटाए॥
कंपित कर वर पकरि माथ मुनि-नाथ उठायौ।
बरबस बिरति बिसारि प्रेम-कातर उर लायौ॥ २६॥

बार-बार कुसलात पूछि आनँद अवगाह्यौ।
कर्म-वीर-नर-नाह-साहसहिं हुलसि सराह्यौ॥
तब नर-बर सब अपर विप्र-बृंदनि-पद बंदे।
पुर-बासिनि सनमानि मानि सुख सबनि अनंदे॥ २७॥

ग्राम-देवतनि पूजि दान बहु भाँतिनि कीन्यौ।
नाइ ईस कौं सीस पाय पुर-अंतर दीन्यौ॥
चले सकल मिलि कहत सुनत नृप-सुजस-कहानी।
पुर-बासिनि की भीर दरस-हित अति उमगानी॥ २८॥

धरे बसन बहु-भाँति पाँति दुहुँ ओर लगाए।
जय-जय-धुनि सब करत महा मन मोद मनाए॥
साजे नव-सत सुमुखि-बृंद आतनि छवि छावत।
गावत मंगल गीत सुमन सादर बरसावत॥ २९॥

बालक बलित-बिनोद फिरत देखत से मेला।
कोउ कछु कौतुक लखत कोऊ कहुँ करत झमेला॥
कोउ छेकत छैलात देखि कहुँ मंजु खिलौना।
कोउ ऐंठत इठलात मिठाइनि के लहि दौना॥ ३० ॥

सिंह-पौरि पर भई भीर सोभित अति भारी।
हय गय स्यंदन सुभग सजे बहु बाँधि पँत्यारी॥
सेनप-स्रेनी लसति अस्त्र-सस्त्रनि सौं साजी।
जहँ-तहँ राजति रुचिर राज-काजिनि की राजी॥ ३१ ॥

लै लै कंचन-कलस कहूँ सुभ सुघर सुआसिनि।
साजे मंगल-थार थिरकि गवनतिं मृदु-हासिनि॥
बंदी मागध सूत सुजस गावत सुख-कारी।
भीर सँभारत लिए पुरट-लकुटी प्रतिहारी॥ ३२ ॥

घंटा - संख - मृदंग - झाँझ - भेरी-धुनि छाई।
भूप-मंडली मंडि नगर तब लौं तहँ आई॥
लही सबनि सुख-मोट चोट धौंसनि पर धमकी।
मनहु अवध पर घेरि घटा आनंद की धमकी॥ ३३ ॥

बंदे बिप्र-समाज राज-कुल-जन नृप भेंटे।
पूछि कुसल हँसि हेरि प्रजा-परिजन-दुख मेटे॥
पुलकि पूजि कुल-देव दान दै अवसर-वारे।
मुनि-नाथहिँ सिर नाइ पाय अंतःपुर धारे॥ ३४ ॥

चहल-पहल तहँ मची मंजु महिलनि की भारी।
बसन-बिभूषन-बलित ललित अवसर-अनुहारी॥
कंचन-करवा वारि चलतिँ ढरकावन चेरी।
राई-लोन उतारि उमगि बलि जातिँ जठेरी॥ ३५॥

बिप्र-बधू कुल-मान्य देतिँ आसिष सुख-सानी।
परसतिँ पाय नवाइ सीस सरसत-दृग रानी॥
पुरट-पाट-पट पारि पाँवड़े मृदुल मनोहर।
सादर चलीं लिवाइ ललकि गावति सुभ सोहर॥ ३६॥

मनि-मंदिर बैठाइ पाय सानंद पखारे।
सजि-सजि कंचन-थार आरते उमगि उतारे॥
लगीं निछावर होन सोन-मुक्ता-मनि-ढेरी।
भरि-भरि कोंछनि चलीं भाट-नट-नारि कमेरी॥ ३७॥

इहिँ बिधि परमानंद होन नृप-मंदिर लागे।
परिजन-प्रजा-समूह सकल सुख लहि अनुरागे॥
घर घर व्यापी भूप-सुकृत-सुभ-कथा सुहाई।
कहत सुनत चहुँ कोद मोद-मदि लोग लुगाई॥ ३८॥

गुरु बसिष्ठ तब सोधि सुदिन दीन्यौ अनुसासन।
सभा-भौन सजि बिसद बन्यौ दूजौ इंद्रासन॥
द्विज-गन परम पुनीत प्रीति-जुत न्योति पठाए।
सचिव सूर सामंत स्वजन परिजन जुरि आए॥ ३९॥

सभाधिकारिनि संवनि जथोचित आसन दीने ।
पुरवासिनि वर व्यूह-वद्ध चहुँ दिसि थित कीने ॥
वंदी मागध सूत वाँधि स्रेनी सजि सोहत ।
नृप-आगम की वाट सबै प्रमुदित-चित जोहत ॥४०॥

इत नृप न्हाइ सिँचाइ मुनिनि अभिमंत्रित जल सौं ।
साजि अंग स-उमंग विभूषण वसन विमल सौं ॥
पंच-देव कुल-देव नवग्रह पूजि जथाविधि ।
गुरुदेवहिँ सिर नाइ चले उमड्यौ आनँद-निधि ॥४१॥

सुभ सवच्छ गो लच्छ पौरि पर मोद मढ़ाए ।
सोपस्कर करि दान सभा-मंदिर मैं आए ॥
तहँ वसिष्ठ पढ़ि वेद-मंत्र दीन्यौ अनुसासन ।
करि प्रनाम तव कियौ भूप भूषित सिंहासन ॥४२॥

स्वस्ति-पाठ अरु जय-जय की धुनि-धूम सुहाई ।
सभा-भौन तैँ उमड़ि घुमड़ि चारहुँ दिसि छाई ॥
वहु प्रकार के दान मान महि-देवनि पाए ।
जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद-छाए ॥४३॥

प्रीति नीति सौं पागि प्रजा पालन नृप लागे ।
सुख संपति भरि भूरि भाग वसुधा के जागे ॥
विरदावलिहिँ वढ़ाइ लगे चारन उच्चारन ।
स्वस्ति श्री तप-तरनि तरनि-तारनि-अवतारन ॥४४॥

लहि श्रीजगदंब-निदेस बर गंग-गिरा-गननाथ-बर।
यह रतनाकर कीन्यौ अमर गंग-चरित सुभ सौख्यकर ॥४५॥

समाप्ति-संवत्

संवत् उनइस सै असी गुरु-पूनौ भृगु-वार।
गंग-अवतरन काव्य यह पूरन भयौ उदार॥

आवै इठलात नंद - महर - लड़ती लखि,
पग-पग भाइ-भीर अटकति आवै है।
रूप-रस-माती चारु चपल चितौनि कुल,
गैल गहिबे कौं हठि हटकति आवै है॥
अवनि-अकास-मध्य पूरि दिग-छोरनि लौं,
छहरि छबीली छटा' छटकति आवै है।
मटकत आवै मंजु मोर कौ मुकुट माथैं,
वदन सलोनी लट लटकति आवै है॥ १॥

आए अवधेस के कुमार सुकुमार चारु,
मंजु मिथिला की दिब्य देखन निकाई हैं।
सुनि रमनी - गन रसीली चहुँ ओरनि तैं,
झौरनि की झौर दौरि दौरि उमगाई हैं॥
तिनके अनोखे-अनिमेष-दृग पाँतिनि पै,
उपमा तिहूँ पुर की ललकि लुभाई हैं।
उन्नत अटारिनि पै खिरकी-दुवारिनि पै,
मानौ कंज-पुंजनि की तोरन तनाई हैं॥ २॥

अब न हमारौ मन मानत मनाएँ नैकुँ,
टेक करि बापुरौ बिबेक नखि लेन देहु।
कहै रतनाकर सुधाकर-सुधा कौं धाइ,
तृषित चकोरनि अघाइ चखि लेन देहु॥
संक गुरु लोगनि के बंक तकिबे की तजि,
अंक भरि सिगरौ कलंक सखि लेन देहु।
लाज कुल-कानि के समाज पर गाज गेरि,
आज ब्रजराज की लुनाई लखि लेन देहु॥ ३॥

सो तौ करै कलित प्रकास कला सोरस लौं,
यामैं बास ललित कलानि चौगुनी कौ है।
कहै रतनाकर सुधाकर कहावै वह,
याहि लखैं लगत सुधा कौ स्वाद फीकौ है॥

समता सुधारि औ विसमता बिचारि नीकैं,
ताहि उर धारि जो विसद ब्रज-टीकौ है।
चारु चाँदनी कौ नीकौ नायक निहारि कहौ,
चाँदनी कौ नीकौ कै हमारौ चाँद नीकौ है ॥ ४ ॥

पाती लै चितैति चहुँ ओरनि निहोरनि सौं,
आई वन वाल ज्यौं तरंग छवि-वारी की।
कहै रतनाकर पिछानि पर पैठत ही,
विसद बताई कुंज मालती निवारी की ॥
सौंहैं लखि अधर दबाए मुसुकानि मंद,
मोरति मदन-मन-मोहिनी विहारी की।
लोचन लचाइ रही सोचनि सकी सी चकि,
मूरति सुरति करि पठवन हारी की ॥ ५ ॥

चंचल चारु सलोनी तिया इक, राधिका कैं ढिग आइ अजानी।
दै कर कागद एक कह्यौ बस, रीझिबौ मोल है याकौ सयानी ॥
चित्र तैं दीठि चितेरिनि ओर, चितेरिनि तैं पुनि चित्र पै आनी।
चित्र समेत चितेरिनि मोल लै, आपु चितेरिनि-हाथ विकानी ॥ ६ ॥

आजु हौं गई ती नंदलाल वृषभानु-भौन,
सुधि ना तहाँ की बुधि नैंकुँ वहरति है।
कहै रतनाकर बिलोकि राधिका कौ रूप,
सुखमा रती की ना रतीकु ठहरति है ॥

मंद मुसुकानि के अमंद दुति-दामनि की,
छिति लौं अटा सौं छटा छूटि छहरति है।
पवन-प्रसंग अंग-रंग की तरंगनि सौं,
आवी चीर चटकि गुलाबी लहरति है॥ ७॥

आँगन मैं अंगना अन्हाइ अनगाति लट,
लटपट लौटे पट पटल खवा परे।
सौंहैं लखि औचक हँसौंहैं नंदनंदन कौं,
झझकि सकुची मुरि मंजु मुरवा परे॥
कूलनि पै अमल अमोल कनमूलनि के,
लोल कनफूलनि के झहरि झवा परे।
कंधनि पै हहरि सहरि पुनि पीठि केस,
लहरि लचीली लंक छहरि छवा परे॥ ८॥

आवत निहारे हौं गुपाल एक बाल जाकी,
लाग्यौ उपमा मैं कवि कोविद समाज है।
तरुन दिनेस दिव्य अरुन अमोल पाय,
छीन कटि केहरि औ गति गजराज है॥
संभु कुच मुख पदमाकर दिमाक देव,
तापै घनआनँद घनेरौ कच-साज है।
छवि की तरंग रतनाकर है अंग मुस-
कानि रस-खानि बानि आलम निवाज है॥ ९॥

फूलनि की सेज तैं सुगंध सुखमा सी उठी,
प्रात अँगिरात गात आरस-गहर है।
कहै रतनाकर विभावरी विलासनि की,
सुधि सौं सलोने अंग-अंग थरहर है॥
सुघर सराटे परे पट पचतोरिया पै,
उमगति फूटि छवि-फाव की फहर है।
कसनि सुरंग संग मोतिनि की स्रेनी खुली,
वेनी पर तरल त्रिवेनी की लहर है॥ १० ॥

छीर-फेन कैसी फबी अमल अटारी पर,
आई सुकुमारी प्रान-प्यारी नँद-नंद की।
मानौ रतनाकर-तरंग-तुंग-शृंग पर,
सुखमा सुहाई लसै कमला सुछंद की॥
जैसैं दीप-दीपति पै दीप मनि-दीपति है,
दीपमनि पै ज्यौं दुति दामिनि अमंद की।
निखिल नछत्रनि पै चंद की प्रभा है जिमि,
चंद की प्रभा पै त्यौं प्रभा है मुख-चंद की॥११॥

सोभा-सुख-पुंज वा निकुंज उमड्यौ सौ आज
ग्वाल गयौ कोऊ इमि कहत कहानी सी।
सो सुनि ललकि जाइ ज्यौं उत बिलोकी एक,
बाल मनमथ-मन-मथन-मथानी सी॥

ख्याल परी ग्वाल की सुढौल मृदु मूरति सो,
रस - रतनाकर - तरंग उमगानी सी।
बिहँसि बिलोकि लाल लोल ललचाने घुरि,
मुरि मुसकाइ सो सकोच-सरसानी सी ॥१२॥

जगर मगर ज्योति जागति जवाहिर की,
पाइ प्रतिबिंब-ओप आनन-उजारी की।
छबि रतनाकर की तरल तरंगनि पै,
मानौ जगाजोति होति स्वच्छ सुधाधारी की॥
संग मैं सखी-गन के जोबन-उमंग-भरी,
निरखति सोभा हाट बाट की तयारी की।
जित जित जाति बृषभानु की दुलारी फबी,
तित तित जाति दबी दीपति दिवारी की ॥१३॥

जरद चमेली चारु चंपक पै ओप देति,
डोलति नबेली हुती सदन-बगीची मैं।
कहै रतनाकर सुदुति सुखमा की जाकी,
दमकि रही है दिव्य पूरब प्रतीची मैं॥
भुज भरि लीनी रसदानि आनि औचक हीं,
लरजि लरजि परी बाम खीचा खीची मैं।
हिरकि रही है स्याम अंक मैं ससंक मनौ,
थिरकि रही है बिज्जु बादर-दरीची मैं ॥१४॥

आज उहिँ बाग कौ न भाग है सराह्यौ जात,
हाँसलौ हिरात ह्वै हजार-जीह-धारी कौ।
हौँ तौ गई औचक ही भौचक बिलोकि भई,
बानक अनूप रंग रूप रुचिकारी कौ॥
संग ना सहेली जासौँ बूझैँ कछु जान्यौ जाइ,
भाग भर्‌यौ भारी नाम गाम सुकुमारी कौ।
जाकी बृषभानु-सुता प्रगट प्रभाव पेखि,
मंद करै चंदहिँ अमंद मुख प्यारी कौ॥१५॥

सोई सुख-भोई केलि-मंदिर-अटारी बाल,
छवि की छटारी छिति छूटि छहरति है।
साँसनि प्रसंग सौँ उमंगि अंग आनन पै,
रूप-रतनाकर-तरंग लहरति है॥
भाप के लगे तैँ सियराइ रंग औरै पाइ,
चारु मुख-चंद यौँ बुलाक फहरति है।
पिय-परिरंभ पाइ रोहिनि रसीली मनौ,
पुलकि पसीजि रस-भीजि थहरति है॥१६॥

मानिक-मंदिर मोतिनि की चिकैँ, ठाढ़ी तहाँ गुन रूप की खानी।
लाल की माल उठाइ उरोज तैँ, है सरुझावन मैँ अरुझानी॥
सामुहैँ होतही जाके जवान पै, आवति यौँ उपमा उमगानी।
× × + उतारत संभु पै आरति बानी॥ १७॥

तो तरवा - तरनी - किरनावली, सोभा-छपाकर मैं छबि छावै।
त्यौं रतनाकर रावरी लौनी, लुनाई सबै सुठि स्वाद मैं ल्यावै॥
जाति कही मुख की सुखमा नहीं, माधुरी सौं अधरानि अघावै।
रावरी ठोड़ी के कूप अनूप सौं, रूप त्रिलोक कौ पानिप पावै॥ १८॥

अमल अनूप रूपपानिप - तरंगनि मैं,
जगमग ज्योति आनि सान सौं बसति है।
कहै रतनाकर उभार भए अंग माहिँ,
रंचक सी कंचुकी अदेख उकसति है॥
रसिक-सिरोमनि सुजान मनमोहन की,
लाख-अभिलाष-भौंर-भीर हुलसति है।
अभिनव जोबन-प्रभाकर-प्रभा सौं बाल,
अरुन उदै की कंज कली सी लसति है॥ १९॥

सरसन लाग्यौ रस रंग अंग-अंगनि मैं,
पानिप तरंगनि मैं बाल बिलसति है।
कहै रतनाकर अनंग कौ प्रसंग पौन,
पाइ कंपि जाइ काँति दूनी दरसति है॥
रति-रस लंपट मलिंद मन भावन कैं,
उर अभिलाष लाख भाँति की वसति है।
परम पुनीत बैस-संधि कौ प्रभात पाइ,
अरुन उदै की कंज कली सी लसति है॥ २०॥

धरे पाइ अन्हाइबे कौं जल मैं, अँग अंग फुरैरिनि सौं थहरैं।
रतनाकर धूर-कपूर निचोल पै, लोल छटा तन की फहरैं॥
कच मेचक नीठि सँभारत हूँ, छुटि पीठि पैं यौं छवि सौं छहरैं।
मनु गंग की मंद तरंगनि पै, लहरैं जमुना-जल की लहरैं॥ २१॥

अँजन बिनाहूँ मन-रंजन निहारि इन्हैं,
गंजन ह्वै खंजन-गुमान लटे जात हैं।
कहै रतनाकर बिलोकि इनकी त्यौं नोक,
पंचबान बाननि के पानी घटे जात हैं॥
स्वच्छ सुखमा की समता की हम तासौं खिले,
विविध सरोजनि सौं हौज पटे जात हैं।
रंग है री रंग तेरे नैननि सुरंग देखि,
भूलि भूलि चौकड़ी कुरंग करे जात हैं॥ २२॥

बैठे भंग छानत अनंग-अरि रंग रमे,
अंग-अंग आनँद-तरंग छबि छावैं है।
कहै रतनाकर कछूक रंग ढंग औरै,
एकाएक मत्त ह्वै भुजंग दरसावै है॥
तूँवा तोरि साफी छोरि मुख विजया सौं मोरि,
जैसैं कंज-गंध पै मलिंद मंजु धावै है।
बैल पै बिराजि संग सैल-तनया लै वेगि,
कहत चले यौं कान्ह बाँसुरी बजावै है॥ २३॥

जाके सुर-प्रबल-प्रवाह कौ झकोर-तोर,
सुर-मुनि-बृंद-धीर-कुधर ढहावै है।
कहै रतनाकर पतिब्रत-परायन की,
लाज कुल-कानि कौ करार बिनसावै है॥
कर गहि चिबुक कपोल कल चूमि चाहि,
मृदु मुसकाइ जो मयंकहिँ लजावै है।
ग्वालिनि गुपाल सौं कहति इठलाइ कान्ह,
ऐसी भला कोऊ कहूँ बाँसुरी बजावै है॥ २४॥

निकसत नैंकु हीं अनेक मन-मोहन कौ,
करषन-मंत्र मँज्यौ बाँसुरी-बदन तैं।
कहै रतनाकर रसीले सुर-ग्रामनि तैं,
रागिनी रँगीली दाबि आँगुरी रदन तैं॥
गेहनि तैं गोपिका सची त्यौं मुनि मेहनि तैं,
नेहनि तैं नाधीं नाग-कन्यका छदन तैं।
अंबर तैं किन्नरी कुरंगी कल कानन तैं,
निकसतिं पन्नगी पिनाकी के सदन तैं॥२५॥

कानि की सौति गुमान की बैरिनि, स्वैरिनि लौं गलगाजि रही है।
जीवन दै जड़ कौं रतनाकर, जीवित कौं जड़ साजि रही है॥
जोगिनि को हिय-नादहूँ बाद कै, आपनौ बाद हीं छाजि रही है।
लाज समाज पै गाज गिरै ब्रज-राज की बाँसुरी बाजि रही है॥२६॥

काहू मिस आजु नंद-मंदिर गुविंद आगैं,
लेतहि तिहारौ नाम धाम रस-पूर कौ।
सुनि सकुचाइ लगे जदपि सराहन से,
देखि कला करत कपोत अति दूर कौ॥
मृगमद-विंदु तऊ चटक दुचंद भयौ,
मंद भयौ खौर हरिचंदन कपूर कौ।
थहरन लागे कल कुंडल कपोलनि पै,
छहरन लाग्यौ सीस मुकुट मयूर कौ॥२७॥

जासौं तप्यौ जीवन जुड़ात सियरात नैन,
चैन परे जैसें चारु चंदन चहल मैं।
कहै रतनाकर गुपाल हौं बिलोकी हाल,
ऐसी बाल होत सुख जाकी है टहल मैं॥
करत कहा हौ वैठि बट के वितान वीच,
वेगि चलौ धाइ तौ दिखाऊँ हौं सहल मैं।
ग्रीषम की भीति मनौ सीतलता आनि दुरी,
धरि कै सरीर वा उसीर के महल मैं॥२८॥

गूजरी गँवारी वसि गोकुल गुमान करै,
कान करै क्यौं न वानि मेरी चित लाइ कै।
कहै रतनाकर न रंचक रहैगौ यह,
वेगही वहैगौ वतरैवौ सतराइ कै॥

चाह भरे चाहन की चरचा चलावै कौन,
सेसहू न पावै कहि एतौ सुख पाइ कै।
गरब रितै है जब चेटक-निधान कान्ह,
तो तन चितैहै नैकु मुरि मुसकाइ कै ॥२९॥

बाल बन-केलि लाल देखन चलौ जू दौरि,
औरै और ना तौ सुख-लाँक लुने लेत हैं।
कहै रतनाकर रुचिर-रस-रंग देखि,
भृंग भाँवरे दै भूरि भाग गुने लेत हैं ॥
भूलि भूलि कलित कुलंग जुरि दंग भए,
बानी-बीन बिसद कुरंग सुने लेत हैं।
स्रम-जल-बिंद मुख-चंद कौ अमंद पेखि,
लेखि सुधा-सीकर चकोर चुने लेत हैं ॥३०॥

प्रान पूरि गहब गलीचा-बनी मूरति हूँ,
पाइ कौ परस पाइ छरकन लागै है।
कहै रतनाकर चकोर चित्रहू कौ चाहि,
आनन-अमंद-चंद फरकन लागै है ॥
तन की सुबास फरिया के फबै फूलनि सौं,
पदुम-सुगंध-रासि ढरकन लागै है।
अधर सुधा सौं सनी बात कौ प्रसंग पाइ,
बेसरि-मयूर-मंजु थरकन लागै है ॥३१॥

जस-रस मधुर लुनाई रतनाकर कौ,
कानिनि मैं बरसि घटा लौं ननदी चली।
बहि तृन पात लौं सकल कुलकानि गई,
गुरु गिरि रोक-टोक है जिमि रदी चली॥
लाख अभिलाष-भौंर भ्रमन गँभीर लगीं,
उमगि उमंग-बाढ़ करति बदी चली।
धीरज-करार फोरि लज्जा-द्रुम तोरि बोरि,
नोकदार नैननि तैं निकसि नदी चली॥३२॥

औचक अकेले मिले कुंज रस पुंज दोऊ,
भौचक भए औ सुधि बुधि सब ख्वै गईं।
कहै रतनाकर त्यौं बानक विचित्र बन्यौ,
चित्र की सी पलकैं सुभौंहनि मैं प्वै गईं॥
नैननि मैं नैननि के बिंब प्रतिबिंबनि सौं,
दोऊ ओर नैननि की पाँति बँधि द्वै गईं।
दोउनि कौं दोउनि के रूप लखिबे कौं मनौ,
चार आँख होत हीं हजार आँख है गईं॥३३॥

लाख अभिलाषनि कौ होत ही कुलाहल है,
मोकलौ न पावैं मग नैंकु निचुकाइ दै।
कहै रतनाकर झरोखनि के मोखे करि,
कूदि कढ़िबे कौ तिन्हैं बानक बनाइ दै॥

निडर निसंक बंक भौंहनि कमान तानि,
नैननि के बान द्वैक औरहूँ चलाइ दै।
तलफत त्यागि जात जुलम न ऐसौ करि,
हा हा हँसि हेरि घूमि घायनि अघाइ दै ॥३४॥

न चली कछू लालची लोचन सौं, हठ-मोचन कै चहनोई परयौ।
रतनाकर बंक-बिलोकन-बान, सहाए बिना सहनोई परयौ ॥
उततैं वह गात छुवाइ चले, तब तौ मन कौं ढहनोई परयौ।
भरि आह कराह 'सुनौ जू सुनौ,' नँदलाल सौं यौं कहनोई परयौ ॥३५॥

जोबन उमंग सौं चलायौ चख जो बन मैं,
सो बनि अनंग कौ निषंग सालि सालि उठै।
कहै रतनाकर सघन बरुनी की पाँति,
भाँति भाँति साँति की सनाह चालि चालि उठै ॥
हौंस-भरे हुलसि निहारत निहारि उन्हैं,
घूँघट कियौ सो घट घूमि घालि घालि उठै।
बंक लखि लौटनि मैं लंक की अनोखी अति,
एरी वह लचक हिये मैं हालि हालि उठै ॥३६॥

उन्नत ललाट नैन लोलनि कपोलनि पै,
अधर अमोलनि पै ललकि लुभान्यौ जात।
ग्रीवा कल कंध भुजा उरज उतंगनि पै,
रोमराजी रंगनि पै लखि ललचान्यौ जात ॥

चाँदनी बिलोकन कौं चौहरे अटा पै चढ़ी,
चंद के करेजैं भयौ कठिन कराकौ है।
कहै रतनाकर हँसौं हैं ब्रजचंद हेरि,
फेरि मुख कीन्यौ बाल बीच अचरा कौ है॥
संग की सहेली कह्यौ हेली! मन टोहि कछू,
जोहि कुम्हिलात रूप रुचिर हरा कौ है।
अधर-सुधाधर कौं देखति कहा है उतै,
देखौ यह सुघर सुधाधर धरा कौ है॥४०॥

होरी खेलिबे कौं कढ़ी केसरि कमोरी घोरि,
उमगति आनँद की तरल तरंग मैं।
कहै रतनाकर महर कौ लड़ैतौ छैल,
रोकी गैल आनि हुरिहारनि के संग मैं॥
मो तन निहारि धारि पिचकी-अधार अंक,
मारी मुसुकाइ धाइ उरज उतंग मैं।
सोई पिचकारी रँगी सारी लाल रंग माहिं,
सोई रँगीं अँखियाँ हमारी स्याम-रंग मैं॥४१॥

देखि स्याम सुंदर कौं देखत लगाए दीठि,
पीठि फेरि प्रथम कछूक अनखाति है।
कहै रतनाकर बहुरि मुरि चाहि बंक,
संकित मृगी लौं चकि छरकि छपाति है॥

लखि सखि आज की अनूप सुखमा कौ रूप,
रोपै रस रुचिर मिठास लौन-सीली कौ ।
ललकि लचैबौ लोल लोचन लला कौ इत,
मचलि मनैबौ उत राधिका रसीली कौ ॥४६॥

बीति जाति बातनि मैं सुखद सँजोग-राति,
अंतर थिरात नाहिं साँझ औ सबेरे मैं ।
कहै रतनाकर कुलिस-हिय-धारी भारी,
करत अकाज आप नास हू है हेरे मैं ॥
मिलि घनस्याम सौं तमकि जो बियोग मांहि,
चमकि चमक उपजाई उर मेरे मैं ।
ताके बदले कौ दुख दुसह बिचारि आज,
गरक गई है मनौ बीजुरी अँधेरे मैं ॥४७॥

आज बड़े भागनि मिलैंगे ब्रजराज आइ,
साज सुख-संपति के सिगरे सजाइ दै ।
कहै रतनाकर हमारे अभिलाष लाख,
रजनी रँचक ताहि सजनी बढ़ाइ दै ॥
ढूँढ़ि कै अगस्त कौं बिनै करि बुलाइ बेगि,
कैसें हूँ बुझाइ ऐसौ बानक बनाइ दै ।
बिंध्याचल अचल परयौ है चलि जातैं जाइ,
ओटि उदयाचल कौं मचल मचाइ दै ॥४८॥

मान कियौ मोहन मनीसी मन मौज मानि,
पानि जोरि हारीं जब सखियाँ मन्यौ नहीं ।
तब बरजोरी करि नवल किसोरी भेस,
ल्याईं केलि-भौन नैकु टेकहिं गन्यौ नहीं ॥
प्यारी बनि प्रीतम भुजनि भरि लीन्यौ उन,
कल छल कीन्यौ बहु जात सु भन्यौ नहीं ।
प्रथम समागम सैा सबही बन्यौ पै एक,
अंक तैं छटकि छूटि भाजत बन्यौ नहीं ॥४९॥

दीप-मनि-दिव्य-दीप-दाम-दुति-दीपति सौं,
दीसत न दावँ देह दीठि सौं दुरनि की ।
कहै रतनाकर अनंग-रंग मंदिर कैा,
रंग लखि दंग होतिं अंगना सुरनि की ॥
केलि-सुख-संपति कौं दंपति सकेलि रहे,
आपै अंग आतुरी उमंग की घुरनि की ।
लाजनि लजनि लाड़िली के लोल लोचन की,
बाजनि बजनिये अनूप नूपुरनि की ॥५०॥

करत कलोल केलि-मंदिर अखंड दोऊ,
सुखमा सकेलि ब्रह्मंड के पुरनि की ।
कहै रतनाकर मसूसै मैनका कौं मैन,
सुनि धुनि धीमी घूँघुरुनि के घुरनि की ॥

सोर सिसिकीनि की सुनत सकुचाइ जाइ,
सुरति सिराइ मंजुघोषा कौं सुरनि की।
गंजति गुमान किन्नरी की किन्नरी कौ अरी,
बाजनि बजनि ये अनूप नूपुरनि की ॥५१॥

दीठि तुम्हैं छ्वै छली पलट्यौ रँग, दीसत साँवरौ साज सबै है।
कहै रतनाकर रावरे अंगनि, चेटक पेखि प्रतच्छ परै है॥
देनि हैं गोरस ठाढ़े रहौ उत, रार करैं कछु हाथ न ऐहै।
साँवरे छैल छुवौगे जो मोहिं तौ, गातनि मेरें गुराई न रैहै ॥५२॥

आवन भयौ है पिय प्यारे मन-भावन कौ, सुख-सरसावन कौ जेठ की जहल मैं।
कहै रतनाकर पुताइ राख्यौ प्यारी गेह, घोरि घनसार घनौ चंदन-चहल मैं॥
बिरह बिथानि की कथानि के बखानन कौ, ध्यान हूँ भुलाइ हिय-हौंस की हहल मैं।
मेटत मनोज-पीर मैं टत अधीर दोऊ, नीर सिँचे सुखद उसीर के महल मैं ॥५३॥

ननद जिठानी सास सखिनि सयानी मध्य,
बैठी हुती बाल अलबेली जहाँ आइ कै।
कहै रतनाकर सुजान मनमोहन हूँ,
आए ललचाइ तहाँ कछु मिस ठाइ कै॥
चहत बनै न भरि लोचन दुहूँ सौं अरु,
रहत बनै न नार नैं सुक नवाइ कै।
दुरि दुरि औरनि सौं जुरि जुरि तौरनि सौं,
घुरि घुरि जात नैन मुरि मुसकाइ कै ॥५४॥

गूँथन गुपाल बैठे बेनी बनिता की आपं,
हरित लतानि कुंज माहिँ सुख पाइ कै।
कहै रतनाकर सँवारि निरवारि बार,
बार बार बिबस बिलोकत बिकाइ कै॥
लाइ उर लेत कबौं फेरि गहि छोर लखैं,
ऐसे रही ख्यालनि मैं लालन लुभाइ कै।
कान्ह-गति जानि कै सुजान मन मोद मानि,
करत कहा हौ कह्यौ मुरि मुसुकाइ कै॥५५॥

मुख-चंद की चारु मरीचिनि सौं, दृग दोउनि के सियराने रहैं।
रतनाकर त्यौं मुसकानि लजानि के, हाथनि दोऊ बिकाने रहैं॥
इनकैं रँग वै उनकैं रँग ये, रुचि सौं दिन रैनि रँगाने रहैं।
पुलकाने रहैं मुलकाने रहैं, सुख साने रहैं हरियाने रहैं॥५६॥

बैठी बनि स्याम बाम मंजुल निकुंज-धाम,
काम हू पै तैसी......................।
कहै रतनाकर कै लाल कौं अनूप बाल
जाकौ बिधि हूँ पै रूप ढारत बनै नहीं॥
ल्याईं तहाँ सुघर सहेली चहुँ फेर घेरि,
बिकस्यौ बिनोद सो उचारत बनै नहीं।
उत तौ बनै न अंक भरत निसंक चाहि,
वाहि इत ढीली हू निवारत बनै नहीं॥५७॥

नाक कैं चढ़ावत पिनाक भौंह ढोली परैं,
चढ़त पिनाक भौंह नाक मुसकाइ दै ।
कहै रतनाकर त्यौं ग्रीवहूँ नवाइ लिऐं,
मुख तैं टरैं न नैन गौरव गवाइ दै ॥
अनख बढ़ावत अनंग की तरंग बढ़ै,
धीरज-धरा तैं मन-पायहिँ उठाइ दै ।
रहति हियैं ही हैंस हिय की हमारे हाय,
पैयाँ परैं नैंक मान करिबौ सिखाइ दै ॥५८॥

जानि इकंत भरी भुज कंत भयौ, तबहीँ तहाँ आइबौ तेरौ ।
ताउन लागे रिसाने से ह्वै कछु, देखत भौंह चढ़ाइबौ तेरौ ॥
छाँड़ि दई 'सब जाननीं जान द्यौ', यौं सुनि कै सतराइबौ तेरौ ।
मारिबौ पी कौ न सालत है अब, सालत सौति छुड़ाइबौ तेरौ ॥५९॥

सोई फूल सूल से भए हैं सुख-मूल अबै,
ताप-मद चंदन अनंग-कदंही भयौ ।
कहै रतनाकर जो फनि-फुतकार हुतौ,
सब-सुखसार मलयानिल वही भयौ ।'
फरकि हमारे वाम अंग की फरक ही सौं,
बाम सौं सुदच्छिन प्रभाव सबही भयौ ।
कालिह ही भयौ हो वीर विषम विषाकर कौ,
आज सो सुधाकर सुधाकर सही भयौ ॥६०॥

मान ठानि बैठी जितै सुंदरी तितै है कढ़ी,
वाम एक श्यामल सघन बन खोरी कौं।
कहै रतनाकर दिखाई दै दुरति चलि,
सुरति ठगोरी देति ठठकि किसोरी कौं॥
सो लखि अनख नखि बिलखि दबाए पाइ,
आई केलि-कुंज गहिबे कौं कान्ह चोरी कौं।
इत उत जौ लौं वह हेरन ससंक लगी,
तौ लौं अंक साँवरी निसंक भरी गोरी कौं॥६१॥

रति बिपरीति रची प्यारी मनमोहन सौं,
करि कै कलोल केलि कसक मिटाए लेति।
हिय हलकोरनि सौँ झमकि झकोरनि सौँ,
किंकिनी के सोरनि सौँ उर उमगाए लेति॥
उच्च कुच-कोरनि सौँ जुग-जंघ-जोरनि सौँ,
मैन के मरोरनि सौँ दुमुचि दबाए लेति।
अंग-अंग अमित अनंग की तरंग भरी,
प्रथम समागम कौ बदलौ चुकाए लेति॥६२॥

प्यारे परवीन कौँ बनायौ नवला नवीन,
नायक प्रवीन बनि आप उर लाए लेति।
छल कै छबीलौ ज्यौँ ज्यौँ भरन न देत अंक,
त्यौँही त्यौँ निसंक भुज भरि लपटाए लेति॥

झूमि झूमि लेति सुख चूमि चूमि लेति मुखं,
दूमि दूमि ऊरुनि तैं उर तैं दवाए लेति।
पूरन प्रभाव बिपरीति कौ प्रकासि प्यारी,
प्रथम समागम कौ बदलौ चुकाए लेति ॥६३॥

मान ठानि सुघर सुजान सखियानि बीच,
बैठी जहाँ भीचि भाइ आनँद उमंग के।
कहै रतनाकर पधारे घनस्याम तहाँ,
सुखमा-समूह धारे कोटिक अनंग के ॥
चलि चलि जात तितै रोकत रुकैं न नैन,
तब छै छबी छल राखन कौं रंग के।
दै दियौ हँसौंहैं हेरि घेर पट घूँघट कौ,
कै दियौ कुरंग कैद मुख मैं तुरंग के ॥६४॥

चोप चाक चढ़ि चख नोकनि खरादे गए,
बिरह-बिषाद-खाद-खचित लखात हैं।
लाख-अभिलाष-अनुराग-राग-रंजित है,
कहै रतनाकर सनेह सरसात हैं ॥
कान्ह ही से पीर-हीन पीर कैं परे हैं पानि,
चलि चकडोर लौं अधीर अकुलात हैं।
आस-गुन-ऐंचनि सौं बिबस बिचारे प्रान,
आनि अधरानि फेरि फिरि फिरि जात हैं ॥६५॥

मारै मन मारै पै न सैन मृगनैनिनि पै,
घूँटै विष घूँटैं ना सुधाऽधर पियाली मैं ।
चोप ना चढ़ावै भौंह-वाढ़ पै उतारि देहि,
घाट के असी पै वरु नारहिं उताली मैं ॥
विषधर काली की फनाली मैं परै तौ परै,
भूलि हूँ परै न कहूँ भूलि अलकाली मैं ।
देहि मुख-चंदै अनुराग मैं न मन देहि,
सादर मयंकैं वरु वादर गुलाली मैं ॥६६॥

जोबन की माँगति जगाति इठलाति जाति,
अलख जगावति अनंग-प्रभुताई की ।
कहै रतनाकर गुसाइनि निराली एक,
आली धरे अंगनि विभूति सुघराई की ॥
भोर ही तैं हेरि फेरि पौरि पै रही है रमि,
टेरि टेरि याही धुनि आसिष सुहाई की ।
चारु मुख-चंद की अमंद छवि गाढ़ी रहै,
बाढ़ी रहै अंग अंग लहर लुनाई की ॥६७॥

बैठी रहौ कीने कुलकानि की कहानी कान,
कोऊ अभिमानी मान गौरव बृथा ही कौ ।
कोऊ पुरजन कैं कलंक ओट कोऊ करि,
गुरुजन-संकहिं निसंक चिलता ही कौ ॥

कोऊ बेद-विहित विधाननि बनाइ ग्रान,
कोऊ मिस आन ठानि बानक सिला ही कौ।
जादूगर छैल की अचूक चितवनि-सेल,
झेलिबे कौं चाहियै करेजौ राधिका ही कौ ॥६८॥

हारीं हाथ जोरि मानि मन्नत करोर हारीं,
तोरि हारीं तृन कै कछू सौ दया भीजियै।
जासौं मन-भावन कौं सुख-सरसावन कौं,
जीवन जुड़ावन कौं अंक भरि लीजियै ॥
आपने अठान की रह्यौ है राखि रूई कान,
करत न कानि कछू याही दुख छीजिये।
बिधना सुनत काहू बिधि ना हमारी हाय,
बिधि ना बनति कोऊ राम कहा कीजिये ॥६९॥

जब तैं बिलोक्यौ बाल लाल बन-कुंजनि मैं,
तब तैं अनंग की तरंग उमगति है।
कहै रतनाकर न जागति न सोवति है,
जागत औ सोवत मैं सोवति जगति है ॥
डूबी दिन रैन रहै कान्ह-ध्यान-वारिधि मैं,
तोहूँ विरहागिनि की दाह सौं दगति है।
धूरि परौ एरी इहिं नेह दईमारे पर,
जाकी लाग पाइ आग पानी मैं लगति है ॥७०॥

हेरैं हूँ न हेरै दृग फेरैं हूँ न फेरैं दृग,
बैकल सी वा गुन उधेरति बुनति है।
कहै रतनाकर मगन मन हीं मन मैं,
जानै कहा आनि मन गौर कै गुनति है।
होति थिर कबहूँ छनेक फिरि एकाएक,
भाँतिनि अनेक सीस कबहूँ धुनति है।
घालि गयौ जब तैं कन्हैया नेह काननि मैं,
तब तैं न नैकुँ कछू काहू की सुनति है।।७१।।

हारीं करि जतन अनेक संगवारी सबै,
छन-छन अंग सोई रंग गहरत है।
कहै रतनाकर न ताती बात हूँ कैं घात,
छाई चिकनाई कौ प्रभाव भहरत है।।
आँस-मिस नैननि तैं रस-मिस बैननि तैं,
अंगनि तैं स्वेद-कन ह्वै कै ढहरत है।
भीन्यौ घट जब तैं सनेह नटनागर कौ,
तब तैं न बीर धीर-नीर ठहरत है।।७२।।

मोहन-रूप लुनाई की खानि मैं, हौं नख तैं सिखलौं इमि सानी।
ह्वै रही लौनमई रतनाकर, सो न मिटै अब कोटि कहानी।।
सील की बात चलाइ चलाइ, कहा किए डारति हौ हमैं पानी।
जानि परै मम जीवन सौं हठि, हाथ ही धोइबे की अब ठानी।।७३।।

पीर सौं धीर धरात न बीर, कटाच्छ हूँ कुंतल सेल नहीँ है।
ज्वाल न याकी मिटै रतनाकर, नेह कछू तिल-तेल नहीँ है॥
जानत अंग जो झेलत है यह, रंग गुलाल की झेल नहीँ है।
थाम्हैं थमैं न बहैं अँसुवा यह, रोइबौ है हँसी-खेल नहीँ है ॥७४॥

चातक चहत ज्यौं रहत स्वातिबुंद ही कौं,
मानसर हू कौ मन मान ना धरत है।
कहै रतनाकर मलिंद मकरंद त्यागि,
कंद-रस हू सौं न अनंद उधरत है॥
भीषम पितामह की अमित अनोखी प्यास,
जैसैं बीर पारथ कौ तीर ही हरत है।
जाहि पर्यौ चसकौ कटाच्छ-असि-पानिप कौ,
त्यौं हीं सो सुधाहू कौ सवाद निदरत है॥७५॥

जमुना सनान कै सुजान रस-खानि चली,
अंग-रंग बसन सुरंग चालि चालि उठै।
कहै रतनाकर उठाइ पट घूँघट कौ,
चितई चपल सो चितौनि सालि सालि उठै॥
साँप लै खिलौने कौ खिलंदरी सहेली एक,
औचक दिखायौ फन जाकौ फालि फालि उठै।
उझकि झपाक झुकि झझकि हटी सो बाल,
एरी वह लचक हिये मैं हालि हालि उठै ॥७६॥

सबही बिधि रावरौ होइ चुक्यौ, तऊ चूर न कीजै परेखन हीँ।
रतनाकर रावरे ही हित की, कहूँ स्वारथ कौ चित लेस नहीँ॥
लिए दर्पन ज्यौँ कर माहिँ रहै, कोऊ आप रहै पुनि दर्पन हीँ।
निज रूप लुभाने सदा तुम यौँ, मन लै हू रहे पै बसौ मन हीँ॥७७॥

धन धारत चोरी कौ चोर चुराई कै, त्रासनि राखत पास नहीँ।
रतनाकर पै यह रीति महा, बिपरीत ढिठाई की भाजन हीँ॥
कहौ कौन के आगैँ पुकार करैँ, जब न्यावहूँ रावरैँ आनन हीँ।
यह चोरी नहीँ बरजोरी इहा, मन लै हूँ रहौ पै बसौ मन हीँ॥७८॥

ज्वालनि के जाल है बगारत चहूँघाँ इठि,
जारत जो जीव हाय बिरह-दुखारी कौ।
कहै रतनाकर न धीर उर आन्यौ जात,
भेद न बखान्यौ जात बेदन हमारी कौ॥
ऐसौ कछु बानक बनाइ बिनती कै जाइ,
जासौँ सियराइ आप दाप ताप-कारी कौ।
सरस अनंद छाइ सब दुख-दंद हरै,
मंद करै चंदहिँ अमंद मुख प्यारी कौ॥७९॥

खेलौ हँसौ जाइ कै सहेली तुम कुंजनि मैँ,
हाँसी खेल खोइ भौन-कौन अभिलाष्यौ है।
कहै रतनाकर रुचै सौ दहौ जाइ उतै,
प्रेम कौ पियालौ माप राख करि चाप्यौ है॥

जानति नहीँ है उर आनति नहीँ है पीर,
मानति नहीँ है बीर लाख बार भाष्यौ है।
बात-बल सौँ ना जाइ ध्यान-पट टूटि हाय,
सोर ना करौ री चित-चोर मूँदि राष्यौ है ॥८०॥

दीन बिरहीनि की दुसह दुखहाई दसा,
दीसति अनोखी अति जाति न कछू भनी।
कहै रतनाकर न रंचक हूँ चैन परै,
मैन परै पैँडैं लिए पंचबान की अनी ॥
राति हूँ न चंद-ब्रती-मन-मुरझानि जाति,
दिन हूँ दिखाति ठिठुरानि हिय मैँ ठनी।
घाम सुधा-धाम कुमुदिनि पै बगारत औ,
मानौ रबि कंजनि पै ढारत है चाँदनी ॥८१॥

आइ अठखेलिनि सौँ अमित उमंग भरैँ,
जिनके प्रसंग सैाँ तरुनि अंग थहरैँ।
जीवन जुड़ावैँ रस-धाम रतनाकर कौ,
मानस मैँ जिनसौँ तरंग मंजु छहरैँ ॥
अंग लागि मेरैँ बिन बाधक सुखेन सोई,
ऐसी कब भाग-पुंज होहिँ कुंज ढहरैँ।
दंद हरैँ हीतल कौ, कौन नँद-नंद ? नाहिँ,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैँ ॥८२॥

तपि बिरहा सौं रसिक रसीली रही,
कहत बनै न दसा हेरि हेरि हहरैं।
सीरी साँस प्यारे तव नाम सौं रही जो बसि,
सिथिलित आई कै हिये मैं जब सहरैं॥
तब कछु जीवन जुड़ाइ हरि जाइ ताप,
ढंग होत औरै बलि अंग अंग थहरैं।
जैसैं भानु-तपित मही-तल कौ दंद हरैं,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं॥८३॥

आई भुजमूल दिए सुघर सहेलिनि पै,
बाग मैं अजान जानि प्रान कछू बहरैं।
कहै रतनाकर पै औरहूँ बिषाद बढ़्यौ,
याद परैं सुखद सँजोग की दुपहरैं।
धीरज जर्‌यौ औ जिय ज्वाल अधिकानी लखि,
नीरज-निकेत स्वेत-नीर-भरी नहरैं।
दंद-मई दुसह दुचंद भईं सीतल कौं,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं॥८४॥

नींद लै हमारी हूँ दुनींदे है सुनींदे सोए,
सुनत पुकार नाहिं परी हौं चहल मैं।
कहै रतनाकर न ऐसी परतीति हुती,
प्रीति-रीति हाय हियैं जानी ही सहल मैं॥

F. 44

देखत हीँ आपने दृगनि हितहानी करी,
अब पछिताति परी ताहि की दहल मैँ।
बीर मैँ अजान बलबीरहिँ निवास दियौ,
नीर-सिँचे बरनी-उसीर के महल मैँ ॥८५॥

गुंजित मलिंद-पुंज सघन निकुंज जहाँ,
लूक लगै हीतल कौं सीतल सुहाई है।
कहै रतनाकर तहाँ हीँ फूल लेत तोहिँ,
जोहि रही कान्ह कैँ अमान बिकलाई है॥
आवत उतै तैँ अबै नैँसुक निहारि दसा,
उर मैँ हमारे तौ कसक अति आई है।
बैठे आँस ढारत सँभारत न साँस एरी,
तेरी मधुराई लगी लोचन लुनाई है ॥८६॥

दृग देखत सोई दसौ दिसि मैँ, रहैं वाही तरंग मैँ दंग परी।
रतनाकर त्यौं रसना उहिँ नाम की, माधुरी कैँ रस-रंग परी॥
मुरली धुनि ही कौ सनाकौ सुनैं, यह काननि बानि कुढंग परी।
जब तैँ हिय कूप मैँ आनि अनूप, सखी हरि-रूप की भंग परी ॥८७॥

टारि पट घूँघट कौ जबतैँ निहारि घूमि,
घायल किए तैँ कान्ह कालिंदी कैँ कूल हैँ।
कहै रतनाकर कपूर चंद चंदन हूँ,
देत ताप तब तैँ अँगारनि के तूल हैँ॥

तेरी गली छाँड़ि कै न जात बन-बागनि मैं,
सुखद निकुंज भए भूरि-दुख-मूल हैं ।
रंग रूप रुचिर बिलोकि तव आनन कौ,
सूल लगे लागन गुलाबनि के फूल हैं ॥८८॥

बैठे बन बिकल बिसूरत गुपाल जहाँ,
औचक तहाँई बाल-जोगी इक आइगे ।
कह्यौ रतनाकर उपाय हम ठानैं कछु,
जानैं जदि कापै आप एतिक लुभाइगे ॥
ताही छन छाइगे छलक इत आँस नैन,
बैन उत आवत गरे लौं बिरुझाइगे ।
पाइगे न जानैं कहा मरम दुहूँ के दुहूँ,
हँसि सकुचाइ धाइ हिय लपटाइगे ॥८९॥

तब तो हजार मनुहार कै रिझाई पर,
अब उपचार के बिचार सब ख्वै गए ।
कहै रतनाकर ललकि उर लैबौ कहा,
पाइ हूँ अनेकनि उपाइ सौं न छ्वै गए ॥
देखत तौ वैसेई लगत पर साँची सुनौ,
सरस सनेह के सुगंध-गुन ग्वै गए ।
पैठत ही प्यारे मन मुकुर हमारे हाय,
सारे रुख दाहिने तिहारे बाम ह्वै गए ॥९०॥

देतिँ हमैँ सीख सिखि आईँ सो कहाँ सैाँ कहाै,
सीखी सुनी नीति की प्रतीति नहिँ पेखेँ हम।
कहै रतनाकर रतन रूप औषध कौ,
जानत प्रभाव जो न तासैाँ कहा रेखैँ हम॥
प्रानहूँ तैँ प्यारी तौ प्रमानैँ कुलकानि पर,
वह मुसकानि कानि हूँ तैँ प्रिय लेखैँ हम।
देखी जिन नाहिँ तिन्हैँ देखत दिखावैँ कहा,
देखि कै न देखैँ फेरि नैकु तिन्हैँ देखैँ हम॥९१॥

आइ समुझावति तू हाय हमकौँ है कहा,
ल्याइ कै मिलाइ किन नंद-दुलरा दै तू।
कहै रतनाकर चहति आँस रोकन तौ,
वाही पद-पंकज की रज कजरा दै तू॥
नाइनि तिहारे गुन गायन करौंगी नित,
पाइ परौँ अंक बल-भायहिँ भरा दै तू।
सोचन लगी है कहा मरति सकोचनि तौ,
हरि के हमारे एक लोचन करा दै तू॥९२॥

देखत हमारी हूँ दसा न इठिलानि माहिँ,
आपनी तौ बानि ना विलोकत अठानि मैँ।
कहै रतनाकर उपाइ ना बसाइ कछू,
जासौँ लखौ भाइ-भेद उभय दिसानि मैँ॥

पावतौ कहूँ जौ कोऊ चतुर चितेरौ तौ,
दिखावतौ सुभाव सोधि कलित कलानि मैं।
रिझवन-आतुरी हमारी अँखियानि माहिँ,
खिझवनि चातुरी तिहारी मुसकानि मैँ ॥९३॥

हा हा खाइ हाय कै दुखी है दूरिहीँ सौं देखि,
सैननि मैँ मंजु मूक बैन जे उचारे हैँ।
कहै रतनाकर न रंच तिनकी है सुधि,
विकल हिये के भाय सकल बिसारे हैँ॥
हौं तौ रही दंग देखि निपट निरालौ ढंग,
भाव उलटे ही सब अब तुम धारे हैँ।
पावत ही धाम मन-मुकुर हमारैँ स्याम,
दच्छिन तैँ वाम भए तेवर तिहारे हैँ ॥९४॥

कीजै कहा हाय तासौं चलत उपाइ नाहिँ,
पाइ पीरहूँ जो पर-पीर उर आनै ना।
कहै रतनाकर रहै ही मुख मौन गेह,
कहे सुने भाव के प्रभाव भेद मानै ना॥
सकल कथा कौं सुनि पूछत व्यथा जो पुनि,
जानिहूँ जथारथ बृथा जो गुनि जानै ना।
मानै ना अजान तौ सुजान के मनैयै ताहि,
कैसैँ समझैयै जो सुजान बनि मानै ना॥९५॥

आँखि दिखावति मूँड़ चढ़ी, मटकावति चंद्रिका चाव सौं पागी।
त्यौं रतनाकर गुंज की माल, लगी छतिया हुलसै रँग-रागी॥
कंदुक हू उमगै कर पाइ, सखी हमहीं सब भाँति अभागी।
रोकति साँसुरी पाँसुरी मैं, यह बाँसुरी मोहन कैं मुख लागी॥९६॥

देख्यौ तुम्हैं देखत सुदेखै ताहि देखनि सौं,
इत उत देखि करै सैन रिझवार सी।
कहै रतनाकर बिलोकि पुनि बिंब माहिँ,
सोई भाव बाढ़ै चाव-चटक अपार सी॥
मोहैं नारि नारि कैं न रूप जो सुनी है सो तौ,
ताकी दसा देखि बात लगति असार सी।
जब तैं बसे हैं आनि नैननि तिहारे नैन,
रैनि द्यौस तब तैं बिलोक्यौ करै आरसी॥९७॥

प्रेम-रस-पान पाइ अमर भए जो जग,
सो सुठि सुधा कौं कहि अंमृत बखानैं ना।
कहै रतनाकर त्यौं बिरह ब्यथा कौं झेलि,
हेलि हिय मीच कौ जनम जग जानैं ना॥
हम ब्रज-चंद मंद-हास पै रही हैं कटि,
तीखे चंद-हास सौं हरास उर आनैं ना।
समरस स्याम के बिलोचन बिलोकि बीर,
काम कौ बिसम-सर नाम मन मानैं ना॥९८॥

हाय हाय करत बिहाइ दिन रैनि जात,

कटिबौ सुहात सदा सैननि सिरोही सौं।

कहै रतनाकर उदासी मुख छाइ जाति,

हाँसी बिनसाइ जाति आनन बिछोही सौं ॥

भूख प्यास बूझतिँ झँवात झहरात गात,

छार ह्वै बिलात सुख-साज सब रोही सौं।

हाय अति औपटी उदेग-आगि जागि जाति,

जब मन लागि जात काहू निरमोही सौं ॥९९॥

जाहि लपटाइ ताहि लेदि लपटाइ जोई,

जाइ लपटाइ सोई जानै गति याकी है।

नैकुँ मुरझाइ नाहिँ नित उरझाइ सुर-

झाइ पिय बिन ऐसी छाती कहौ काकी है॥

ज्वालनि की जारी तऊ पैयै हरियारी ऐसी,

प्रेम रस-वारी मतवारी ममता की है।

काम की लगाई अनुराग की जगाई बीर,

खेल मति जानौ यह बेल बिरहा की है॥१००॥

भरि जीवन गागरी मैं इठलाइ कै, नागरी चेटक पारि गई।

रतनाकर आहट पाइ कछू, मुरि घूँघट टारि निहारि गई॥

करि वार कटाच्छ कटारिनि सौं, मुसकानि मरीचि पसारि गई।

भए घाय हिये मैं अघाय घने, तिनपै पुनि चाँदनी मारि गई॥१०१॥

नजर धरा पै अधरा पै पपरानि परी,
कर दै कपोल लोल लोचनि कहा करै।
कहै रतनाकर कन्हैया कहूँ देखि पर्यौ,
करति दुराव कहा प्रगट दसा करै।
यौं सुनि सखी के बैन सजल लजीले नैन,
नैसुक उठाए जिन्हैं हेरन बिथा करै।
लाज काज दुहुनि दबायौ दुहुँ ओरनि सौं,
भान परे साँकरे न हाँ करै न ना करै ॥१०२॥

जानत जान हूँ मैं बिरलै कोऊ, कौन अजाननि कौ कहौ लेखौ।
है रतनाकर गूढ़ महा गति, नेह की नीकैं बिचारि कै देखौ॥
भीति मिटैं हूँ न नीति मिटै अरु, नीति मिटैं हूँ न रीति कौ रेखौ।
रीति मिटैं हूँ न प्रीति मिटै अरु, प्रीति मिटैं हूँ मिटै न परेखौ ॥१०३॥

न रही वह नैकुँ हूँ टेक भटू, यह दीन पनौ गहनोई पर्यौ।
रतनाकर मैं परि प्रेम के नेम, औ लाज हूँ कौं बहनोई पर्यौ॥
न सकी सहि बीर बियोग बिथा, तब बिह्वल ह्वै चहनोई पर्यौ।
टरि टारि कै हारि गुपाल सौं हाय, हवाल हमैं कहनोई पर्यौ ॥१०४॥

सिख कौन कौं देति कहा सजनी, हमकौं बिष-बेलिही बोइबौ है।
रतनाकर त्यौं कुलकानि-प्रपंचनि, लै कलकान न होइबौ है॥
उर नींदन कैं सो डराहिं भलैं, जिनकौं सुख नींदनि सोइबौ है।
बरजौ वृथा ढारिबे सौं अँसुवा, हमैं जीवन सौं कर धोइबौ है ॥१०५॥

बीस बिसैं मानतीं कहानी काम जारन की,
आनि बिरहीनि सौं न अब अरुझात्यौ जौ।
कहै रतनाकर जुन्हाई ज्वाल होती सही,
तासौं और हिय कौ न घाव हरियात्यौ जौ॥
जानतीं भुजंगम की साँस मलयानिल कौं,
मुरछि परैं न फेरि चेत सरसात्यौ जौ।
बिष कौं बखानतीं सुधाकर कौ साँचौ बंधु,
माँगैं हूँ कहूँ सौं रंच आज मिलि जात्यौ जौ॥१०६॥

लागत न नैकुँ हाय औषध उपाय कोऊ,
झूठी झार फूँकहू फकीरी परी जाति है।
कहै रतनाकर न वैरी हू बिलोकि सकैं,
ऐसी दसा माँहिं सो अहीरी परी जाति है॥
रावरौ हू नाम लिऐं नैननि उघरैं नाहिँ,
आह औ कराह सबै धीरी परी जाति है।
पीरी परी जाति है वियोग-आगि हू तौ अब,
विकल विहाल बाल सीरी परी जाति है॥१०७॥

मंद भईं साँसैं औ उसासैं बढ़ि बंद भईं,
दुख सुख रीति की मतीति दहि गई है।
कहै रतनाकर न आँस रह्यौ नैननि मैं,
ताही संग आस-बासना हू बहि गई है॥

अब तौ उपाय कछू तुमहीँ बनै तौ करौ,
चातुरी हमारी तौ सकल ढहि गई है।
लीन्हैं नाम रावरौ कछूक चौंकि चेतति ही,
सोऊ समुझन की न चेत रहि गई है ॥१०८॥

धीर धरनीस के बियोग-दुखहू मैं देखि,
सोभा सुभ वैसियै सुधाकर बदन की।
सेनप बसंत के प्रबीन परिचारक जे,
पिक परिपाटी पढ़े नेह निगदन की॥

....
.... ।
....
.... ॥१०९॥

हौं तौ हुती मगन लगन-लौ लगाए हाय,
लाए उर सुरति सुजान प्रान-प्यारे की।
कहै रतनाकर पै सबद सुनाइ टेरि,
फेरि सुधि दीनी धाइ बिरह बिसारे की॥
कामिनी कौ नातौ मानि दामिनी दया कै नैंकु,
कसक मिटाइ देती मानस हमारे की।
पारि देती आज वा कलापी के गरे पै गाज,
जारि देती जीहा वा पपीहा बजमारे की ॥११०॥

निकस्यौ कहूँ हौं ब्रज-गाम है सुनौ हो स्याम,
धाम धाम देखीँ वाम वाम ही मनाली पै।
कहै रतनाकर न हौं तो भेद पायौ कछू,
तुमहू चकैहौ चित कठिन कुचाली पै॥
कीन्हे रहैँ दीठि कौँ कृसानु-नीठि नादन पै,
दीन्हे रहैँ पीठि चारु चंद्र-चंद्रिकाली पै।
माने रहैँ वायस कौँ पायस-पियाली देन,
ताने रहैँ तुपक दुनाली काकपाली पै॥१११॥

अंतक लौं विरही जन कौं पुनि वायु बसंत की दागन लागी।
कागनि के हित काग की पाली नए षटरागनि रागन लागी॥
कुंजनि गुंज मधुब्रत की विष के रस की रुचि-पागन लागी।
फूले पलास की आगनि सौं बनवाग दवाग सी लागन लागी॥११२॥

भूरि-सुगंध-भरे दिग-छोरनि कोकिल जागि सुरंग सी दागी।
वैरी बसंत बन्यौ विन कंत कहा करिहैँ अब अंत अभागी।
हेरि हरे भरे कानन मैँ अति आगि पलास की रासि सौं लागी।
छीरसी चाँदनी मैँ सजनी अलि-भीर हलाहल घोरन लागी॥११३॥

हाल बाल परी है विहाल नँदलाल प्यारे,
ज्वाल सी जगी है अंग देखैँ दीठि जारे देति।
प्रेम लोकलाज मिलि विरह त्रिदोष भयौ,
कहै रतनाकर सु नैन नीर ढारे देति॥

सत्तर धनन्तर से हारि रहे आनि मुख,
चंद्रोदय आखिरी इलाज है पुकारे देति।
झाँवरी भई है दुति बावरी भई है मति,
और की कहा है सुधि रावरी बिसारे देति ॥११४॥

दुख कौ अहार रह्यौ वारि रह्यौ आँसनि कौ,
साँसनि कौ सब्द मूरछा की नींद कल तैं
कहै रतनाकर पिछानै ना पिछानी जाति,
सेज मैं समानी जाति कृसता कहल तैं॥
जौ पै तुम्हैं वहम जियति कैसैं ऐसैं तीव,
कान दै सुनौ जू हौं बतावति सरल तैं
प्रान कौं सकत अधरान लौं न आवन कौं,
अबला जियति लाल निर्बलता-बल तैं ॥११५॥

कान्ह के प्रेम-व्यथा की कथा तुम ऊधौ जथाविधि भाषि सुनाई।
त्यौं रतनाकर आँसनि की अरु साँसनि की सब बात बताई॥
एतियै और कहौ करुना करि जातैं मिटै चित की दुचिताई।
जोग-सनेस बखानत मैं मुसकानि हूँ आनन पै कछु आई ॥११६॥

हौं ही रच्यौ वैसैं हीं सुरुचि-अनुकूल चुनि,
सोई फूल फूलत जो कुंज कल केली के।
दोस बिन हाहा रोस हम पै न कीजै बलि,
रोकी बन गैल छैल आवत अकेली के॥

नाम सुनि रावरो बिलोकन लगेई हठि,
हुलसि सराहि भूरि भाग बन-बेली के।
लागत हीं हाथ ब्रजनाथ के नवेली यह,
हार कुम्हिलाने चारु चटक चमेली के ॥११७॥

मान कै न मानति हौ जानि कै न जानति हौ,
तुम बिन प्यारे मनमोहन दुखारे हैं।
कहै रतनाकर न जानैं कहा ठाने मन,
बृंदाबन बीथिनि बिसूरत सिधारे हैं॥
बाल दिखराइ कै मसाल के मिसाल दुति,
लीजियै बचाइ ठाढ़े कुंज मैं बिचारे हैं।
उमड़ि घुमड़ि मढ़ि आए चहुँघाँ तैं घेरि,
मेघ मनमथ के मतंग मतवारे हैं ॥११८॥

सुलह न मानति हौ रारि बृथा ठानति हौ,
जानति हौ हाल छल-बल के निधान कौ।
कहै रतनाकर अनंग के तुरंग चढ्यौ,
संग छबि-कटक बिजै-कर जहान कौ॥
आनि बलबीर धीर तीर बरसैहै जब,
अधर-कमान तानि बिनै-बखान कौ।
छूटि जैहै हुमक सुभट हठहू कौ सबै,
टूटि जैहै बीर टूटि जैहै गढ़ मान कौ ॥११९॥

देख्यौ बन-गैल आज छैल छरकीलौ एक,
लोटत धरा मैं परयौ धीरज न धारै है।
कहै रतनाकर लकुट बनमाल कहूँ,
मुकट सुढाल कहूँ लुठित धुरारै है ॥
काकौ कौन नैकुँ निरवारत न नीकैं बोलि,
खोलि कछु बेदन कौ भेद न उघारै है।
आँस भरि आधौ नाम राम कौ उचारै पुनि,
साँस भरि आधैं बैन धेनु कौं पुकारै है ॥१२०॥

चसकौ परै ना मान-रस कौ कहूँधौं वाहि,
लीजै बात रंचक बिचारि हित हानि की।
कहै रतनाकर तिहारे सुबरन पर,
दमक दुलारी देति तमक तवानि की ॥
रोष की रुखाई रुख आवत सुसीली होति,
मंद मुसकानि लै रसीली अँखियानि की।
होत मृदु मीठे सीठे बचन तिहारे पाइ,
कंठ कोमलाई मधुराई अधरानि की ॥१२१॥

जानति न जानि कहा मान ठानि बैठी बीर,
बानि यह एरी सब भाँतिनि अनीठी है।
कहै रतनाकर प्रभाकर-उदोत होत,
तौहूँ रस-राँचति न ऐसी भई सीठी है ॥

ब्यापति तिन्हैं न मान मिरच तिताई नैंकु,
 पावति सवाद-सुख ऐसौ कछु दीठी है।
स्याम-सहतूत लौं सलूनी रस-रासि भरी,
 सूधी तैं सहस्र गुनी टेढ़ी भौंह मीठी है ॥१२२॥

बिलग न मानियै बिहारी वर वारी बैस,
 कहा भयौ जोपै अनखौंहीं करी दीठी है।
तुम रतनाकर सुजान रस-खानि वह,
 निपट अयानि वासौं ठानी क्यौं अनीठी है ॥
सरस सु रोचक मैं आकृति विचार कहा,
 कैसैंहूँ विगारौ नाहिं होनहार सीठी है।
टेढ़ी तैं सहस्र गुनी सूधी भौंह मीठी अरु,
 सूधी तैं सहस्र गुनी टेढ़ी भौंह मीठो है ॥१२३॥

एरी ब्रज-जीवन की जीवन अधार वेगि,
 सहज सिँगार सौं पधारि सरवर पैं।
कहै रतनाकर न वात कहिवे कौ समै,
 ठसक उठाइ ताइ दीजै सिकहर पैं ॥
लाग अनुराग की रही है इमि लागि सही,
 जाति विरहागि ना दवागि-पान-कर पैं।
प्रबल बियोग-रोग निबल कियौ है इमि,
 धीरज धर्‌यौ न जात लाल गिरिधर पैं ॥१२४॥

बिनती बखानी अनगिनती न मानति हौ,
किनती सिखायौ मान करिबौ कुँवर पै।
कहै रतनाकर रिझाएँ नाहिँ रीझति हौ,
खीझति हौ उलटी कपोल दिए कर पै॥
पलटि प्रभाव परयौ पाँचही घरी मैं यह,
आवत अचंभौ जाति आँगुरी अधर पै।
एरी अबला तू गुरु मान इत धारै उत,
धीरज धरयौ न जात लाल गिरिधर पै॥१२५॥

हा हा खात द्वार पै दुखी ह्वै द्वारपालनि कौ,
नाइनि औ मालिनि की बिनती महा करै।
कहै रतनाकर कहै तो बोलि ल्याऊँ उन्हैँ
बहुत भई री अब सुंदरि छमा करै॥
सुनि सखि बानी सतराइ मुसकानी बाल,
ताकि छबि ताकि कौन कबि कबिता करै।
अनख अनोखी ललचानि रस-पोषी बीच,
प्रान परे साँकरैँ न हाँ करै न ना करै॥१२६॥

प्यार-पगे पिय प्यारे सौँ प्यारी कहा इमि कीजति मान-मरोर है।
है रतनाकर पै निसि बासर तो छबि-पानिप कौँ तरस्यौ रहै॥
है मनमोहन मोह्यौ पै तोपर है घनस्याम पै तेरौ तौ मोर है।
है जगनायक चेरौ पै तेरौ है है ब्रज-चंद पै तेरौ चकोर है॥१२७॥

अति अभिराम रस-धाम घनस्याम आनि,
घूमत चहूँघाँ रहैं नैकुँ हूँ न कल मैं ।
कहै रतनाकर प्रतच्छ अच्छ औरै प्रभा,
जिनके प्रभाव सौं पगी है थल थल मैं ॥
ऐसैं सुभ और न सुहात मानि मेरी बात,
ताप मिटि जैहै सब एक ही निपल मैं ।
चलि कै निकुंज माहिँ लहि सुख-पुंज बीर,
बैठी कहा करति उसीर के महल मैं ॥१२८॥

ललित त्रिभंग जाके अंग कौ बनाव नीकौ,
रति के धनी कौ रंग फीकौ दरसाए देत ।
कहै रतनाकर कछूक बाँसुरी जो फूँकि,
तान बनितानि हेत नावक बनाए देत ॥
सोई बैठि बिकल बिसूरत निकुंज माहिँ,
तोहिँ रूप जोवन अनूप गरवाए देत ।
अचल न रैहै यह मचल तिहारी बीर,
चल चख ताके चल अचल चलाए देत ॥१२९॥

पाइ रासमंडलहरास जो उदास भयौ,
ताके दाव पावन की आन चढ़ि जाति है ।
कहै रतनाकर न तातैं कछु भाषैं आन,
तोहिँ सुनि और हूँ अठान चढ़ि जाति है ॥

एरी वृषभानुजा तिहारे दृग-बाननि पै,
ज्यौंहीं सुरमे सौं सुठि सान चढ़ि जाति है।
रूप-गुन-गरब-मथैया मनमोहन पै,
त्यौं हीं मनमथ की कमान चढ़ि जाति है ॥१३०॥

तुम तौ बिगारि बैठीं बेष हौ खिझावन कौं,
मेरी जान सो तौ ताहि अधिक रिझावैगौ।
कहै रतनाकर न ध्यान यह आनति हौ,
मान यह औरहूँ अठान ठनवावैगौ॥
दैहै हास-औसर अनौसर परोसिनि कौं,
सौतिनि कौं चेत्यौ चित बानक बनावैगौ।
भावैगौ कहूँ जौ यह रूप रसिया कौं तोपै,
रूसिबौ ही रूसिबौ तिहारैं बाँट आवैगौ ॥१३१॥

आए तहाँ औचक कछूक अतुराए कान्ह,
चुनति हुती हौं जहाँ सुमन सुबेली के।
कहै रतनाकर चपल चहुँ ओर चाहि,
पैठत ही मंजुल निकुंज कल केली के॥
गात मुरझाने उर हार कुम्हिलाने कल,
पल्लव सुखाने बर बल्लरी नवेली के।
आई माल गूँथन गुपाल-हेत ह्याँ हौं सुनि,
हँसत तिहारे फूल झरत चमेली के ॥१३२॥

ठनगन ठानति कहा है ठकुरानी यह,
　　ठसक तिहारी सब भाँतिहिँ अनीठी है।
कहै रतनाकर रुचै न रसिया कौं कहूँ,
　　फेरि पछितैहै परी बानि यह ढीठी है॥
हौं तौ हित मानौं हित बातहि बखानौं तुम,
　　तापै अनुमानौ यह करति बसीठी है।
बंद करि दीन्यौ मुख नंद के लला कौ बीर,
　　सूधी तैं सहस्र गुनी टेढ़ी भौंह मीठी है॥१३३॥

आई नंद-मंदिर मैं सुंदरी सलोनी बाल,
　　वेष किए सुघर गुसाइनि गुनीली कौ।
कहै रतनाकर गुपाल कौ हवाल हेरि,
　　नैन भरि आए रुँध्यो बैन गरबीली कौ॥
अधर दबाइ भाइ हिय कौ दुराइ बैठि,
　　बरबस बानक बनाइ अनसीली कौ।
लीन्यौ जस पुंज नयौ मान पारि माननि मैं,
　　काननि मैं फूँकि नाम राधिका रसीली कौ॥१३४॥

प्यारे मनमोहन मनाई समुझाई तुहूँ,
　　हौं न चित लाई ताकौ सोच निसरा दै तू।
अब पछितात अकुलात मान जात बीर,
　　कछु करि जाइ ल्याई पाइनि परा दै तू॥

राखि लै री बात मेरी, तेरी सौंह, आज निज,
चातुरी कौ ऊनौ सौ नमूनौ दिखरा दै तू।
फिर न करौंगी मान मान हूँ गए पै वीर,
अब कैं हमारौ मान-मोचन करा दै तू ॥१३५॥

कुंजनि मैं गुंजत मलिंद मतवारे फिरैं,
बिरही बिचारे दुखधारे मन-मन मैं।
कहै रतनाकर रसीले घनस्याम अंक,
चाय-भरी चपला चमकैं छन-छन मैं ॥
ऐसैं समै प्रीतम-वियोग-भावना हूँ भएँ,
रहत न धीर पीर पूरि तन-तन मैं।
मान कौं न मेली करि अब अलबेली देखि,
हेली लगी फूलन चमेली बन-बन मैं ॥१३६॥

कत अटवी मैं जाइ अटत अठान ठानि,
परत न जानि कौन कौतुक बिचारे हैं।
कहै रतनाकर कमलदल हू सौं मंजु,
मृदुल अनूपम चरन रतनारे हैं ॥
धारे उर अंतर निरंतर लड़ावैं हम,
गावैं गुन विविध विनोद मोद वारे हैं।
लागत जो कंटक तिहारे पाय प्यारे हाय,
आइ पहिलैं सो हिय बेधत हमारे हैं ॥१३७॥

देखि वह होत काम-बंधु कौ उदोत बीर,
इत उत किरन कलाप छिटकावै है।
कहै रतनाकर चलति किन कुंज अबै,
सो तौ सबही कौ हटि हटकि हटावै है॥
सुनि सुभ सीख चढ़ी रथ पै मनोरथ के,
खूँद मन-मचला-तुरंग पै मचावै है।
तानै इत मान की मरोर निज ओर उत,
बेगि चलिवे कौं चंद चाबुक चलावै है॥१३८॥

उठि आए कहाँ तैं कहौ तौ सही अँखियानि मैं नींद घलाघल है।
रतनाकर त्यौं अलकैं बिथुरीं औ कपोलनि पीक-झलाझल है॥
मधुरे अधरा लखि अंजन-लीकहिं मान की होति चलाचल है।
उन हाय बिसासिनि कीनो दगा धरि कंद मैं भेज्यौ हलाहल है॥१३९॥

आए प्रभात प्रभा भरे अंगनि जीति मनौ रस-रंग-अखारौ।
बैन कह्यौ इमि भावती सैन सौं दाग बतावति कज्जल वारौ॥
कीजत क्यौं न परैं पट सौं बलि है यह भौंर भयानक कारौ।
बैठत तौ अधरा पर रावरे पै हिय बेधत हाय हमारौ॥१४०॥

जानति हौं जैसे तुम छलके निधान, कान्ह,
ताहु पर मोहिं प्रेम-पूरन-पगे लगौ।
कहै रतनाकर कपोलनि लै पीक-लीक,
मोकौं तुम मेरे अनुरागहिं रँगे लगौ॥

जैसैं दरपन मैं दिखात उलटैई सब,
सूधौ पर जानि जात जब लखिबे लगौ।
मेरे मन मुकुर अमल स्वच्छ माहिं त्यौंहीं,
कपट किएँ हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥१४१॥

अंजन अधर औ कपोल पीक-लीक लसै,
रसिक बिहारी बेस बानिक बने लगौ।
कहै रतनाकर धरत डगमग पग,
तातैं मोहिं मेरे ही बियोग मैं जगे लगौ ॥
जानत जगत सब तैसौही दिखात ताकौं,
जैसौ चसमौ है जब जाके चष मैं लगौ।
नेह की निकाई छाई नैननि हमारैं तातैं,
कपट किएँ हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥१४२॥

आए उठि भात गोल गात अलसात मुख,
आवति न बात भाल भावत कसीस है।
कहै रतनाकर सुधाकर मुखी सो लखि,
बिलखि न बोली रही नीचैं करि सीस है ॥
कर कुच-कोर ओर बढ़त पिया कौ पेखि,
भावती चढ़ाई भौंह भाव यह दीस है।
जानि पंचबान की चढ़ाई ईस-सीस मानौ,
रीस करि तानत कमान रजनीस है ॥१४३॥

एरी मीच नीच ना मचाइ इमि खीचा खीच,
जाइ उहाँ कैसैं बीच सौ गुनैं सहैंगी हम।
कहै रतनाकर ठई है उर औरै अब,
अबलौं भई सो भई अब ना डहैंगी हम॥
भरि भुज भेंटि जो न पैहैं तौ न पैहैं भलैं,
लाहु इन नैननि कैा ललकि लहैंगी हम।
गरब गुमान सब भेट करि तेरी एरी,
सौति हूँ की चेरी औ कमेरी है रहैंगी हम॥१४४॥

डारे कहूँ शृंगी भृंगी-गन गुनि टारे कहूँ,
बरद बिचारे कौं बिसारे बिचरन मैं।
आनँद-अपार-पारावार के हलोरनि मैं,
दौरि डगमग पग धारत लगन मैं॥
पुलक गँभीर प्रेम-बिहल सरीर छए,
नीर अधखुले अनिमेष दृग-तन मैं।
चूमि चटकाइ अँगुरीनि रस-घूमि झूमि,
झाँकी लेत ललकि पिनाकी मधुबन मैं॥१४५॥

लाल की ललक रंग रेलन की रूलि गई,
भूलि गई हिम्मत हुमक लखि बाल की।
बाल की मिसाल हूँ न हाथ इत उत हल्यौ,
पिचकी उबी की उबी रहिगी रसाल की॥

साल की न नैननि की नैँकु हूँ सँभाल भई,
लागी टकटकी दसा ह्वै गई बिहाल की।
हाल की कहै को जब आधे पल पेखि राधे,
मूठि सी चलाई मूठी भरि कै गुलाल की ॥१४६॥

मौज भरी साजन मनोज-सेज भौन लागीं,
आतुर तुराई की तुलाई होन लागी है।
कहै रतनाकर रँगीन चीर चोलनि की,
परदे अमोलनि की चोप चित पागी है॥
आवत हिमंत दूरि चंदन कपूर भए,
केसर कुरंग-सार माहिँ रुचि रागी है।
सुमिरि अनंद केलि मंदिर कौ सुंदरीनि,
अमित अनंग की तरंग अंग जागी है॥१४७॥

बरसत पाला पौन लागत कसाला होत,
गाला होत हिम कौ दुसाला सियरान सौं।
कहै रतनाकर प्रभाकर निकाम होत,
काम होत नैँ कहूँ न तपता कृसान सौं॥
ऐसे समय मान करिबे मैं अपमान होत,
भान होत बावरी बिकल कलकान सौं।
घर घर घैर होत सौतिनि कैं सैर होति,
बैर होत प्रबल प्रपंची पंचबान सौं॥१४८॥

कैधौं अति दुसह दवागि की दपेट कैधौं,
बाड़व की विषम झपेट-झर-झार है।
कहै रतनाकर दहकि दाह दारुन सौं,
उगिलत आगि कैधौं पावक-पहार है॥
रुद्र-दृग तीसरे की कैधौं विकराल ज्वाल,
फेकत फुलिंग कै फनिंद फुफुकार है।
कैधौं ऋतुराज-काज अवनि उसास लेति,
कैधौं यह ग्रीषम की भीषम लुआर है॥१४९॥

जोहि प्रतिबिंब मोहि मोहन न मोहै कहूँ,
यह मनमोहिनी करति चित चेत है।
कौन तुम सुंदरी सकारैं हीं पधारी भौन,
कहति चितौनि सौं जनाइ हिम-हेत है॥
अति सुकुमारी भूरि-भूषन-सँवारी तुम,
कित धौं पधारीं इत हरि को निकेत है।
बरबस नारिनि कौ सरवस बानिक सो,
हेरि मन-मानिक समेत हरि लेत है॥१५०॥

होरी खेलिबे कौं रंग रुचिर कमोरी घोरि,
गोपी-ग्वाल-मंडल अखंड उमगान्यौ है।
कहै रतनाकर बजावत मृदंग चंग,
गावत धमार मार अंग सरसान्यौ है॥

छाई छिति धारनि अपार पिचकारिनि की,
जोहि नर-नारिनि बिमोहि अनुमान्यौ है।
फाग-सुख-हाँस रोकि राखन की आस आज,
जाल अनुराग कौ बिसाल ब्रज तान्यौ है ॥१५१॥

अंबर मैं बादल गुलाल को रह्यौ जो छाइ,
सोई है पितंबर कैा रंग करसत है।
कहै रतनाकर मुकेस बूका धूरि हूँ तैं,
पूरि चहुँ कोद रस-मोद बरसत है ॥
अब कैं अनंग-रंगकार की कृपा सौं कछू,
परम अनोखैा यह ढंग दरसत है।
परसत जोई लाल रंग इन अंगनि मैं,
सोई स्याम रंग है करेजैं सरसत है ॥१५२॥

आए चहुँ ओर तैं घुमंडि घनघोर घेरि,
टक्करनि लेत ज्यौं मतंग मतवारे हैं।
कहै रतनाकर धराधर अकास धरा,
एकमेक है कै धूमधार-रंग धारे हैं ॥
कत्तड़ान कड़ान घड़ान घड़ेन्न घड़ेन्न घेन्नडान,
धधकतान धधकतान धधकतान वारे हैं।
मनसा-महान-बिस्व-बिजय-बिधान आनि,
बाजत ये मदन-महीप के नगारे हैं ॥१५३॥

बरसन लागे मेघ मूसर-समान धार,
ब्रज पै प्रहार की अपार अनया चली।
कहै रतनाकर अखंडल के तोषन कौं,
लै लै ग्वाल मंडली प्रचुर पनया चली॥
हाथ जोरि हारे मानि मन्नत करोर हारे,
तोरि हारे तृन पै न नैंकु मनया चली।
भानु-तनया को ठहरान करि ध्यान लिए,
मुरली लुकाई बृषभानु-तनया चली॥१५४॥

रूपक कै कुच कौं कह्यौ है संभु प्राचीननि,
सोई धुनि आधुनिक धुनत हनोज हैं।
कहै रतनाकर पै कैसैं ये महेस भए
मनसिज-मीत ताकी पावत न खोज हैं॥
नेह-न्याय-नीर मन-मानस मैं जाके,
ताकैं मंजु मुख मंडित ये वचन सरोज हैं।
ज्यौं जुग नकार प्रकृतारथ दृढ़ावत त्यौं,
जुगल उरोज-संभु ब्यावत मनोज हैं॥१५५॥

परम-प्रमोद-प्रभा-पुंज प्रतिबिंबनि तैं,
ब्रज रसधाम दाम दीपति कौ है गयौ।
कहै रतनाकर त्यौं दुख-तप-ताप-तपे,
जीवन कौ दंद छुव्यौ छेम क्युनौ क्यौ॥

गोपी-ग्वाल-गैयनि के गौरव गुमान बढ़े,
सुजस सुगंध कौ सुऔसर ठयौ नयौ।
नंदराय-मंदिर अमंद उदयाचल तैं,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदय भयौ ॥१५६॥

पाप-पंकजात जातुधान मुरझान लगे,
प्रफुलित गोपी-गोप-गैयनि कौं कै दयौ।
कहै रतनाकर अनन्य व्रतधारिनि कौ,
सब दुख दंद दूरि देखत हीं है गयौ॥
दूषन विहीन सीस-भूषन दिगंबर कौ,
जासौं छिति अंबर कौ आनँद महा छयौ।
नंद-पुन्य-पूरब-अपूरब पयोनिधि सौं,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयौ ॥१५७॥

जोहत अटारी पुर-द्वारी सब नारी नर,
जानि मनभावन कौ आवन-समै भयौ।
कहै रतनाकर उचाइ पग चाय चढ़े,
चपल चितौत चोप चित अति सै भयौ॥
ताही बीच मोद की मरीचि आई आनन पै,
चारौं ओर सोर यह सानँद सलै भयौ।
गोरज-समूह-घन-पटल उघारि वह,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयौ ॥१५८॥

धुंधरित धूम-धार-धुरवा निवारि वह,
तपित-त्रिताप-ही-हिमाकर उदै भयौ।
कहै रतनाकर त्यौं जड़ता बिदारि वह,
सुरस-सुसीलता-सुधाकर उदै भयौ॥
बिरह-विषाद-तम-तोम निरवारि वह,
चखनि-चकोर-चंद्रिकाकर उदै भयौ।
गोरज-समूह-घन-पटल उघारि वह,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयौ॥१५९॥

तीर जमुना कैं स्याम-सुंदर सुजान कहा,
आनँद निधान बीर बाँसुरी बजावै है।
कहै रतनाकर स्वरूप सुखमा पै नैन,
नाम-रस-रोचक पै रसना रचावै है॥
नासा मृदु बास पै सुनान-माधुरी पै कान,
परस उमंग मृदु अंग पै लुभावै है।
मानौ मन-मंदिर-प्रवेस-कामना सौं काम,
पाँचौ पौरिया कौं आस-आसव छकावै है॥१६०॥

देखन न पैयत अघाइ ब्रज-भूप रूप,
मन की ममूसैं मन ही मैं रुलि जाति हैं।
कहै रतनाकर मिलै जौ कहूँ औसर हूँ,
तौ पै ये अनौसर अनीत तुलि जाति हैं॥

ठानति जिती हौं ठान भरि दृग देखन कौं,
सौंहैं होत ते सब डगरि डुलि जाति हैं।
डुलि डुलि जाति हैं सँकोचनि प्रतच्छ पेखि,
देखैं सपने मैं ये निमेषैं खुलि जाति हैं ॥१६१॥

जिनके चरित्र तैं बखानि रसखानि आनि,
चित्रहूँ दिखायौ जैसी और चित्रकारी ना।
कहै रतनाकर लख्यौ सो सपने मैं सखी,
वैसौ कहूँ साँच ही स्वरूप रुचिकारी ना॥
लागी उर लागन ललाइ त्यौंहीं जागी हाय,
लागी तबही तैं पल पलक हमारी ना।
ऐसे समै घात कै सिधारी जो नकारी नींद,
तातैं दईमारी फेरि पलट सिधारी ना ॥१६२॥

मोहैं मनमोहन अमोही नैंकु जोहैं जाहि,
द्रवि दृग ढारैं बारि भए मतवारे हैं।
कहै रतनाकर झँवात मुरझाए जात,
उठत अमाप तन ताप के तँवारे हैं॥
पावत न जोग उपयोग उनकौं है कछू,
पारे मुरचात ते निषंग मैं बिचारे हैं।
सान सुरमे की चढ़ि लोचन तिहारे जुग,
पाँचौ बान काम के निकाम करि डारे हैं ॥१६३॥

कैतौ उहिँ रूप मैं अनूपम प्रभा है कछू,
पावत प्रवेस लेसहू जो निकरै नहीं ।
कहै रतनाकर कै मुकुरहि ऐसौ यह,
जामैं परयौ पुनि प्रतिबिंब उबरै नहीं ॥
दोउनि कैं जोग कै सँजोग दइ आनि बन्यौ,
पूरब कौ भोग कै निबेरैं निबरै नहीं ।
नैंकु समुहाइ पैठि जाइ उर मैं पै फेरि,
मूरति टरैं हूँ स्याम सूरति टरै नहीं ॥१६४॥

सूधैं हूँ सुभाइ नैंकु देखत अघाइ धाइ,
घूमत गुपाल सो निरेखत बनै नहीं ।
कहै रतनाकर न देखैं दृग-दाह होत,
सोऊ दुख दुसह उपेखत बनै नहीं ॥
दोऊ भाँति बात बनो ऐसा है अनैसी कछु,
जाहि चाहि कछुक उलेखत बनै नहीं ।
लेखत बनै नहीं प्रपंच पंचसायक कौ,
देखत बनै नहीं न देखत बनै नहीं ॥१६५॥

सुनि मुरली की धुनि धाइ धाम धामनि सौं,
आनि जुरीं बान रैन रेती की निकाई मैं ।
कहै रतनाकर मचाइ स्याम संग रंग,
लागीं रास करन उमंग-अधिकाई मैं ॥

झलमल अंगनि की बसन सुरंगनि की,
  झलकन लागीं झुकि झूमि झमकाई मैं।
आई तरु-रंध्रनि सौं मानहु जुन्हाई इनि,
  आनन जुन्हाई लसी सरद जुन्हाई मैं ॥१६६॥

तुम तौ न जानैं कौन छैल कैं छकी हौ रंग,
  डोलति हौ ताही की उमंग अंग गाँसी है।
कहै रतनाकर मुकुट बनमाल धरे,
  मृगमद-लेप करे ताकी प्रतिमा सी है॥
दरपन मैं सो स्वाँग देखन हमारैं धाम,
  आवतिं सुरैहै हाय कबहूँ बिनासी है।
कोऊ जौ अदेखी देखिहै तौ लेखि है धौं कहा,
  हाँसी परि जाइगी हमारे गरैं फाँसी है ॥१६७॥

काम-दाह अंतर निरंतर जगीयै रहै,
  आठौं जाम जीभ नाम रटत सुखाई है।
कहै रतनाकर रह्यौ जो घट जीवन सो,
  सोखे लेति उघटि उसास-अधिकाई है॥
तलफत सो तौ लखि तोहिं रस-आस लाइ,
  तेरैं तन तनक न दीसति द्रवाई है।
मंजु मुकता लौं तन पानिप भयौ तौ कहा,
  जौ पै रंच कान्ह की तृषा न सियराई है ॥१६८॥

गंगा-लहरी

मंगलाचरण

कहत विधाता सौं बिलखि जमराज भयौ,
अखिल अकाज है हमारी राजधानी कौ।
सुरसरि दीनी ढारि भूप के भुलावे माहिँ,
कीन्यौ नाहिँ नैँकुहूँ बिचार हित-हानी कौ॥
निज मरजाद पै कछू तौ ध्यान दीजै नाथ,
कीजै इमि प्रगट प्रभाव बर बानी कौ।
पावैँ नर नारकी न रंचक उचारि क्यौँहूँ,
गंगा-कौ गकार औ चकार चक्रपानी कौ॥१॥

जद्यपि हमारे पाप-पुंज अति घाती तऊ,
जनम जनम के सँघाती निरधारै तू।
कहै रतनाकर ममात इमि मात गंग,
तातैं तिन्हैं नासन के ढंग ना विचारै तू ॥
काक करै कोकिल बलाक कलहंस करै,
आक ढाक जैसैं सुरतरु कै सँवारै तू।
त्यौंहीं पलटाइ काय तिन पै लगाइ छाप,
पुन्यनि के कलित कलाप करि डारै तू ॥२॥

साजि फेरि वसन बिभूषन अदूषन कौं,
चारु स्रक चंदन सुगंध सरसैहैं हम।
हुलसि हिये मैं गुनि कहति गिरा यौं पुनि,
बीना-धुनि-संग राग रंग भरयौ गैहैं हम ॥
कीन्ही करतूत जो कपूतनि अपूत ताकौ,
प्राच्छित कै धूत ह्वै बहुरि छबि छैहैं हम।
बैठि कै रसीली रसना पै रतनाकर की,
पैठि कै उमगि गंग-धार मैं नहैहैं हम ॥३॥

बेधि बुधि बिधि के कमंडल उठावतहीं,
धाक सुरधुनि की धँसी यौं घट-घट मैं।
कहै रतनाकर सुरासुर ससंक सबै,
बिबस बिलोकत लिखे से चित्र-पट मैं ॥

लोकपाल दौरन दसौं दिसि हहरि लागे,
हरि लागे हेरन सुपात बर बट मैं ।
खसन गिरीस लागे त्रसन नदीस लागे,
ईस लागे कसन .फनीस कटि-तट मैं ॥४॥

बिधि के कमंडल तैं निकसि उमंडि धाइ,
आइ कै खमंडल मैं ख़ल-बल डारै है ।
कहै रतनाकर पुरंदरपुरी मैं पुनि,
अति उद्वेग वेग-धमक पसारै है ।
तमकि त्रिलोक के त्रितापहिं बहाइ वेगि,
बाड़व बनाइ बरुनालय मैं पारै है ।
ताही की उतंग ज्वाल-मालनि सौं गंग फेरि,
पातक अपार के अगार जारि डारै है ॥५॥

उड़त फुहारन कौ तारन-प्रभाव पेखि,
जम हिय हारे मनौ मारे करकनि के ।
चित्र से चकित चित्रगुप्त चपि चाहि रहे,
बेधे जात मंडल अखंड अरकनि के ॥
गंग-छीँट छटकि परै न कहूँ आनि इतै,
दूत इमि तानत बितान तरकनि के ।
भागे जित तित तैं अभागे भीति-पागे सबै,
लागे दौरि-दौरि देन द्वार नरकनि के ॥६॥

फबति फुही जो फैलि छवति अकास माहिँ,
तिनके बिलास कौ बिकास इमि भावै है।
कहै रतनाकर रतन सब ही कौ संग,
तिनके प्रसंग मैँ सुढंग छबि छावै है॥
मानौ हरि राग गंग निखिल नहैयनि के,
रंग रंग रेलि मंजु मिसिल लगावै है।
पुनि सखि जमुना-पिता कौं उपहार-रूप,
करि मनुहार मनि-हार पहिरावै है॥७॥

संभु की जटा तैँ कढ़ि चंद की छटा सी फैलि,
हिम के पटा पै प्रभा-पुंजनि पसारै है।
कहै रतनाकर सिमिट चहुँघा तैँ पुनि,
छोटे-बड़े सोतनि के गोत है ढरारै है॥
मिलि मिलि सोतनि तैँ नारे बहु बेगि बनै,
धार है अपार पुनि घोर रोर पारै है।
सगर-कुमारनि के तारन कौं धावा किए,
मानहु भगीरथ कौ पुन्य ललकारै है॥८॥

अस्तुति-बिधान गान करत बिमान-चढ़े,
देवनि की दिव्य छटा छहरति आवै है।
कहै रतनाकर त्यौँ दूरि दूरि ही तैँ दुरी,
जम की जमाति हेरि हहरति आवै है॥

फहरति आवै कंदरप की पताका-रासि,
पारस-पखान-खानि ढहरति आवै है।
आगैं चले आवत भगीरथ भगाए रथ,
गंग की तरंग पाछैं लहरति आवै है ॥९॥

बिधि बरदायक की सुकृति-समृद्धि-वृद्धि,
संभु सुर-नायक की सिद्धि की सुनाका है।
कहै रतनाकर त्रिलोक-सोक नासन कौं,
अतुल त्रिविक्रम के बिक्रम की साका है॥
जम-भय-भारी-तम-तोम निरवारन कौं,
गंग यह रावरी तरंग तुंग राका है।
सगर-कुमारनि के तारन की स्त्रेनी सुभ,
भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है॥ १० ॥

दुरित दरीनि कंदरीनि कौं बिदारि बेगि,
चारौं ओर-छोर सोर आपनौ भराए देति।
कहै रतनाकर त्यौं पाप-खानि-खाड़ी आनि,
द्रोह दुरमति कलि रेलुष ढहाए देति॥
करम करारे दुख-दारिद दिना द्रुम,
देखत दरारे करि काटि महराए देति।
पुन्य-सील सलिल सुकृत-बर-बारी सींचि,
सुरसरि-धार फल चारिहूँ फराए देति ॥११॥

दोऊ ओर राजी हैं बिसद बनराजी बर,
नंदन की सोभा सुभ जिनमैं बिराजी हैं।
कहै रतनाकर सुपाँति पसु-पच्छिनि की,
भाँति-भाँति रमति सुहाति सुख-साजी हैं॥
गंग-जल पाइ कै अघाइ बिसराइ बैर,
बिहरत महिष मतंग बाघ बाजी हैं।
नाचत मयूर मंजु फनि फुत्कारनि पै,
डारनि पै बाज औ बटेर बदैं बाजी हैं ॥१२॥

परसत नीर तीर बंजुल निकुंज कहूँ,
और फल-फूल की न सूल उर ल्यावैं हैं।
कहै रतनाकर पसारे कर गंग ओर,
सुरपुर-पंथ कहूँ तरु बिखरावैं हैं॥
मृग कलहंस बत्ती बरद मयूर सबै,
पाइ जल ग्रीवहि उचाइ मटकावैं हैं।
चंद, चतुरानन, पँचानन, षड़ानन के,
याननि के हेरि हँसि आनन बिरावैं हैं ॥१३॥

करम-पहार-हार-मरम बिदारति औ,
कूट-कलि कलुषनि कंडति चलति है।
कहै रतनाकर उमंडति उछारि आप,
ताप पै बरुन अस्त्र छंडति चलति है॥

दारिद-दुरूह-व्यूह कठिन करारनि औ,
दुख-द्रुम-भारनि विहंडति चलति है।
खंडति अखंड दोष-दाप-भार खंडनि कौं,
मंजु महि-मंडल कौं मंडति चलति है ॥१४॥

देवधुनि न्हाइ न्हाइ चंद-मुखी-वृंद-चारु,
देखि जिन्हैं मान मेनका के मले जात हैं।
कहै रतनाकर विभूषन बसन धारि,
झारिनि मैं मंजुल सुवारि रले जात हैं॥
पेखि पाकसासन-पुरी मैं गंग-सासन सौं,
भूरि अमृतासन नवीन छले जात हैं।
मानौ लोक लोक के सुधाकर के आकर ये,
लै लै सुधा-धार बसुधा सौं चले जात हैं ॥१५॥

तेरी लहरी के कल गान सुनिबे कौं ठानि,
वीनापानि सौंहैं रहै नित चित चाइ कै।
गुन गन तेरौ उर जानि रतनाकर कैं,
चंचला चलै ना ताहि तनक विहाइ कै॥
हंस की कहै को परम्हंस आइ सेवैं तोहिं,
छीर-नीर-न्याय मानसानँद बिहाइ कै।
जूटी रहैं अखिल सुधासन-बधूटी तट,
तव जल-मासन कौं आसन लगाइ कै ॥१६॥

आवत हीं ध्यान मैं विधान तिहिं धावन कौ,
अद्दस अपावन कौ कटत करारा है।
कहै रतनाकर सु ताके सिकता मैं चारु,
चमकत दीन पातकीन कौ सितारा है॥
बाढ़ै दिन दूनौ राति चौगुनौ प्रताप ताकौ,
जाकौ बीचि-व्यूह चलै पढ़त पहारा है।
आरा है अनूप काटिबे कौं पाप-डारा अरु,
गंग-धुनि-धारा जम-धार कौं दुधारा है॥१७॥

कलुष बहाइ कै महान महिमंडल कौ,
अरक-लला के सब नरक पटाए देति।
कहै रतनाकर त्यौं करम-बगीची-बीच,
पुन्य-जल सींचि फल चारिहूँ फराए देति॥
जमपुर-पंथिनि के पातक पथेय पोत,
गंग निज तरल तरंगनि डुबाए देति।
हरि हरि तीछन त्रिताप तिहुँ लोकनि के,
बागर लौं बेगि भवसागर सुखाए देति॥१८॥

कैधौं संभु नैन तीसरे की सदा सन्निधि सौं,
सार-स्रोति स्रवति सुधाकर-सुधा की है।
कहै रतनाकर कै लीक पुन्य पद्धति की,
कैधौं माँग मोतिनि सौं पूरित धरा की है॥

जग-जन-लाज-काज सारी कै सतोगुन की,
सुघर सँवारी सुभ सुकृत-कला की है।
कैधौं हरि-पद-अरविंद-मकरंद मंजु,
महिमा अपार धार सुर-सरिता की है ॥१९॥

विधि हरि हर की न जाती असुहाती विधि,
दीन वितहीन पापलीन तरसैबे की।
कहै रतनाकर त्यौं सुकृति-समाज लखैं,
टरती न देवराज-टेव अरसैबे की ॥
सुरधुनि-धार जौ न धावती धरा पै धारि,
धुनि सुख सुखमा अपार सरसैबे की।
पावते कहाँ तौ सत्व-स्वाति-परजन्य अन्य,
त्रिभुवन-धन्य जुक्ति मुक्ति बरसैबे की ॥२०॥

पानी कौ सुढार किधौं पावक की झार लसै,
धार कै तिहारी सार समुझि न आवै है।
कहै रतनाकर सुभाव लच्छ लच्छनि कै,
रावरौ प्रभाव लै विलच्छन बनावै है ॥
सुकृत फरावै झरसावै झार दुःकृत कौ,
ताप सियरावै जन-पापहिं जरावै है।
गंग तव नोखौ ढंग जगत उजागर है,
सागर भरावै भवसागर सुखावै है ॥२१॥

धारे लेति छीन करि पातक-पहार पीन,
जारे देति कुमति कुबास छत-छानी है।
कहै रतनाकर ज्यौं धूरि उधिराए देति,
चूर करि भूरि दोष-दारिद-गलानी है॥
ठाए देति अटल समाधि आधि ब्याधिनि कौं,
सपदि बहाए देति बिपति निसानी है।
गंग यह रावरी तरंग परमालय है,
पावक है पौन है पृथी है किधौं पानी है॥२२॥

संकर की सिद्धि औ समृद्धि चतुरानन की,
हरि-महिमा की बृद्धि सुखमा सुधा की है।
कहै रतनाकर सुरूप-रुचिराई धरे,
अगुन सगुन ब्रह्म ब्यापक दुधा की है॥
कहत बिचारि लाख बातनि की बात एक,
जामैं संक नैंकहूँ बिडंबना मुधा की है।
बेद औ पुराननि कौ सार निरधार यहै,
गंग-धार जीवन-अधार बसुधा की है॥२३॥

मानत न नैंकु निरबान पदवी कौ मान,
तेरी सुख-साजी बनराजी मैं धँसत जो।
कहै रतनाकर सुधाकर सुधा न चहैं,
तेरौ जल पाइ कै अघाइ हुलसत जो॥

बंक बिधि-लेख की न रेख रहि जात तासु,
दिव्य सिकता लै भव्य भाल मैं घसत जो।
हँसत हुलास सौं बिलास पर देवनि के,
तेरैं तीर परन-कुटीर मैं बसत जो ॥२४॥

दुख-द्रुम-झाड़ काटै धाड़ काटै दोपनि की,
पातक पहाड़ काटै सब जग जानी है।
कहै रतनाकर त्यौं जम के निगड़ काटै,
करम-कुलिस-पाट काटि ना किरानी है॥
ऐसी साल नाहिँ नख माहिँ नर-केहरि के,
ऐसी बिकराल कालहू की ना कृपानी है।
दंग होति धारना न होति निरधार नैँकु,
गंग तव धार मैं धरचौ धौं कौन पानी है ॥२५॥

टेरि-टेरि कोकिल करति गुन-गान ताकौ,
हेरि-हेरि ताहि हंस-अवली सिहाति है।
कहै रतनाकर बिसद बिरुदाली तासु,
वायस-भुसुंडी सौं उचारी ना सिराति है॥
ताकी सुनि काकली बिहाइ पाप-राति जाति,
जोहि-जोहि जम की जमाति डरपाति है।
बैठत जो काक गंग-तीर-आक-ढाकनि पै,
ताकी धाक नाक-नगरी मैं बँधि जाति है ॥२६॥

लोटि-लोटि लेत सुख कलित कछारनि कौ,
सुर-तरु डारनि कौ गौरव गहै नहीं ।
कहै रतनाकर त्यौं काँकर औ साँक चुनि,
चारु मुकता फल पै नैंकु उमहै नहीं ॥
हेम हंस होन की न राखत हिये मैं हौंस,
नंदन के कोकिल कौं कलित कहै नहीं ।
गंग-जल तोषि दोषि सुकृत सुधासन कौ,
काक पाकसासन कौ आसन चहै नहीं ॥२७॥

जाइ जमराज सौं पुकारे जमदूत सुनौ,
साहिबी तिहारी अब लाजतै रहति है ।
पापिनि की मंडली उमंडि मोद मंडित,
अखंडल के मंडल लौं राजतै रहति है ॥
सापी परतापी औ सुरापी हू न आवैं हाथ,
तिनहूँ पै छेम-छत्र छाजतै रहति है ।
दंगा करैं हमसौं हमेस हठि भृंगी-गन,
गंगा संभु-सीस-चढ़ी गाजतै रहति है ॥२८॥

ऐसे राज-काज प्रभुता सौं बस आए बाज,
आजलौं भई सो भई हम ना भुरैहैं अब ।
कहै रतनाकर-बिहारी सौं पुकारे जम,
हर-गन गब्बर सौं नाहिँ अरुझैहैं अब ॥

खाते खीस होत लिखे निखिल नहैयनि के,
खोजैं कहाँ तिनकौं त्रिलोक माहिं पैहैं अब ।
देखि रंग-ढंग ये अनोखे बस दंग भए,
तंग भए भूरि गंग हमहूँ नहैहैं अब ॥२९॥

जाइ पाकसासन पुकारै कमलासन सौं,
अब मन सासन मढ़ावत मढ़ै नहीं ।
तुम तौ गनत रतनाकर तरंग बैठि,
मेरी बिनै चित पै चढ़ावत चढ़ै नहीं ॥
आवत चल्यौ जो इत गंग कौ पठायौ नित,
ऐसौ थित होत सो कढ़ावत कढ़ै नहीं ।
थोक उनकी तौ जाति बाढ़ति अरोक सदा,
सीमा सुरलोक की बढ़ावत बढ़ै नहीं ॥३०॥

रवनी रुचिर गज-गवनी महीपनि की,
दीपनि की जिनकी जगाजग जगी रहै ।
कहै रतनाकर अन्हातिं जब तो मैं मात,
चाहि चाहि कौतुक चकात सुनासीर है ॥
ज्यौं हीं जल-केलि मैं कलोलत नवेलिनि के,
गजमुकता कैं हार हलकत नीर है ।
त्यौं हीं दिव्य याननि पधारि बपु भव्य धारि,
नंदन मैं भरति गयंदन की भीर है ॥३१॥

सुरसरि न्हान जात पातकी निहारि कोऊ,
पातक जमाति चहै घात करि टारिबौ।
कहै रतनाकर कहति समुझाइ धाइ,
रावरे न जोग भोग एतौ मूढ़ मारिबौ॥
जोलौं करि साथ एते साधन न साधि लेहु,
तौलौं है कुढंग गंग-मग पग धारिबौ।
संवरारि जारिबौ उतारिबौ सु अंबर कौं,
धारिबौ त्रिसूल जग-सूल कौ निवारिबौ॥२२॥

तुम तौ अन्हाइ गंग जानत न जैहौ कहाँ,
ऐहौ फिरि फेरि ना विरंचिहू के फेरे तैं।
कहै रतनाकर यौं पातक हमारे कहैं,
चलत तिहारी बात मात पुन्य मेरे तैं॥
ऐसौ कौन और जो सँभारिहै हमारौ भार,
धारिहै चढ़ाइ सीस आदर घनेरे सौं।
छाड़ते न क्यौंहूँ संग सुखद तिहारौ पर,
चलत न चारौ गंग-गन के गरेरे सौं॥२३॥

धाए फिरौ पापिनि कौं खोजत जहाँ हीं तहाँ,
दीसत दुव्यौ सो है तिहारौ काम तारिबौ।
जोही अब लौं तौ रतनाकर तिहारी बाट,
बार ना लगावौ अब चाहौ जौ उबारिबौ॥

नातरु निपट उकताइ ताइ तापनि सौं,
ताही दिसि ताहू कौं परैगौ पग पारिबौ।
धारिबौ उधारिबौ हुतौ जौ निज हाथ नाथ,
तौ ना गंग-धार कौं धरा पै हुतौ धारिबौ ॥३४॥

धारत ही पाइ सेससाइ पद पायौं पर,
फनि फुतकारनि मैं सनत बनै नहीं।
पीयत ही बारि रतनाकर उदार भए,
भय मथिबे कौ पर भनत बनै नहीं ॥
भरत कमंडल बिरंचि हैं बिराजे पर,
रचना-प्रपंच रंच तनत बनै नहीं।
मूड़ पै चढ़ी हौ जाके ताही के बिराजी रहौ,
गंगा अब न्हाइ नंगा बनत बनै नहीं ॥३५॥

लीने हरि करम सुभासुभ अटंब सबै,
छाँड़्यौ अब संबल औ बनिज बितानौ ना।
कहै रतनाकर मनोरथ के नासे रथ,
गथ की कहै को पास पथ-परवानौ ना ॥
बात बसिबे की व्यवसाय की बतावै कौन,
आवागौन हू कौ बनि आवत बहानौ ना।
ए हो गंग जाहिँ लै कहा धौं अब काहू ओक,
तीनौं लोक माहिँ रह्यौ ठहर ठिकानौ ना ॥३६॥

फेरै तव सेतता सियाही लेख जातक कैं,
स्नातक कैं अंग राग-रंग है जगति है।
कहै रतनाकर तिहारी मधुराई कलि-
दाँतनि की पाँतिनि खटाई है खगति है॥
सीतल सुखारौ जन-हीतल सदाई करै,
रावरे प्रताप कौ अमाप गूढ़ गति है।
सीत सौं तिहारे ताप-भीत जम-दूत रहैं,
आप सौं अनोखी आगि पाप मैं लगति है॥३७॥

न्हाइ गंगधार पाइ आनँद अपार जब,
करत बिचार महा महिमा बखानी कौं।
कहै रतनाकर उठति अवसेरि यहै,
बेर बेर पैयै क्यौं जनमि इहिं पानी कौं॥
पंच की कहा है करैं पातक प्रपंच सबै,
रंच हूँ डरैं न जम-जातना कहानी कौं।
सुरसरि-पंथ ओर पारत ही तौहूँ पाय,
आवति चलायै हाय मुक्ति अगवानी कौं॥३८॥

पारे दूरि ताप जे अमाप महि-मंडल के,
मारतंड है सो नभ-पंथ परसत हैं।
कहै रतनाकर गिरीस सीस सन्निधि तौ,
पाई रजनीस सुधाधीस सरसत हैं॥

रावरे प्रभाव कौ प्रकास चहुँ पास गंग,
हेरि हिय सहित हुलास हरसत हैं।
बेधि बेधि ब्योम जो सिधारे तव तारे सोई,
वेध ब्रह्म जोति लै सितारे दरसत हैं ॥३९॥

ईसहू बनायौ सीस-भूषन प्रसंसि ताहि,
मानस-बिहारी परम्हंस घिरके रहत।
धारन कौं सादर उदार रतनाकर के,
अंग अंग सहित उमंग थिरके रहत॥
मानि भाग-वैभव सुहाग-माँग पूरन कौं,
सरग-वधूटिनि के जूट भिरके रहत।
सुरधुनि-धार निरधारि मुकता कौ हार,
मुकति अपार के प्रकार घिरके रहत॥४०॥

मंदर कौ भार भरते ना सुकुमार हरि,
वासुकी की बरत बनाइ बरते नहीं।
कहै रतनाकर सुरासुर प्रसिद्ध सबै,
होन कौं अमर कै समर मरते नहीं॥
इहि जग जटिल अनैसे माहिं जीवन कौं,
पीवन कौं ताहि नर हौंस भरते नहीं।
जौ ना निरधारते सुधा तौ-धार सोदर तौ,
सीस पै सुधाधर गिरीस धरते नहीं॥४१॥

धोइ देतीं खातौ ही हमारौ जौ न सारौ आप,
चित्रगुप्त कहा कौ कहा धौं करि देत्यौ तौ।
कहै रतनाकर न पाप नासतीं जौ इतौ,
भानहू कौ भौन तम-तोम भरि देत्यौ तौ॥
तारतीं अपार जग-जीव जौ न मात गंग,
रचना प्रपंच कौं बिरंचि धरि देत्यौ तौ।
मिलतीं त्रिलोक कौ त्रिताप हरि जौ ना आप,
सिंधु-आप बाड़व कौ ताप दरि देत्यौ तौ॥४२॥

जोगी जती तापस बिलोकि सुरलोक माँहिं,
हिय सुख-साजन के धरकन लागैं हैं।
कहै रतनाकर न मान निज जानि कछू,
गौरव गुमान सबै सरकन लागैं हैं॥
गंग के पठाए लोल लंपट निहारैं फेरि,
उमगि उछाह-छटा छहरन लागैं हैं।
थरकन लागैं सुर-तरु सुर-धेनु आदि,
सुर-तरुनीनि अंग फरकन लागैं हैं॥४३॥

पापी तन-तापी मैं न भेद कछु राखति है,
पार भवसागर कैं सबहीं उतारे देति।
कहै रतनाकर बिरंचि रचना सौं बेगि,
पंच-तत्त्व त्यागि सत्व सकल निकारे देति॥

त्रिगुन त्रिलोक के गुननि पर पानी फेरि,
एक गुन आपनौ अनूपम बगारे देति।
रंग जमराज कौ रहै न सुरराज ही कौ,
दोऊ पुर गंग एक संग ही उजारे देति ॥४४॥

मृग कौं मृगांक मृग मंजुल रचावै अरु,
सिंहवाहिनी कौ सिंह सिंहहिँ सजावै है।
ताल कौं उताल रतनाकर बिसाल करै,
देव-करि करि करि-निकर पठावै है॥
नंदीगन निपट अनंदी करै बैलनि कौं,
न्हाइ कढ़े छैलनि कौं बाहन बँटावै है।
मानुष कौ संकर करत असंग कहा,
गंग गिरि-कंकर कौं संकर बनावै है ॥४५॥

वासुकी बरेत गिरि मंदर मथानी करि,
ठानी इमि जाती रतनाकर मथाई क्यौं।
होत्यौ राहु बंचक क्यौं रंचक से लाहु काज,
होती आज लौं यौं चंद सूर की गहाई क्यौँ॥
सुरसरि-धार पहिलैँ हीँ जौ पधारती तौ,
पारती सुरासुर मैँ लालच लराई क्यौँ।
पीते चित-चीते सबै आनँद अघाइ धाइ,
रहती सुधा की बसुधा मैँ कृपनाई क्यौँ ॥४६॥

संतत सुजान विधि बेद-गान-आनँद मैं,
लगन लगाए यौं मगन रहते नहीं।
कहै रतनाकर सदासिव सदा ही इमि,
भंग की तरंग मैं उमंग गहते नहीं॥
आठौं जाम रहते रमेश काम ही मैं लगे,
सेस पै निमेष बिसराम लहते नहीं।
पतित-उधारन के दोष-दुख-टारन के,
जो पै गंग-धार मैं अधार चहते नहीं॥४७॥

बसि बसि जात जे परोस मैं तिहारे मात,
बात तिनकी तौ कछु बनत उचारैं ना।
कहै रतनाकर कहै को पास आवन की,
ते पुनि पलटि पुहुमी-पै पग धारैं ना॥
सकपक ह्वै कै सब चकपक चाहि रहे,
ऐसी दसा देखि कै निमेष सुर पारैं ना।
फेरि जग आवन कौ करि कै बिचार भयौ,
कोऊ अवतार गंग-धार के किनारैं ना॥४८॥

सुरधुनि-धार के उजागर भए तैं भूमि,
आई भवसागर मैं भूरि भरुवाई है।
गुन गरुवाई और भुवन त्रयोदस की,
आनि याके पानिप मैं सिमिटि समाई है॥

पारद-प्रभाव रतनाकर भयौ सो यह,
जामैं परि बूड़न की बात ही बिलाई है।
नेम ब्रत संजम की कठिन कमाई करि,
अब तौ परै न इहाँ दैन उतराई है ॥४९॥

सगर-कुमारनि कौ उमगि उबारन कैं,
अमर अगारनि कौ बिचल बसावतौ।
मुक्ति-मद-पानिप-प्रभाव-प्रभा आगर सौं,
सागर कौं कौन रतनाकर बनावतौ ॥
ब्याली गज-खाली औ कपाली भूतनाथ कहौ,
माथ धरि काकौं सिव संकर कहावतौ।
होतौ जौ न नातौ गंग-धार कौ अधार तौ पै,
जड़ जल कैसैं पद जीवन कौ पावतौ ॥५०॥

जोरि जोरि पातक-विधान सब कोरि कोरि,
भैंट कौ तिहारी फैंट भूरि भरि धारे हम।
कहै रतनाकर अपार बटपारे पर,
पाछैं परे ज्यौं ही तब मग पग पारे हम ॥
विकट पहाड़िनि मैं खाड़िनि मैं झाड़िनि मैं,
साधन अनेक कै कछूक जो उबारे हम।
सोऊ बचे पहुँचि किनारे ना तिहारे गंग,
तातैं हाथ झारे आनि तुम सौं जुहारे हम ॥५१॥

तारे साठ सहस कुमार जे सगरवारे,

तिन अपराधनि की गनना न भारी है।

कहै रतनाकर उधारे जन जेते और,

तिनमैं न कोऊ ऐसौ बिदित बिकारी है॥

याही हेत देत हैं चिताए गंग चेत धरौ,

धसकि न जाइ धरा धाक जो तिहारी है।

लीजै करि सँभरि तयारी मनवारी सबै,

पारी अबकैं तौ अति बिकट हमारी है॥५२॥

भगवान विष्णु—पृ० २२६
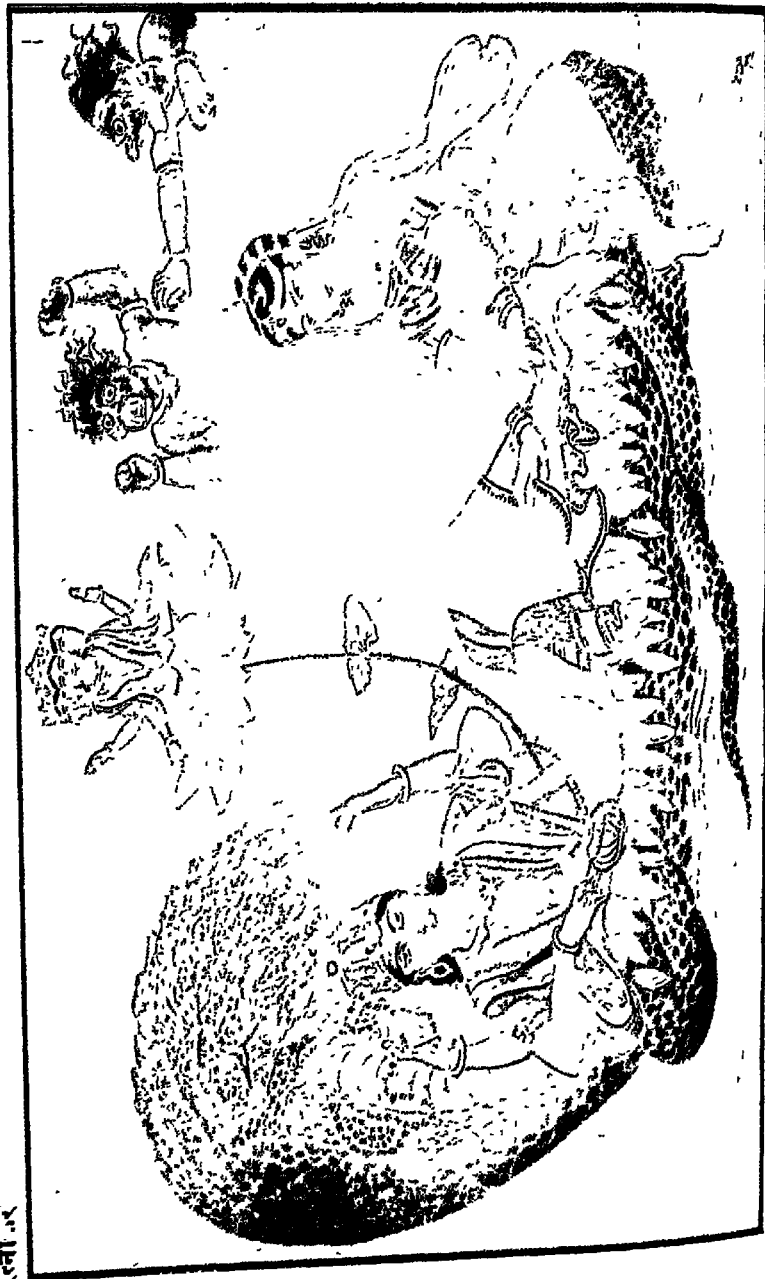
श्रीविष्णु-लहरी

परैं और भाव ना प्रभाव मन माहिँ नैँकु,
एक तव भावना स्वभाव लौँ सगी रहै।
और धारनाहूँ की त्रिधूसरित धारा माहिँ,
रस-रतनाकर-तरंग उमगी रहै॥
आवै बात रंभा-अधरानि औ सुधाहू की न,
ऐसी मुख स्याम-नाम-माधुरी पगी रहै।
प्रेम-रस रसत सदाई रहैं कोयनि सौं,
रावरी लुनाई इमि लोयनि लगी रहै॥ १॥

जावँ जम-गावँ जौ समेत अपराधनि के,
तौ पै तिहिँ ठावँ ना समावँ उबरयौ रहौं।
कहै रतनाकर पठावौ अघ-नासि जु पै,
तौ पै तहाँ जाइबे की जोगता हरयौ रहौं॥
सुकृत बिना तौ सुर-पुर मैं प्रवेस नाहिँ,
पर तिन तैँ तौ नित दूर ही टरयौ रहौं।
तातैं नयौ जौ लौं ना निवास निरमान होइ,
तौ लौं तव द्वार पै अमानत परयौ रहौं॥ २॥

देखत मतंग ज्यौं कुरंग-पति फारै दौरि,
काहू के निहोरनि की बाट ना निहारै है।
कहै रतनाकर प्रभाकर प्रभा ज्यौं व्योम,
बिन बिनती हीं तम-तोम नासि डारै है॥
पावक स्वभावक हीं माने बिन द्रोह मोह,
निपट निवारतहूँ दारुदोह जारै है।
त्यौंहीं कृपा रावरी उतावरी-समेत धाइ,
बिनहीं गुहारैं बेगि बिपति बिदारै है॥ ३॥

हाहाकार हांत्यौ यौं अपार भवसागर मैं,
रहती न कान अनाकानि है हथेरी सी।
कहै रतनाकर बिधाता के बिधानहूँ सौं,
जाती न निबेरी एती आपद घनेरी सी॥
पदमा प्रवीन कैं पलोटतहूँ पाइ धाइ,
ऋद्धि सिद्धिहूँ के किऐं जुगति घनेरी सी।
आवती न ऐसी सुख-नींद सेसहूँ पै नाथ,
होती जौ न चेरी कृपा कुसल कमेरी सी॥ ४॥

टेरन न पावैं तुम्हैं टेरिबौ बिचारत ही,
आरत है धाइ कृपा दुख दरि देति है।
कहै रतनाकर अघाए घाय जीवन पै,
आनँद सजीवन की मूरि धरि देति है॥

एक एक पूरि अभिलाष लाख भाँतिनि सौं,
ऋद्धि सिद्धि पाँति सौं भौन भरि देति है।
ताकी चूक कूक परैं कान ना तिहारैं कहूँ,
जानि यह क्लेस कौं निसेस करि देति है ॥५॥

एक तौ तिहारौ पद-पाथ नाथ प्रानिनि कौं,
देत विन रोक तिहुँ लोक तैं निकारौ है।
कहै रतनाकर बहुरि गुन-गान ध्यान,
भेजे देत जानैं कहाँ जंगम अखारौ है॥
आदि ही सौं रचना विरंचि बिसतारि हारयौ,
पारयौ पै न क्यौंहूँ पूर पारन बिचारौ है।
ऊबि उमगाइ तौ अनंत हू हिये सौं धाइ,
सकति न पाइ कृपा पूरन पसारौ है ॥६॥

सब कछु कीन्यौ हम निज बस ही सौं सही,
कौन तुमहीं कौं फेरि परबसताई है।
कहै रतनाकर फलाफल रचे जो अरु,
करम सुभासुभ मैं भिन्नता भराई है॥
निज रचना के उपजोग की तुम्हैं जौ चाह,
तौ न निरवाह मैं हमैंहूँ कठिनाई है।
मान्यौ मरजाद सबै आपनी रचाई पर,
यह तौ बतावौ कृपा कौन की बनाई है॥ ७॥

F. 51

निज बल प्रबल-प्रभाव कौ भरोसौ थापि,
और सब भावनि कौं निदरि भजावै है।
कहै रतनाकर तिहारे न्याव हू कौ ध्यान,
ताके अभय-दान-आगैं आवन न पावै है॥
तापै हमहीं कौ तुम दोषिल बतावत हौ,
तातैं बिलखात यह बात कहि आवै है।
राखौ रोकि आपनी कृपा जौ कह्यौ मानै नीठि,
ढीठ हमकौं जो करि अकर करावै है॥ ८॥

कहत सिहाइ केते प्रतिभा-प्रभाइ पेखि,
साँचौ यह सुघर सपूत सारदा कौ है।
केते कहैं मोहि जोहि जागत प्रताप ताकौ,
अरि-उर-साल यह लाल गिरिजा कौ है॥
सब-सुख-साधन की सिद्धि मनमानी सदा,
केते लखि लेखत लड़ैतौ कमला कौ है।
एहो ब्रजराज इमि सकल समाज माहिँ,
रंग रतनाकर पै रावरी कृपा कौ है॥ ९॥

रावरे भरोसे के सिँहासन बिराजे रहैं,
नाम मंजु मंत्री हित-चिंतन करयौ करै।
कहै रतनाकर त्यौं संतत प्रधान ध्यान,
आनँद निधान उर अंतर भरयौ करै॥

बिसद ब्रह्मंड पै अखंड अधिकार रहै,
प्रेम-नेम-सासन दुरासनि दरयौ करै।
माथ पै हमारे नित नाथ-हाथ छत्र रहै,
कलित कृपा कौ चारु चँवर ढर्यौ करै ॥१०॥

ऐते बड़े नाथहूँ न हाथ करि पावैं जाहि,
ताकौं वार हाय हमवार किमि आइँगे।
कहै रतनाकर न हम हपता मैं आइ,
ऐसे मन प्रबल-प्रभाइ सौं बिगाड़ैंगे॥
निज करनी-फल के बिफल सहारे कहा,
रावरौ भरोसौ-तरु कामद उजाड़ैंगे।
छाड़ैंगे न कान्ह आप जबलौं कृपा की कानि,
तौ लौं बानि हमहूँ कुठानि की न छाड़ैंगे॥११॥

हारि बैठिबौ हो जो उधारन के खेल माहिं,
तौपै रेलि पेलि एती ऊधम मचाइ क्यौं।
कहै रतनाकर सगाई जौ हुती ना हियैं,
तौ पै तन मन ऐती लगन लगाई क्यौं॥
भाग अरु कर्म ही कौ धर्म राखिबौ जौ हुतौ,
तौपै धरी सीस कहौ सर्व-सक्तिताई क्यौं।
जौपै नाथ रावरी कृपा मैं ना समाई हुती,
ऐती ठकुराई ठानि ठसक बढ़ाई क्यौं॥१२॥

कौन की विनै पै जग जनम दियौ है नाथ,
कौन की विनै पै पुनि मानुप बनायौ है।
कहै रतनाकर त्यौं कौन के कहे पै कहौ,
चित सुख-चाव कौ सुभाव उपजायौ है ॥
ऐतौ सब कीन्यौ आपनी ही मनसा सौं आप,
काहू कैँ अलाप औ न चाप उकसायौ है।
अब क्यौं कृपाल कृपा-हार हरिबे की बार,
चाहत कछूक हाय हमसौं कहायौ है ॥१३॥

उदर विदार्‌यौ हरिनाकुस कौ केहरि ह्वै,
जन पहलाद पर्‌यौ पेखि कठिनाई मैँ।
कहै रतनाकर रिषीस दुरवासा सीस,
विपति ढहाई अंबरीष की हिताई मैँ ॥
विग्रह विलोकि ग्राह निग्रह कियौ है धाइ,
गहरु न लाई गज-उग्रह-कराई मैँ।
भाई तुम्हैँ भक्तनि की एती पच्छताई तौ पै,
नाथ ना रहाई अब तव ठकुराई मैँ ॥१४॥

साजे रहै साज-बाज सब मनमाने सदा,
हरि के हिये सौं होति रंचहू सु न्यारी ना।
कहै रतनाकर विमुख-मुखहूँ पै रंच,
झलकन झाईं देति सौति सुधिवारी ना ॥

राखै रूँधि बैन सबके निज माधुरी सौं,
जामैं कहै कोऊ बात ताकी धानबारी ना।
ऐसो जग सजग कृपा की रखवारी लहै,
आवन की पारी लहै करुना विचारी ना ॥१५॥

फिकिर नहीं है कछु आपनी बिसेष हमैं,
प्रकृति हमारी अहसान चहती नहीं।
कहै रतनाकर पै रावरे कहावत हैं,
तातैं यह हेठता तिहारी सहती नहीं॥
यातैं करि साहस पुकारि कै चिताए देत,
रावरी कृपा जौ नाथ हाथ गहती नहीं।
तोपै करुना-निधान सान सोम-बंसिनि की,
आन भानु-अंसिनि की आज रहती नहीं ॥१६॥

बड़े बड़े आनि उपमान तव नैननि के,
करत बखान जिन्हैं मान प्रतिभा कौ है।
कहै रतनाकर हमैं तौ पै न जानि परै,
इनकी बड़ाई मैं विधान समता कौ है॥
एतियै लखाति औ इतीयै कहि जाति बात,
पलकनि बीच बिस्व-छितिज छमा कौ है।
एक एक कोर करुना कौ बरुनालय है,
एक एक पारावार पूरित कृपा कौ है ॥१७॥

मीँजि मन मारे फिरैँ कब लौँ तिहारे दास,
आस बिन पोषैँ हाय कब लौँ पुषी रहैँ
कहै रतनाकर रचाए बिना रंचक हूँ,
तोष की कहाँ लौँ पढ़ी पद्धति घुषी रहैँ ॥
रावरे रुचिर करुनानँद सकेलन कौँ,
तुमही बिचारौ जन कब लौँ दुखी रहैँ ।
तातैँ बिना कारन कृपा के उदगारनि मैँ,
तुमहूँ अनंद लहौ हमहूँ सुखी रहैँ ॥१८॥

माँगत छमा जो नाहिँ बूझत हमारो बात,
आनन सहज मुसक्यानिनि भर्‍यौ रहै ।
कहै रतनाकर त्यौँ नैननि तैँ बैननि तैँ,
सैननि तैँ अमित अनुग्रह ढर्‍यौ रहै ॥
है है किमि गिनती हमारी बिनती की हाय,
याही ग्लानि मानि मन गुदरि गर्‍यौ रहै ।
धसन न पावै ध्यान भान अपराधनि कौ,
करुना-निधान कौ पिधान यौँ पर्‍यौ रहै ॥१९॥

अनुचित उचित बिचार चित सौँ कै दूरि,
रावरी कृपा कौ भूरि लाहु लहते सही ।
कहै रतनाकर रुचिर मुखचंद चारु,
देखत अनंद सौँ धरीक रहते सही ॥

रोकिबौ रिसैबौ भौंह बिकट चढ़ैबौ नाथ,
हाथ झटकैबौ रोपि माथ सहते सही ।
धीर बहि जात्यौ नैन-नीर मैं तिहारै जौ न,
तौपै चीर पकरि कछूक कहते सही ॥२०॥

ऐसे कछू मायामयी सौतुक तिहारे नैन,
जिनकौ न कौतुक कछूक कहि जात है ।
करुना अपार रतनाकर तरंगनि मैं,
तिनके सँजोग कौ सुजोग लहि जात है ॥
गुन-तृन तिनसौं सुमेरु गरुवाई गहै,
दोष-मेरु तृन सौ तुरत हरुवात है ।
एक तहियाइ कै हिये मैं ठहि जात वेगि,
एक फहियाइ कै बहकि बहि जात है ॥२१॥

देखत हमारी दसा दारुन तिहारैं नैन,
बूँद करुना की लौटि फेरि इमि छाई है ।
कहै रतनाकर न जातैं गुन दोष मान,
परत प्रमान सौं जथारथ दिखाई है ॥
याही अवसेरि फेरि नीकैं जनि हेरौ कहूँ,
अब तौ हमारी सब भाँति बनि आई है ।
राई सौ सुगुन गिरिराई है लखात तुम्हैं,
दोष गिरिराई सौ लखात पुनि राई है ॥२२॥

सेद-कन सारत सँभारत उसास हू न,
बास हू बदलि पट नील कँधियाए हौ।
कहै रतनाकर पछाए पच्छि-नायक कौ,
बढ़त पुकार हू कैं पार अगुवाए हौ॥
बाएँ पंचजन्य जात बाजत बजाएँ बिना,
दाएँ चकरात चक्र बेग यौं बढ़ाए हौ।
कौन जन कातर गुहार लगिबे कैं काज,
आज इमि आतुर गुपाल उठि धाए हौ ॥२३॥

कोऊ देव टेरते कहौ धौं मुहँ लाइ कौन,
साधन तौ काहू कौ अराधन न कीन्यौ है।
कहै रतनाकर गुनाकर बनेई रहे,
ऐसौ बल बुद्धि के गुमान मन भीन्यौ है॥
काम के परै पै कौन नाम लै पुकारैं अब,
याही कैं मलोल मुखखोलन न दीन्यौ है।
हम तौ गुहार्‌यो ना अनाथ अपने कौं ठाइ,
धाइ पर नाथ तौ सनाथ करि लीन्यौ है ॥२४॥

जानत हूँ तुमकौं अजान बनि टेर्‌यौ हाय,
अब सो अजानता की ग्लानि गरिबौ पर्‌यौ।
कहै रतनाकर हराँस के हरैया रंच,
आँस औ उसास हूँ सँभारि भरिबौ पर्‌यौ॥

पाई आप पीर जो अधीरता हमारी हेरि,
देखि कै अधीर तुम्हैं धीर धरिवौ पर्यौ।
आप तौ हमारे मनुहार कौं पधारे पर,
उलटौ हमैं ही मनुहार करिवौ पर्यौ ॥२५॥

तारि गीध गनिका उधारि पहलाद आदि,
बानि जो बनाई सो न कानि गहि जाइगी।
कहै रतनाकर जो द्रौपदी गजेंद्र हित,
धाइ श्रम साध्यौ सोऊ साख ढहि जाइगी ॥
औसर परे पै अब रंचहू कृपाल सुनौ,
चूक जो परी तौ हियैं हूक रहि जाइगी।
आयौ कहूँ नीर जो अधीर इन नैननि तौ,
एती सब साधना वृथा ही वहि जाइगी ॥२६॥

है है दसा दारुन हमारी कहा कौन भाँति,
इन परपंचनि सौं रंच मन गारौ ना।
कहै रतनाकर न आतुर ह्वै धीर तजौ,
नीर भरे नैननि सौं कातर निहारौ ना ॥
ऐसी प्रेम-परख-प्रमा सौं हम चाहैं छमा,
कसक करेजैं आनि कछुक उचारौ ना।
सारौ ना मधुर मुसकानि मंजु आनन तैं,
नाथ नैंकु बाँसुरी बजाइवौ बिसारौ ना ॥२७॥

कोऊ कहै लच्छ औ अलच्छ पुनि कोऊ कहै,
दोऊ पच्छ-भेद तौ प्रतच्छ दरसाए ना।
कहै रतनाकर दुहूँ के अनुमान-बाद,
बिगत-बिबाद औ प्रमाद ठहराए ना॥
देखिनि अदेखिनि की एकै दसा देखि परै,
लेखि परै लेखा कछु रावरौ लिखाए ना।
देख्यौ जिन नाहिँ ते अलच्छ कहिबोई चहैं,
देख्यौ जिन तेऊ चौंधि लच्छ करि पाए ना॥२८॥

आपही कौं आपही न पावत है हेरैं रंच,
आपै आपु आपुही मैं आपुही हिराने हैं।
बूँद लौं समाने हैं अपार रतनाकर मैं,
पुनि रतनाकर लौं बूँद मैं समाने हैं॥
ऐसे कछु लच्छ कै समच्छ दसहू दिसि मैं,
पूरे प्रति कच्छ मैं प्रतच्छ दरसाने हैं।
ऐसे पै अलच्छ कै जतन जोग लच्छहू सौं,
काहू ज्ञान-दच्छ हू सौं जात ना पिछाने हैं॥२९॥

मंजु मनि कामद मयूष परमानु आनि,
माटी माहिँ निपट निराटी ह्वै धरत हैं।
कहै रतनाकर समेटि बगरावै फेरि,
याही हेर-फेर कैं बिनोद बिहरत हैं॥

जानौ तुमहीँ कै वह जानत जनावौ जाहि,
और कौन जानै कहा कौतुक करत हौ।
बैठे बिन काज बनिकनि लौँ लगाए साज,
या घट कौ घान धाइ वा घट भरत हौ ॥२०॥

मेरी जान सोई महा चतुर सुजान जाकी,
सुमति तिहारैँ गुन-गननि ठगी रहै।
कहै रतनाकर सुधाकर सौँ उज्ज्वल सो,
जामैँ सुभ स्यामता तिहारी उमगी रहै ॥
तिहिँ मन-मंदिर पतंग दुरभाव नाहिँ,
जामैँ तव ज्यौति की जगाजग जगी रहै।
मगन न होत सो अपार भवसागर मैँ,
तव गरुता की जाहि लगन लगी रहै ॥२१॥

गहकि गह्यौ ना गुन रावरौ गुनी जो गुनि,
सो पुनि गहीलौ गुन-गौरव गह्यौ कहा।
बूँदहू लही ना तव प्रेम रतनाकर की,
लाहु तौ अलाहु लहि जीवन लह्यौ कहा ॥
रंचहू दह्यौ ना तौ बिछोह-दुख दाइनि जो,
सो करि प्रपंच पंच पावक दह्यौ कहा।
जान्यौ तुम्हैँ नाहिँ सो अजान कहा जान्यौ आन,
जान्यौ तुम्हैँ ताहि आन जानन रह्यौ कहा ॥२२॥

साधि हैं समाधि औ अराधि हैं न ज्ञान-ध्यान,
बाँधि हैं तिहारैं गुन मान मुकलैं हैं ना।
कहै रतनाकर रहैंगे है तिहारे भृत्य,
दुरभर भार भरतार कौ भरैं हैं ना॥
आपनी ही चिंता सौं न चैन चित रंच लहैं,
जगत निकाय कौ प्रपंच सि। लैहैं ना।
एकै घट नाधि साध सकल पुराईं अब,
हम तुम है कै घट-घट मैं समैहैं ना॥३३॥

परि परि प्रबल प्रपंच माहिं पंचनि के,
नाच्यौ हौं जितेक नाच तेतिक नचैया को।
कहै रतनाकर पै औरै खाँच खाँची अब,
तुम बिन ताके पर साँच कौ सँचैया को॥
जौ हम अनाथ औ न नाथ पै हमारे कोऊ,
तौ अब हमारौ कर अकर जँचैया को।
जौ पुनि सनाथ हैं तौ तुमहीं बतावौ नाथ,
हमसे सनाथ कौ अनाथ लौं तँचैया को॥३४॥

दीन जन ही के जौ उधारन की टेक तुम्हैं,
तौ पै अब अधम अदीननि उधारै कौन।
कहै रतनाकर बिसारै जो सुधारौ ताहि,
परि इहिं लालच मैं तुमकौं बिसारै कौन॥

तुम तौ अनाथनि की सुनत पुकार सदा,
नाथ होत तुमसे अनाथ है पुकारै कौन।
होते जौ अनाथ तौ उबारते हमैं हूँ नाथ,
हम तौ सनाथ कहौ हमकौं उबारै कौन ॥३५॥

जौ पै कहौ भावना हमारी ही अनाथनि की,
तौ पै ताहि नाथि कै सनाथ ना बनावौ क्यौं।
कहै रतनाकर जौ करम-विवाद तौपै,
आदि ही सौं आए हौ न करम करावौ क्यौं ॥
जौ पै अवकास नाहिँ रंच आन पंचनि सौं,
तौ पै इते पंच के प्रपंचहि बढ़ावौ क्यौं।
हम जौ अनाथनि लौं इत उत टेकैं माथ,
तौ पै तुम नाथ नाथ विस्व के कहावौ क्यौं ॥३६॥

और तौ न रंचहू विरंचि रचना मैं कछू,
पंचभूत ही कौ तौ प्रपंच सब ठौरै है।
कहै रतनाकर मिलाप तिनही कौ भिन्न,
सब जड़ जंगम मैं भेद-भाव डौरै है ॥
होहिँ हूँ जौ औरौ तत्त्व तिनहूँ के स्वत्व-काज,
त्यागि तुम्हैं और कोऊ ठाकुर न ठौरै है।
बस सब भूतनि के नाथ तुमहीँ जौ नाथ,
नाथ तौ हमारे पंचभूत कौ न औरै है ॥३७॥

होत्यौ मन माँहि मन राखिवौ हमारौ जौ न,
तौ पै मनमानौ एतौ करते दुलारौ ना।
कहै रतनाकर विचार निरधारि यहै,
ढीठ ह्वै उचारैं तातैं विलग विचारौ ना ॥
आपनौ हीं जानि कृपा कोप जो करौ सो करौ,
आन मानि धारौ तौ कृपा हू रंच धारौ ना।
कै तौ गहि हाथ विस्व बाहर निकारौ नाथ,
कै तौ विस्वनाथ निज नाथता विसारौ ना ॥३८॥

पुन्य पाप दोऊ तौ बनाए रावरेई नाथ,
फेरि फलाफलहू फराए रावरेई हैं।
कहै रतनाकर चहत पुन्य कौं तो सबै,
गाहक पै पाप के लखात विरलेई हैं ॥
दोऊ मैं न भेद पै लखात हमकौं है कछू,
दोऊ सुख साधन के बाधन बनेई हैं।
दुसह वियोग-ज्वाल-जरत वियोगिनि कौं,
अमर-अवास सुर-वास एक सेई हैं ॥३९॥

सोई सो किए हैं जो जो करम कराए आप,
तिनपै भले की औ बुरे की छाप छापो ना।
कहै रतनाकर नचाइ चित चाह्यौ नाच,
काच-पूतरी पै गुन दोष आप आपो ना ॥

खोटे खरे भेद औ प्रभेद धरि राखौ उतै,
बिबस बिचारे पै वृथा ही थाप थापौ ना।
थापौ जहाँ भावै तुम्हैं थापिबौ हमैं पै नाथ,
माथ पै हमारे पाप-पुन्य-थाप थापौ ना ॥४०॥

कीन्यौ आपही तौ रचि कठिन कुभाव ताकौ,
जाकौ अब प्रबल प्रभाव इमि भावै है।
कहै रतनाकर सुरासुर प्रसिद्ध सिद्ध,
ताके परपंच सौं न कोऊ पार पावै है॥
तापै सब दोष नाथ आवत हमारैं माथ,
साहस कै तातैं यह गाथ मुख आवै है।
भूल तुमहूँ कौं बस करि जो भुलावै हमैं,
कीजै कहा सोई हमैं तुमकौं भुलावै है ॥४१॥

होत्यौ पंचतत्त्व मैं न स्वत्व तव संचित जौ,
तौ पै बुधि तिनकैं प्रपंच पढ़ती कहा।
कहै रतनाकर गुनाकर न होते तुम,
तौ पै भेद-भावना-विभूति बढ़ती कहा॥
पावती न साँचौ जौ तिहारी मनसा कौ मंजु,
तौ पै कृति प्रकृति विचारी गढ़ती कहा।
लहती प्रभाव-पौन जौ न तव पायनि कौ,
तौ पै धूरि धमकि अकास चढ़ती कहा ॥४२॥

कामना-बिहीन कबौं नाम ना तिहारौ लेत,
बाम-धन-धाम ही की चेत चित ठाई है।
कहै रतनाकर बिलासनि की आस हियैं,
रहति हुलासनि की हौंस हुमसाई है॥
कामी क्रूर कुटिल कुमारग के गामी इमि,
अजहूँ न नैंकु बिषै-बासना सिराई है।
चाहैं वह धाम जहाँ गनिका सिधाई जऊ,
गाँठि मैं न दाम कछू सुकृति कमाई है॥४३॥

केते मनु-अंतर निरंतर व्यतीत है हैं,
केती चित्रगुप्त-जम औधि उटि जाइगी।
कहै रतनाकर खुल्यौ जो पाप-खाता मम,
तौ गनि बिधाताहू की आयु खुटि जाइगी
जैहै बाँचि-बूझि अबकी ना लिपि भाषा नैंकु,
औरै पाप-पुन्य-परिभाषा जुटि जाइगी।
ताहु लहि संसय कौ संसय बिना ही बस,
पापिनि की मंडली अदंड छुटि जाइगी॥४४॥

ए हो बीर पातकी अधीर जनि होहु सुनौ,
यह ततबीर भीर रावरी भजावैगी।
भाषैं यहै आगैं हूँ अभागे हमसौं जो जाहि,
याही एक बात घात सकल बनावैगी॥

पहिलैं हमारे सरदार रतनाकर की,
पातक-अपार-पटतार पार पावैगी ।
जैहै बस चौकड़ी अनेक जुगवारी बीति,
पारी फेरि जाँच की तिहारी नाहिँ आवैगी ॥४५॥

दान देत चेत कै सहस्र गुनौ पैवे हेत,
लाए नेत ईसहू के संपति-भँडारे पै ।
कहै रतनाकर कहत राम-नाम हू के,
रामा कौ अकार चढ़ै चित चटकारे पै ॥
हाथ मैं हजारा गरैं माला तुलसी की नीकी,
राँची रुचि जी की नित करम नकारे पै ।
जोरि जोरि नैन सैन करि कछु आपस मैं,
पाप मुसकात पोले माच्छित हमारे पै ॥४६॥

एक तुमही सौं तौ सकल नेह नातौ बस,
और की तौ जानत न मानत सगाई हम ।
कहै रतनाकर सु वारपार धारहू मैं,
सोई तुम्हैं देखत अपार सुखदाई हम ॥
जानते जौ काहू जानकार दूसरे के कहैं,
पार जान ही मैं कछु अधिक भलाई हम ।
जप-तप-साधन दुसाध की कमाई करि,
देते मनभाई तुम्हैं नाथ उतराई हम ॥४७॥

F. 53

लेते गहि तूमड़ी अनेक एक की को कहै,
साँसनि के सासन सौं नैकु डरते नहीं।
कहै रतनाकर बिधान तारिबे के आन,
जेते ध्यान माहिं तिनहूँ सौं टरते नहीं॥
हाथ पाय मारते बिचारते उपाय सबै,
एतनि मैं हमहीं कहा धौं तरते नहीं।
होतौ चित चाव जो न रावरे कहावन कौ,
भाँवरे भवांबुधि मैं भूलि भरते नहीं॥४८॥

सूनौ ठाम जो पै बिसराम करिबे कौं चहौ,
तारन के काम सौं बिरामता सुहाई है।
तौपै रतनाकर के हिय सौ न सूनौ धाम,
जामैं होति स्याम नाहिं आन की अवाई है॥
बलि तौ नपाई देह बाचा-बद्ध ह्वै कै इहाँ,
इग पग धारिबे की लालसा लगाई है।
खोजत जौ पापिनि के माथ धरिबे कौं हाथ,
तौपै मम माथ नाथ कौन पुन्यताई है॥४९॥

भाव दृढ़ता के कछु भरन न पाए उर,
दुख-सुख-झोरनि हिंडोरनि पले गए।
कहै रतनाकर प्रपंचनि कैं पेंच परि,
साहस न संचि सके छकित छले गए॥

घेरि-घेरि ज्यौं-ज्यौं मन माहिँ चह्यौ राखन कौं,
फेरि फेरि त्यौं त्यौं तुम भाजत भले गए।
जानि हमैं कादर निरादर करत नाथ,
सूर के हिये सौं क्यौं न निमुकि चले गए॥५०॥

सूर तुलसी लौं नाहिं भक्ति अधिकारी हम,
ताके माँगिबे की चित्त चाह गहिबौ कहा।
कहै रतनाकर न पंडिताई केसव की,
तातैं कल कीरति की हौंस वहिबौ कहा॥
मन अभिलाषै धन, धाम बाम नाम सदा,
पूछत तिहारे सकुचात कहिबौ कहा।
तातैं अब तुमहीं बतावो हू कृपाल ठाहि,
अपर हमैं है तुम्हैं चाहि चहिबौ कहा॥५१॥

स्वारथ कौ पथ गथ गूढ़ परमारथ कौ,
पारथ हू पायौ ना तौ और कौन पैहै जो।
कहै रतनाकर न रंच यह पावैं जाँचि,
जाँचै कहा साँच ही प्रपंच-खाँच ख्वैहै जो॥
याही उर अंतर निरंतर प्रतीत धरैं,
याही मुख मंतर हू अंत दुख ध्वैहै जो।
है है हठि सोई जो तिहारैं मन भैहै नाथ,
भैहै तुम्हैं सोई तौ हमारो हित ह्वैहै जो॥५२॥

---

(१) श्री शारदाष्टक

सुमिरत सारदा हुलसि हँसि हंस चढ़ी,
विधि सौं कहति पुनि सोई धुनि ध्याऊँ मैं ।
ताल-तुक-हीन अंग-भंग छबि-छीन भई,
कबिता बिचारी ताहि रुचि-रस प्याऊँ मैं ॥
नंददास-देव-घनआनंद-बिहारी-सम,
सुकवि बनावन की तुम्हैं सुधि धाऊँ मैं ।
सुनि रतनाकर की रचना रसीली रंच,
ढीली परी बीनहिं सुरीली करि ल्याऊँ मैं ॥ १ ॥

कहति गिरा यौं गुनि कमला उमा सौं चलौ,
भारत मही मैं पुनि मंजु छबि छाजैं हम।
राखैं जौ न नैंकु टेक जन-मन-रंजन की,
हरि हर बिधि की बृथा ही बाम बाजैं हम॥
माख मानि बैठ्यौ ऐंठि लाड़िलौ हमारौ ताकौ,
करि मनुहार सुधा-धार उपराजैं हम।
साजैं सुख संपति के सकल समाज आज,
चलि रतनाकर कौं नैंसुक निवाजैं हम॥२॥

आवति गिरा है रतनाकर निवाजन कौं,
आनँद - तरंग अंग ढहरति आवै है।
हिय-तमहाई सुभ सरद-जुन्हाई सम,
गहब गुराई गात गहरति आवै है॥
बर बरदाननि के बिबिध बिधाननि के,
दान की उमंग धुजा फहरति आवै है।
लहरति आवै दृग कोरनि कृपा की कानि,
मंद मुसुकानि-छटा छहरति आवै है॥३॥

आवत हीं सारदा अमंद मुख-चंद हियैं,
श्रोति मन-मनि सौं श्रवति कबितानि की।
कहै रतनाकर कढ़ति धुनि है सो पुनि,
पावत उमंग कल किन्नरी-कलानि की॥

लौन सुख हेत होति सरस सुधा की धार,
माधुरी अपार सौं मृदुल मुसुकानि की।
होति अनहोनी पुनि तामैं मिठलौनी लहि,
लोनी कृपा-कलित सलोनी अँखियानि की ॥ ४ ॥

बातनि की ललित लपेट कदली कैं फेंट,
अरथ कपूर भरपूर सरसत है।
कहै रतनाकर सुकोस लेखिनी कैं सुचि,
आखर कौ रोचन रुचिर दरसत है॥
रूरे रस-सिंधु-अवगाही मति सुक्ति माहिँ,
उक्ति जुक्ति मुक्तिनि कौ पुंज परसत है।
सारद-सुसीले मंदहास स्वाति-बारिद तैं,
जब सुख कारि कृपा-बारि बरसत है॥ ५ ॥

रावरे अनुग्रह-प्रताप को प्रकास पाइ,
बालमीकि - ब्यास - जसचंद उजराए हैं।
कहै रतनाकर त्यौं बानी महारानी मात,
कवि-मनि सूर तुलसी हूँ चमकाए हैं॥
अबिरल रावरे सुवा के मुख मंजुल तैं,
वेद भेद सकल अखेद जात गाए हैं।
जिनके उचारन के हेत करि चेत चारु,
चारि चतुरानन के आनन बनाए हैं॥ ६ ॥

मात सारदा के मुसकात मंजु आनन पै,
कलित कृपा के चारु चाव बरसत हैं।
कहै रतनाकर सुकबि प्रतिभा पै मनौ,
मधुर सुधा से भूरि भाव सरसत हैं॥
सारी सेत ऊपर सुगंध कच कुंचित यौं,
छहरि छबीले मुरवानि परसत हैं।
इंद्रनील-खचित कबित्तनि के दाम मनौ,
रजत-पटी पै अभिराम दरसत हैं॥ ७॥

सुनि सुनि भारती तिहारे सुगना के बोल,
किन्नरी कलोल लोल चित्त है लुभाए हैं।
कहै रतनाकर मृदुल माधुरी सौं मोहि,
वैसे ही कबित्त कहिबे कौं हुलसाए हैं॥
अब तौ हमारौ मन राखतै बनैगौ तोहिं,
भाषतै बनैगौ बर जापै मचलाए हैं।
जौ पै हैं सपूत तौ तिहारेई बनाए मातु,
जौपै हैं कपूत तौ तिहारे ही लड़ाए हैं॥ ८॥

---

(२) श्रीगणेशाष्टक

इंद्र रहैं ध्यावत मनावत मुनिंद्र रहैं,
गावत कविंद्र गुन दिन-छनदा रहैं।
कहै रतनाकर त्यौं सिद्धि चौंर ढारति औ,
आरति उतारति समृद्धि-प्रमदा रहैं॥
दै दै मुख मोदक बिनोद सौं लड़ावत ही,
मोद मही कमला उमा औ बरदा रहैं।
चारु चतुरानन पँचानन षड़ानन हूँ,
जोहत गजानन कौ आनन सदा रहैं॥१॥

मंजु अवतंसनि पै गुंजरत भौंर-भीर,
मंद-मंद औननि चलाइ बिचलावै है।
कहै रतनाकर निहारि अध चाँपै चख,
चूमिबे कौं संभु कौ अधर फरकावै है॥
कुंडलि सुंडिका पसारि अनचीते चट,
कुंडल षड़ानन कौ छ्वै पुनि छपावै है।
दाबे मुख मोदक बिनोद मैं मगन इमि,
गोद गिरिजा की गहे मोद उपजावै है॥२॥

ठेले कछु दंत सौं सकेले कछु सुंड माहिँ,
मेले कछु आनन गजानन परात हैँ।
कहै रतनाकर जगत मैँ न रंच कहूँ,
भगत बिघन के प्रपंच दरसात हैँ॥
धाइ धाइ पारत फनी के मुख-मंडल मैँ,
लाइ लाइ सोऊ जीभ चट करि जात हैँ।
उत तौ उमा के उर उठत अनेस इत,
भेस देखि मुदित महेस मुसकात हैँ॥३॥

सुंड सौँ लुकाइ औ दबाइ दंत दीरघ सौँ,
दुरित दुरूह दुख दारिद बिदारे देत।
कहै रतनाकर बिपत्ति फटकारै फूँकि,
कुमति कुचार पै उखारि छार डारे देत॥
करनी बिलोकि चतुरानन गजानन की,
अंब सौँ बिलखि यौँ उराहनौ पुकारे देत।
तुमही बताओ कहाँ बिघन बिचारे जाहिँ,
तीनौं लोक माहिँ ओक उनकौँ उजारे देत॥४॥

सुमुख कहाइबौ सफल बक्रतुंड ही कौ,
सुमिरत जाहि कौन बिपति बही नहीँ।
कहै रतनाकर त्यौँ उदर उदार माहिँ,
सकल समानी कला एकौ उबरी नहीँ॥

बुधि-बल तीनि हीं परग मैं त्रिलोक फिरे,
तातैं गति मूषहू की मंदता लही नहीं।
एकै दंत सकल दुरंतनि कौ अंत करै,
दंत दूसरे की तंत तनक रही नहीं ॥५॥

एक रद ही सौं रेलि विघन समूह सबै,
संभु-दृग तीसरे मैं जौ पै हुनते नहीं।
कहै रतनाकर बुधाकर तुम्हैं तौ फेरि,
अंग-हीन हेरि गननाथ गुनते नहीं ॥
होत्यौ गजराज-सुंड-पावन बिना ही काज,
बिटप-अकाज-साज जौ पै लुनते नहीं।
ऐते बड़े कानन की कानि रहि जाती कहा,
जौ पै हमवार की पुकार सुनते नहीं ॥६॥

केते दुख दारिद बिलात सुंड-चालन मैं,
कसमस हालन मैं केते पिचले परैं।
कहै रतनाकर दुरित दुरभाग भागि,
मग तैं बिलग बेगि त्रासनि चले परैं ॥
देखि गननाथ जू अनाथनि कौं जोरे हाथ,
थपकत माथहूँ न नैंकु निचले परैं।
मोदक लै मोद देन काज जब भक्तनि कौं,
गोद तैं उमा के मचलाइ बिचले परैं ॥७॥

बिघन बिदारन कौं कुमति निवारन कौं,
टारन कौं जेतौ जग बिपति-पसारौ है।
कहै रतनाकर कहति गिरिजा यौं नाथ,
हाथ पर्यौ रावरैं गजानन ही बारौ है॥
रैन दिन चैन है न सैन इहिं उद्यम मैं,
दमहू न लेन पावै रंचक बिचारौ है।
जारौ किन कंत नैन तीसरैं दुरंत सबै,
एक दंत ही कौ अबै बालक हमारौ है॥८॥

---

(३) श्रीकृष्णाष्टक

जाकी एक बूँद कौं बिरंचि बिबुधेस सेस,
सारद महेस ह्वै पपीहा तरसत हैं।
कहै रतनाकर रुचिर रुचि जाकी पाइ,
मुनि-मन-मोर मंजु मोद सरसत हैं॥
लहलही होति उर आनँद - लवंगलता,
दुख दंद जासौं ह्वै जवासौ झरसत हैं।
कामिनी सुदामिनी समेत घनस्याम सोई,
सुरस - समूह ब्रज - बीच बरसत हैं॥ १॥

लीन्यौ रोक जमुना-प्रवाह बाँसुरी कैं नाद,
जाकौ जसवाद लोक सकल बखानैं गे।
कहै रतनाकर भलै की घनधार रोकि,
लीन्यौ ब्रज राखि सहसाखि साखि मानैं गे॥
उमगत सिंधु रोकि द्वारिका बसाई दिव्य,
जुगजुग जाकी कवि कीरति बखानैं गे।
हम तौ हमारी दसा दारुन बिलोकि नैंकु,
रोकि लैहौ करुना प्रवाह तब जानैं गे॥ २॥

कोऊ कहै कंज हैं कलानिधि-सुधासर के,
कोऊ कहैं खंज सुचि-रस के निखारे हैं।
कहै रतनाकर त्यौं साधा करि कोऊ कहै,
राधा-मुख-चंद के चकोर चटकारे हैं॥
कोऊ अंग-कानन के कहत कुरंग इन्हैं,
कोऊ कहै मीन ये अनंग-केतु-वारे हैं।
हम तौ न जानैं उपमानैं एक मानैं यहै,
लोचन तिहारे दुख-मोचन हमारे हैं॥ ३॥

नेह की निकाई नित छाई अंगअंग रहै,
उठति उमंग रहै अमित अनंद की।
कहै रतनाकर हिये मैं रस पूरि रहै,
आनि ध्यान-मनि मैं मरीचैं मुख चंद की॥
राँची रसना मैं आठौं जाम मधुराई रहै,
ताके नाम रुचिर रसीले गुलकंद की।
प्रेम-बूँद नैननि निमूँद नित छाई रहै,
लाई रहै ललित लुनाई नँदनंद की॥ ४॥

सुमिरि तुम्हैं जो हिय द्रवत न नैंकु हाय,
स्रवत न आँस लै उसास-रसवारौ है।
कहै रतनाकर, पै नित धन-धाम-वाम,
काम ही के काम कौ पसारत पसारौ है॥

ऐसे हमहूँ से जौ नकारनि कृपा कैं वारि,
सींचौ घन-स्याम तौ तौ बिरद-सँभारौ है।
भक्तनि के ताप टारिबे मैं ना निहारौ नाथ,
तिनके हियैं तौ निज धाम ही तिहारौ है॥ ५॥

दूरि करि ताप-दाप तिमिर कलाप सबै,
चारौं फल माहिं मंजु रस सरसाए देति।
दरि दुखदंद की अमंद अति उम्मस कौं,
आनँद सुधा सौं नैन-फलक द्रवाए देति॥
बिविध बिलासनि सौं पूरि सुभ आसनि कौं,
पाप-पंक-जात दुरवासनि दबाए देति।
उर रतनाकर के ब्रज के कलाकर की,
मंद-मुसकानि-जोति जीवन जगाए देति॥ ६॥

दुखहू परे पै ना पुकारत गुपाल तुम्हैं,
कबहूँ उचारत उसास भरि राधा ना।
कहै रतनाकर न प्रेम अवराधैं रंच,
नेम ब्रत संजम हू साधैं करि साधा ना॥
याही भावना मैं रहैं भभरि भुलाने कहूँ,
उभरि करेजैं परै करुना अगाधा ना।
अकथ अनंद जो अकारन कृपा कौ नाथ,
हाथ करिबै मैं तुम्हैं ताहि परै बाधा ना॥ ७॥

पावैं कहूँ ओक ना त्रिलोक माहिँ धावैं फिरे,
सुरति भुलाए भूरि भूख औ पिपासा की।
कहै रतनाकर न इत उत चाहैं नैंकु,
चपल चलेई जात साधे सीध नासा की॥
राख्यौ ना विरंचि हरि हरहूँ न सक्र रंच,
वक्र गति चाहि चल चक्र के तमासा की।
साप की कहै को मुख बाहिर न स्वासा भई,
दुरित दुरासा भई दूरि दुरवासा की॥ ८॥

करुना प्रभाव कल कोमल सुभाव-वारौ,
जन रखवारौ सदा दिवस त्रिजामा कौ।
कहै रतनाकर कसकि पीर पावै उर,
ध्यान हूँ परे पै दुख दीन नर वामा कौ॥
याही हेत आखत कौ राखत विधान नाहिँ,
पूजा माहिँ प्रीतम प्रवीन सत्यभामा कौ।
पांडववधू को बच्यौ भात सुधि आइ जात,
छाइ जात नैननि पै तंदुल सुदामा कौ॥ ९॥

---

(४) गजेन्द्रमोक्षाष्टक

रमत रमा के संग आनँद-उमंग भरे,
अंग परे थहरि मतंग अवराधे पै ।
कहै रतनाकर बदन-दुति औरै भई,
बूँदैं छई छलकि दृगनि नेह-नाधे पै ॥
धाए उठि बार न उबारन मैं लाई रंच,
चंचला हू चकित रही है बेग-साधे पै ।
आवन वितुंड की पुकार मग आधैं मिली,
लौटत मिल्यौ त्यौं पच्छिराज मग आधे पै ॥१॥

संग के पुराने गज दिग्गज डराने सबै,
नाने कान कुंजर सुरेस कौ चिघार्‍यौ है ।
कहै रतनाकर त्यौं करि कमला के काँपि,
चाँपि चख पानिप कहूँ कौ कहूँ पार्‍यौ है ॥
संकजुत दौरि पौरि खेलत गजानन हूँ,
गोद गिरिजा की दुरि मौन मुख धार्‍यौ है ।
एते माहिं आतुर उमाहि हरि आइ धाइ,
सुंड गहि बूड़त वितुंडहिं उबार्‍यौ है ॥२॥

सुंड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
बिबस बिसारि काज सुर के समाज कौ।
कहै रतनाकर निहारि करुना की कोर,
बचन उचारि जो हरैया दुख-साज कौ॥
अंबु पूरि दृगनि बिलंब आपनोई लेखि,
देखि देखि दीह छत दंतनि दराज कौ।
पीत पट लै लै कै अँगोछत सरीर कर-
कंजनि सौं पोंछत भुसुंड गजराज कौ ॥३॥

परत पुकार कान कानि करुना की आनि,
सहित उदेग बेग-बिकल बिकाने से।
कहै रतनाकर रमा हूँ कौं बिहाइ धाइ,
औचक हीँ आइ भरे भाइ सकुचाने से॥
आतुर उबारि पुचकारि धरनी पै धारि,
अमित अपार स्रम भभरि भुलाने से।
फेरत भुसुंड पै कँपत कर पुंडरीक,
बिकल-बितुंड-सुंड हेरत हिराने से ॥४॥

संगवारे महत मतंगनि के संग सबै,
निज निज मान लै पराने पुसकर सौं।
कहै रतनाकर बिचारौ बल हारौ तब,
टेरि हरि पारयौ कल कंज गहि सर सौं॥

पहुँच न पायौ पुनि वारि लौं न जौ लौं वह,
तौ लैं लियौ लपकि उबारि हरवर सौं।
एक सौं ललायौ चक्र एक सौं चलायौ गह्यौ,
एक सौं भुसुंड पुंडरीक एक कर सौं ।।५।।

देखती रमा जौ यह कानि करुना की कहूँ,
भूलि जाती मान के बिधान जे अभाए हैं।
कहै रतनाकर पै ताकी हूँ न ताकी फाल,
अतुल उताल ह्वै इकाकी उठि धाए हैं।।
पच्छिराज-बेग कौ गुमान गारिबे कौ गुनि,
औसर अनौसर पियादे पाय आए हैं।
द्वै ही हाथ कीन्हें काज और अवतारनि मैं,
चारौं हाथ वारन-उबारन मैं लाए हैं।।६।।

गुनि गज-भीर गह्यौ चीर कमला कौ तजि,
है हरि अधीर पीर-उमग अथाह मैं।
कहै रतनाकर चपल चक्र वाहि चले,
बक्र ग्राह-निग्रह के अमित उछाह मैं।।
पच्छीपति पौन चंचला सौं चख चंचल सौं,
चित्त हूँ सौं चौगुने चपल चलि राह मैं।
वारन उबारि दसा दारुन विलोकि तासु,
हुंचकन लागे आप करुना-प्रवाह मैं।।७।।

ढारै नैन नीर ना सँभारै साँस संकित सो,
जाहि जोहि कमला उतारयौ करै आरते।
कहै रतनाकर सुसकि गज साहस कै,
भाष्यौ हरैं हेरि भाव आरत अपार ते॥
तन रहिबे कैा सुख सब बहि जैहै हाय,
एक बूँद आँस मैं तिहारे जो बिचारते।
एक की कहा है कोटि करुनानिधान प्रान,
वारते सचैन पै न तुमकैां पुकारते॥८॥

---

(५) श्रीयमुनाष्टक

सूरज-सुता की सुभ सुखमा बखानै कौन,
रौन-रस-राँची साँची पुंज बरकत की।
छवि-मद-छाके नैन चंचल चलाँके मनौ,
लीने सुघराई कंज खंज फरकत की।।
झलकति अंग तैं उमगि अनुराग-प्रभा,
तातैं सुभ स्याम-अंग रंग-ढरकत की।
मरकत मनि तैं मरीचि कढ़ै मानिक की,
मानिक तैं मानहु मरीचि मरकत की।।१।।

ऐसी कछु बानक बनावति बिलच्छन कै,
जासौं हरि जम की जमाति टरि देति है।
कहै रतनाकर न माथ हुमसाइ सकै,
ताकैं हाथ हाय गिरिनाथ धरि देति है।।
जुग पतिनी कौ पति नीकौ रहि पावै नाहिं,
सोरह हजार नारि भौन भरि देति है।
जमुना-जवैया पेखि पातक पुकारि कहैं,
भैया वह न्हात ही कन्हैया करि देति है।।२।।

जम-दम सौं तौ भाजि भभरि चले हैं उत,
कम जमुना की नाहिं जातना-पनाली पै।
कहै रतनाकर पुरैहैं अभिलाष भूरि,
पहुँचत ताके पूर कठिन कुचाली पै॥
घोंटिबौ परैगौ दाप दुसह दवानल कौ,
ओटिबो परैगो गिरि देह सुखपाली पै।
घर घर गोरस कौ जाँचिबौ परैगौ,
अरु नाचिबौ परैगौ काली नाग की फनाली पै॥३॥

देत जमराज सौं दुहाई जमदूत जाइ,
जमुना प्रताप-ज्वाल जग यौं बगारी है।
कहै रतनाकर न फटकन पावैं पास,
चटकन लागैं चट पाँसुरी-पत्यारी है॥
पापिनि के पातक पहार सब जारे देति,
बसती उजारे देति दमकि हमारी है।
तपन-तनूजा जल-रूपहू भई तौ कहा,
अगिनी अनूप यह भगिनी तिहारी है॥४॥

मुक्ति-खानि पानिप निहारि स्वाति-टेक टारि,
पीउ पीउ धुनि कै पपीहा सोर पारै है।
कहै रतनाकर त्यौं बायस अघाइ नीर,
पाइ बलि-पायस कौ आयस नकारै है॥

मज्जत विहंग हू जो तरल तरंगनि मैं,
ताकौ है विहंगपति वाहन जुहारे है।
विचरै सिखंडी जमुना के वनखंडनि जो,
ताकौ पच्छ-मंडन कन्हैया सीस धारे है ।।५।।

जाइ रतनाकर पै जम यौं दुहाई देत,
अज अखिलेस सेसनाग पै सुवैया की।
देखौ जागि जमुना कुभाय के हिलोरे आप,
पाप-नाव बोरै मम पुर के जवैया की ।।
विधि हूँ के रोष की न राखै परवाह रंच,
ऐसी भई सोख पाइ संगति कन्हैया की।
राखी मरजाद पाप पुन्य की सु राखी गनै,
साखी गनै बाप की न भाषी गनै भैया की ।।६।।

चित्रगुप्त कहत पुकारि जमराज सुनौ,
गाफिल ह्वै नैंकु निज गौरव गँवैयौ ना।
कहै रतनाकर कहत मत नीकौ हम,
पथ भगिनी कौं निज पुर कौ दिखैयौ ना ।।
ऐसौ कछु ऊधम मचाइ है पधारत ही,
पापिनि कौं पाइ है पछेरि फेरि दैयौ ना।
जैयौ तुम आपु हीं तिलक-हित ताकैं कूल,
भूलि जमुना कौं जमलोक कौं बुलैयौ ना ।।७।।

जम जमुना की होड़ निज निज काजनि मैं,
सकल समाजनि मैं विसमय छावै है।
कहै रतनाकर करत एक जाँच भाल,
एक पै अजाँच विन जाँच ही वनावै है।।
न्याय ही जरावैं दुहूँ संतति तपाकर की,
एक मातरा को भेद काज पै बँटावै है।
जम तौ जरावै दापि पापिनि समूहनि कौं,
पापनि समूहनि कौं जमुना जरावै है ॥८॥

---

(६) श्रीसुदामाष्टक

जै जै महाराज जदुराज दुजराज एक,
सुहृद सुदामा राजद्वार आज आए हैं।
कहै रतनाकर प्रगट ही दरिद्र-रूप,
फटही लँगोटी बाँधि बाघ सौं लगाए हैं॥
छीनता की छाप दीनता की थाप धारे देह,
लाठी के सहारैं काठी नीठि ठहराए हैं।
संकुचित कंध पै अधौटी सी कँधौटी किए,
तापर सछिद्र छोटी लोटी लटकाए हैं॥१॥

दीन हीन सुहृद सुदामा की अवाई सुनैं,
दीनबंधु दहलि दया सौं मया-पागे हैं।
कहै रतनाकर सपदि अकुलाइ उठे,
भाइ गुरु-गेह के सनेह-जुत जागे हैं॥
आइ पौरि दौरि देखि दृगनि अलेख दसा,
धीर त्यागि औरहू बिसेष दुख-दागे हैं।
ये तौ करुना सौं छकि छिन अगुवाने नाहिं,
जानि वे पिछाने नाहिं पलटन लागे हैं॥२॥

आए दौरि पौरि लौं सुदामा नाम स्याम सुनैं,
भुज भरि भेंटि भए पूरन मुनै मनै।
कहै रतनाकर पधारे बाँह धारे भौन,
बेना उपरेना कै डुलावत बनै बनै॥
रुकमिनि धाई धारि झारी कर कंचन की,
सीतल सुहाएँ जल पूरित छनै छनै।
वै तौ पाय ऐंचत सकुचि चख नीर आनि,
पीर जानि धोवत ये और हूँ सनै सनै॥३॥

ल्याइ मनि मंदिर बिठाइ पट चंदन कैं,
आगैं धरि धवल परात पूरि पाते सौं।
कहै रतनाकर सुदामा कौ सँकोच मोचि,
कछु चुलकारि बोल रुचि-रस-राते सौं॥
बेगि घनस्याम कृपा-दामिनि दिखाई आनि,
ठानि यह रीति प्रीति-नीति के सुनाते सौं।
एक पग जौ लौं रुकमिनि जल पारयौ सीत,
तौ लौं आप दूसरौ पखारयौ आँस ताते सौं॥४॥

इत उत हेरि फेरि पीठि-पुटकी पै दीठि,
भरि चुटकी लै उपहार बिप्र-बामा कौ।
कहै रतनाकर चह्यौ ज्यौं मुख मेलन त्यौं,
मेला मच्यौ मंजु रिद्धि सिद्धि के हँगामा कौ॥

यौं कहि निवारयौ हंक विहँसि विलोकि वंक,
भीषमसुता कौ औ ससंक सत्यभामा कौ ।
आपने चने कौ अवै वदलौ चुकाए लेत,
चपल चवाए लेत तंदुल सुदामा कौ ।।५।।

दीवैं काज विप्र कौं बुलाईं जदुराज जानि,
हिय हुलसाईं सुरराज के वगर मैं ।
कहै रतनाकर उमगि रिद्धि सिद्धि चलीं,
हौड़ करि दौरत दरेरत डगर मैं ।।
सौहैं आनि पै न उकसौहैं पग रोकि सकीं,
विवस विचारी वेग-झोंक के झगर मैं ।
दमकीं दिखाइ द्वारिका मैं हमकीं जो फेरि,
ठमकीं सु आइ कै सुदामा के नगर मैं ।।६।।

हेरत न नैंकु पौरिया कैं नम्र टेरत हूँ,
कहत अवै ना सुर-सदन सिधैहैं हम ।
कहै रतनाकर सुघर घरनी त्यौं आइ,
पाइ गहि वोली चलौ संसय सिरैहैं हम ।।
वैभव निहारि निरधारि पुनि हेत विप्र,
वदत विचारि सिद्धि केतिक कमैहैं हम ।
तंदुल दै वदलौ चने कौ तौ चुकायौ कछू,
संपति इतीक कौ प्रतीक कहाँ पैहैं हम ।।७।।

सोई सुभ संपति बिपत्ति माहिँ गोई जऊ,
जोई जदुपति-रति पूरति सदाही मैँ ।
कहै रतनाकर पै संपति बिपत्ति यह,
जासौं प्रभु-सुरति सिराति ममताही मैँ ॥
तेरे कहैँ द्वारिका गए सो तौ भली ही भई,
भुज भरि भैँटे स्यामसुंदर उछाही मैँ ।
पर पछिताव यहै होत कत तंदुल दै,
हाय अनचाही एती बिपति बिसाही मैँ ॥८॥

—

द्रौपदी-चीरहरण — पृ० ४४५

(७) श्रीद्रौपदी अष्टक

घूँटिहैं हलाहल कै बूड़िहैं जलाहल मैं,
हम ना कुनाम कौ कुलाहल करावैंगी।
कहै रतनाकर न देखि पाइहैं की तुम्हैं,
पीर हूँ गँभीर लिए संगहीं सिधावैंगी॥
हाय दुरजोधन की जंघ पै उघारी बैठि,
ऐंठि पुनि कैसैं जग आनन दिखावैंगी।
बार बार द्रौपदी पुकारति उठाए हाथ,
नाथ होत तुमसे अनाथ ना कहावैंगी॥१॥

सांतनु की सांति कुल कांति चित्र-अंगद की,
गंग-सुत आनन की कांति बिनसाइगी।
कहै रतनाकर करन द्रोन बीरनि की,
स्रौन-सुनी धरम धुरीनता बिलाइगी॥
द्रौपदी कहति अकनाइ रजपूती सबै,
उतरी हमारी सारी माहिं कफनाइगी।
द्रुपद महीपति की पंच पतिहूँ की हाय,
पंच पतिहूँ कै पतिहूँ की पति जाइगी॥२॥

पांडु की पतोहू भरी स्वजन सभा मैं जब,
आई एक चीर सौं तौ धीर सब ख्वै चुकी।
कहै रतनाकर जो रोइबौ हुतौ सो तबै,
धाड़ मारि बिलखि गुहारि सब र्‌वै चुकी॥
झटकत सोऊ पट बिकट दुसासन है,
अब तौ तिहारीहूँ कृपा की बाट ज्वै चुकी।
पाँच पाँच नाथ होत नाथनि के नाथ होत,
हाय हौं अनाथ होति नाथ बस ह्वै चुकी॥३॥

भीषम कैां भेरौं कर्नहूँ कौ मुख हैरौं हाय,
सकल सभा की ओर दीन दृग फेरौं मैं।
कहै रतनाकर त्यौं अंधहू के आगैं रोइ,
खोइ दीठि चाहति अनीठहिँ निबेरौं मैं॥
हारी जदुनाथ जदुनाथ हूँ पुकारि नाथ,
हाथ दाबि कढ़त करेजहिँ दरेरौं मैं।
देखी रजपूती की सकल करतूति अब,
एक बार बहुरि गुपाल कहि टेरौं मैं॥४॥

दीन द्रौपदी की परतंत्रता पुकार ज्योंहीं,
तंत्र बिन आई मन-जंत्र बिजुरीनि पै।
कहै रतनाकर त्यौं कान्ह की कृपा की कानि,
आनि लसी चातुरी-बिहीन आतुरीनि पै॥

अंग परयौ थहरि लहरि दृग रंग परयौ,
तंग परयौ बसन सुरंग पँसुरीनि पै।
पंचजन्य चूमन हुमसि होठ वक्र लाग्यौ,
चक्र लाग्यौ घूमन उमगि अँगुरीनि पै ॥५॥

औचक चकित सब जादव-सभा के नाथ,
बोलि उठे कौरव-गुमान अब छूटैगौ।
कहै रतनाकर बहुरि पग रोपि कह्यौ,
पांडव बिचारनि कौ दुख अब छूटैगौ ॥
अंबर कौ काल कौ हली कौ हरि हरहूँ कौ,
मंतन अनंतता विधान जब छूटैगौ।
छूटैगौ हमारौ नाम भक्त-भीर-हारी जब,
द्रुपद-सुता कौ चीर-छोर तब छूटैगौ ॥६॥

भरि दृग नीर ज्यौं अधीर द्रौपदी है दीन,
कीन्यौ ध्यान कान्ह की महान प्रभुता कौ है।
कहै रतनाकर त्यौं पट मैं समान्यौ आइ,
अकल असीम भाइ दीनबंधुता कौ है ॥
भौंचक समाज सब औचक पुकारि उठ्यौ,
गारि उठ्यौ गहव गुमान गरुता कौ है।
चौदहै अनंत जग जानत हुते पै यह,
पंद्रहौं अनंत चीर द्रुपद-सुता कौ है ॥७॥

बोलि उठे चकित सुरासुर जहाँ हीँ तहाँ,
हा हा यह चीर है कै धीर बसुधा कौ है।
कहै रतनाकर कै अंबर दिगंबर कौ,
कैधौं परपंच कौ पसार बिधिना कौ है॥
कैधौं सेसनाग की असेस कंचुली है यह,
कैधौं ढंग गंग की अभंग महिमा कौ है।
कैधौं द्रौपदी की करुना कौ बरुनालय है,
पारावार कैधौं यह कान्ह की कृपा कौ है ॥८॥

धरम-सपूत धरमध्वज रहे हैं बनि,
पारथ सकल पुरुषारथ बिसारे हैं।
कहै रतनाकर असीम बल भीम हारे,
सूके सहदेव भए नकुल नकारे हैं॥
भीषम औ द्रोनहूँ निहारि मौन धारि रहे,
माष नाहिँ ताकौ ये तौ बिबस बिचारे हैं।
सालत यहै कै हाथ हालत न रावरौ हू,
मानौ आप नाहिँ दुख देखत हमारे हैं ॥९॥

अंबर लौं अंबर अनंत द्रौपदी कौ देखि,
सकल सभा की मतिभा यौं भई दंग है।
कोऊ कहै अंध-भूप-मोह-अंध नासन कौं,
चारु चंद्रिका की चली चादर अभंग है॥

कोऊ कहै कुरु-कुल-रूप-पाप-खंडन कौं,
उमड़ति अखिल अखंड-धार गंग है।
मेरें जान दीन-दुख-दंद हरिबे कौ यह,
करुना - अपार - रतनाकर - तरंग है ॥१०॥

कैधौं पांडु-पूतनि कौ कछुक पखंड यापैं,
कोऊ अभिचार कै सभा कौ ज्ञान लूट्यौ है।
कैधौं कछु बादी कलछल-रतनाकर कौ,
नटखट नाटक इहाँहूँ आनि जूट्यौ है॥
कहत दुसासन उसास न सभार्‍यौ जात,
साहस हमारौ आन सब बिधि छूट्यौ है।
लागि गए अंबर लौं अखिल अडंबर पै,
द्रुपद-सुता कौ अजौं अंबर न खूट्यौ है ॥११॥

---

(८) तुलसी-अष्टक

साधन की सिद्धि रिद्धि सगुन अराधन की,
सुभग समृद्धि-बृद्धि सुकृत-कमाई की।
कहै रतनाकर सुजस-कल-कामधेनु,
ललित लुनाई राम-रस-रुचिराई की ॥
सब्दनि की बारी चित्रसारी भूरि भायनि की,
सरवस सार सारदा की निपुनाई की।
दास तुलसी की नीकी कबिता उदार चारु,
जीवन अधार औ सिँगार कबिताई की ॥१॥

बिसद बिबेकी सुभ संत-हंस-बंसनि कौं,
महिमा महान मंजु मान सरवर की।
कहै रतनाकर रसिक कबि-भक्त-काज,
राम-सुधा-सींचो साख देव-तरुवर की ॥
भव-भय-भूत-भीति निखिल निवारन कौं,
जंत्र-मंत्र पाटी लिखी सिद्ध कर वर की।
दास तुलसी की कल कविता पुनीत लसैं,
जग-हित-हेत नीकी नीति नरवर की ॥२॥

हृदय कमठ दृढ़ धारि धर्म-ध्रुव-मंजुल-मंदर।
अति अनंत बिस्वास-वासुकी-पास सविस्तर॥
वहु विधि तर्क-वितर्क-सुरासुर करि सहकारी।
आगम-निगम-पुरान-सिंधु मथि सुधा निकारी॥
सुभ छंद-प्रबंधनि बाँधि बँध अजर अमर तासौं भरयौ।
इमि तुलसीदास ललाम यह राम-चरित-मानस करयौ॥३॥

भाषा जगत प्रकास पूरि जड़ता-तम नास्यौ।
उक्ति-जुक्ति-बहुरंग-बनज-बन बिमल बिकास्यौ॥
रसिक मलिंदनि रंजि रुचिर रस पान करायौ।
कपटी-कूर-उलूक-वृंद करि मूक चकायौ॥
जिहिँ निर्गुन-सगुन-सुरूप-भ्रम-भाप-झाप-झाईँ झई।
श्री तुलसिदास की अति अमल कल कविता सविता भई॥४॥

बिमल बिसद वर रामचरित-मानस अन्हवायौ।
अलंकार-ध्वनि-भेद सुभूषन वसन धरायौ॥
भूरि भाव-सुभ-सुमन वासना-विविध-रूप धरि।
सगुन-रूप-रस-रुचिर-रचित मोदक अर्पित करि॥
बहु दिव्य-उक्ति-मनि-दीप सौं उमगि उतारी आरती।
इमि तुलसिदास भाषा-भवन चिर-थिर थापी भारती॥५॥

हरिहर-चरित अनूप पूप मंजुल मन भाए।
अपर प्रसंग-विधान बिविध पकवान पकाए॥

साधु-माधुरी-गान पान रोचक सुखदाई।
खल-दल-तीछन भाइ राय चटनी मिरचाई॥
श्री तुलसिदास जस चारु चिर लह्यौ विसद कविता अजिर।
स्तुतिधार रसिकनि-हित रुचिर थापि भूरि भंडार थिर॥६॥

कविता-सृष्टि उदार-चारु-रचना-विरंचि बर।
भक्ति-भाव-प्रतिपाल-विस्नु मद-मोह-आदि-हर॥
बोध-विबुध-विबुधेस सेस-ध्रुव-धर्म-धराधर।
सब्द-सिंधु-बर-बरुन अर्थ-धन-धान्य-धनाकर॥
भ्रम-विटप-प्रभंजन कुमति-वन-अगिन तेज-रवि सुजस-ससि।
गुनि तुलसिदास सब-देव-मय प्रनवत रतनाकर हुलसि॥७॥

---

(८) वसंताष्टक

एकाएक आई कहूँ वैहर वसंतवारी,
संतवारी मंडली मसूसि त्रसिवै लगी।
कहै रतनाकर दृगनि' ब्रज-बासिनि कैं,
रंगनि की बिसद बहार बसिवै लगी॥
मसकन लागे बर बागे अंग-अंगनि पै,
उरज उतंगनि पै चोली चसिवै लगी।
धुनि डफ-तालनि की आनि बसी माननि मैं
ध्याननि मैं धमकि धमार धसिवै लगी॥१॥

पथिक तुरंत जाइ कंतहिँ जताइ दीजै,
आइगौ बसंत बर अमित उछाह लै।
कहै रतनाकर न चटक गुलावनि की,
कोप कै चढ़त तोप मैन बादसाह लै॥
कोकिल के कूकनि की तुरही रही है बाजि,
बिरहिनि भाजि कहाँ कौन की पनाह लै।
सीतल समीर पै सवार सरदार गंध,
मंद मंद आवत मलिंद की सिपाह लै॥२॥

कोकिल की कूक सुनि हूक हिय माहिँ उठै,
लूक से पलास लखि अंग भरसान्यौ है।
करिहौं कहा धौं धीर धरिहौं कहाँ लौं बीर,
पीरद समीर त्यौं सरीर सरसान्यौ है॥
पल पल दूजैं पल आवन की आस जियौ,
ताहू पर पत्र आइ बिष बरसान्यौ है।
अवधि बदी है कल आवन की कंत अरु,
आज आइ ब्रज मैं बसंत दरसान्यौ है॥३॥

बारिधि बसंत बढ़यौ चाव चढ़यौ आवत है,
त्रिबस बियोगिनि करेजौ थामि थहरैं।
कहै रतनाकर त्यौं किंसुक-प्रसून जाल,
ज्वाल बड़वानल की हेरि हियैं हहरैं॥
तुम समुझावति कहा हौ समुझौ तौ यह,
धीरज-धरा पै अब कैसैं पग ठहरैं।
भौंर चहुँ ओर भ्रमैं एकौ पल नाहिँ थम्हैं,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं॥४॥

पौन चहुँ-आसी ब्रजबासी चहुँघाँ सौं चले,
बादर गुलाल कौ बिसाल दरसत है।
कहै रतनाकर मुकेस कौ बिलास तामैं,
चंचला कौ चपल प्रकास परसत है॥

डफ-मिरदंग-चंग-बाजन-सुगाजन सौं,
आनँद अथोर मन-मोर सरसत है।
मैन-मघवान मघा-फाव फागही मैं ठानि,
आनि व्रज राग-अनुराग बरसत है ॥५॥

बिन मधुसूदन के मधु की अवाई भई,
कुटिल कला है मधुकैटभ कुचाल की।
कहै रतनाकर जुन्हाई चंद्रहास भई,
त्रिविध बयारि फुफुकारि फनि-जाल की ॥
आनन कौ रंग उड़ै उड़त अबीर संग,
रंग-धार होति अंग झार ज्वाल-माल की।
किरच मुकेस की करद है करेजैं लगै,
दरद-दरेरे देति गरद गुलाल की ॥६॥

थोरी थोरी बैस की अहीरनि की छोरी संग,
भोरी भोरी बातनि उचारति गुमान की।
कहै रतनाकर बजावति मृदंग चंग,
अंगनि उमंग भरी जोवन उठान की ॥
घाघरे की घूमनि समेटि कै कछोटी किए,
कटि-तट फेँटि कोछी कलित पिधान की।
झोरी भरे रोरी घोरि केसरि कमोरी भरे,
होरी चली खेलन किसोरी वृषभान की ॥७॥

आयौ जुरि उततैं समूह हुरिहारनि कौ,
खेलन कौं होरी बृषभान की किसोरी सौं।
कहै रतनाकर त्यौं इत ब्रजनारी सबै,
सुनि सुनि गारी गुनि ठठकि ठगोरी सौं॥
आँचर की ओट ओटि चोट पिचकारिनि की,
धाइ धँसी धूँधर मचाइ मंजु रोरी सौं।
ग्वाल-बाल भागे उत भभरि उताल इत,
आपै लाल गहरि गहाइ गयौ गोरी सौं॥८॥

---

(१०) ग्रीष्माष्टक

छायौ रितु ग्रीषम कौ भीषम-प्रचंड दाप,
जाकी छाप सब छिति-मंडल सही लगी।
कहै रतनाकर बयारि वारि सीरे कहूँ,
पैयै नैंकु एक रहै अहक यही लगी॥
करवट लै लै बरवट ही बिताई राति,
पलक लगाए हूँ न पलक रही लगी।
अबहीं सिरान्यौ ना सँताप कलही कौ फेरि,
ताप सौं तपाकर के तपन मही लगी॥१॥

आवा सौ अकास औनि तावा सी तपति तीखी,
दावा सौं दुगुनि झारझरस झलाका मैं।
कहै रतनाकर गई है रहि रंचक हूँ,
झपट न बाज मैं न झमक बलाका मैं॥
हेरत फिरत बारि बृच्छ कहलाने सबै,
होति अठकौसल कुरंगी औ अलाका मैं।
मंजुल मलाका हू न हिय सियरावैं नैंकु,
तपित सलाका भईं जेठ की जलाका मैं॥२॥

ग्रीषम कौ भीषम प्रताप जग जाग्यौ भए,
सीत के प्रभाव भाव भावना भुलानी के।
कहै रतनाकर त्यौं जीवन भयौ है जल,
जाके विना मानस सुखात सब प्रानी के॥
नारी नर सकल बिकल बिललात फिरैं,
भूले नेम प्रेमहूँ की कलित कहानी के।
ताहूँ सौं न काहू कौ हियौ है सरसात रंच,
पंच-सरहूँ के भए सर विन पानी के॥३॥

सीरी सी लगति विरहागिनि वियोगिनि कौं,
जोगिनि कौं होत पंच-तापहू सुहायौ है।
कहै रतनाकर तपाकर ससी कौं जानि,
रैनहूँ चकोरी कैं न चैन चित आयौ है॥
सोखे लेत वारि सबै भानुहूँ पिपासित ह्वै,
त्रासित ह्वै हिमगिरि-गैल धरि धायौ है।
प्रबल प्रचंड भूरि भीषम अखंड-दाप,
ग्रीषम के ताप कौं प्रताप जग छायौ है॥४॥

नीर-भरी-नहर-लहर जो चहूँघाँ हुती,
ताहि ताइ तुरत सुखाइ कियौ माटी है।
कहै रतनाकर हिमोपल की रेलारेल,
हेलि हिय पैठति निरंकुस निराटी है॥

ग्रीषम की भीषम अनीकनी दपेटे लेति,
फोरि गढ़ गहव उसीरनि की टाटी है।
आववारे-फवत-फुहारे-धान-धारहूँ सौं,
व्यजन-कुठारहूँ सौं कटति न काटी है ॥५॥

फटिक-सिलानि-रचे राजत अनूप हौज,
मौज सौं फुहारे फवैं आठहूँ पहल मैं।
कहै रतनाकर बिछाइ तिन पास सेज,
सुखद अँगेजि कै सुगंध की चहल मैं ॥
छात छिति छिरकीं कपूर चोवा चंदन सौं,
सीत छिपी आनि जहाँ ग्रीषम दहल मैं।
अंग अंग अमित उमंग की तरंग भरे,
दोऊ सुख लहत उसीर के महल मैं ॥६॥

टटकी उसीरनि की टाटी चहुँ ओर लगीं,
सराबोर सुखद सुगंध बहतोल मैं।
कहै रतनाकर त्यौं फहरैं गुलाब-वारे,
फवत फुहारे मनि-हौजनि अमोल मैं ॥
घसि घनसार चारु चंदन कौ पंक तासौं,
घेरि राखिबे कौं सीत समर-कलोल मैं।
प्यारौ रचै प्यारी के उरोज माहिं मक्र-व्यूह,
चक्र-व्यूह प्यारी रचै प्यारे के कपोल मैं ॥७॥

ग्वाल बाल गहकि गुपाल के जुरे हैं इत,
उत ब्रज-बाल राधिका की चलि आवैं हैं।
कहै रतनाकर करत जल-केलि सबै,
तन मन जीवन की तपनि सिरावै हैं॥
कर पिचकीनि हचकीनि सौं हथेरिनि की,
छीटैं चहुँ कोद छाइ मोद उपजावैं हैं।
मंजु मुख मोरि मुलकावतिं दृगंचल कौं,
अंचल कैं ओट चोट चंचल चलावैं हैं॥८॥

---

(११) वर्षाष्टक

पावस के प्रथम पयोद की परत बूँदैं,
औरै ओप उमड़ि अकास छिति छ्वै रहीं ।
रंग भयौ बूढ़नि अनूढ़नि अनंग भयौ,
अंग उठि आनँद तरंग दुख ध्वै रहीं ॥
सूहे साजि सुघर दुकूल सुख-फूलि-फूलि,
चौहरी अटा पै चढ़ी चंद-मुखी ज्वै रहीं ।
धूम सुखमा की झूम-झूम अलि-पुंजनि की,
अंबनि की डार तैं कदंबनि पै ह्वै रहीं ॥१॥

अमित अकार औ मकार के पयोद-पुंज,
छहरैं छबीले छिति छोरनि छए छए ।
कहै रतनाकर अनूप रूप-रंगनि के,
बदलत ढंग दृग देखत दए दए ॥
विविध विनोद वारि-बूँदनि के ठानैं कहूँ,
पावक-प्रमोद कहूँ चपला चए चए ।
निज मन-मोहन के मानौ मन मोहन कौं,
मदन खिलारी खेल खेलत नए नए ॥२॥

छाई सुभ सुखमा सुहाई रितु पावस की,
पूरब मैं पच्छिम मैं उत्तर उदीची मैं।
कहै रतनाकर कदंब पुलके हैं वन,
लरजैं लवंगलता ललित बगीची मैं॥
अवनि अकास मैं अपूरब मची है धूम,
भूमि से रहे हैं रुचि सुरस उलीची मैं।
हिरकि रही है इत मोर सौं मयूरी उत,
थिरकि रही है बिज्जु बादर दरीची मैं॥३॥

घेरि लीनी आनि जानि अबला अकेली मानि,
मरक अनंग की उमंग सरसत हैं।
कहै रतनाकर पपीहा कड़खैत लिए,
पी कहाँ कहाय चढ़ि चाय अरसत हैं॥
कंसहू के राज भए ऐसे ना कुकाज हाय,
जैसे आज ऊधौ दुख-साज दरसत हैं।
बादर से बीर ब्योम बायु के बिमान बैठि,
बूँदनि के बान बनिता पै बरसत हैं॥४॥

भूमि भूमि झुकत उमंडि नभ-मंडल मैं,
घूमि घूमि चहुँघा घुमंडि घटा घहरैं।
कहै रतनाकर त्यौं दामिनि दमंकैं दुरैं,
दिसि बिदिसानि दौरि दिव्य छटा छहरैं॥

सार सुख संपति के दंपति दुहूँ के दुहूँ,
अंग अंग जिनके उमंग भरे थहरैं ।
फूलनि के झूलन पै सहित अनंद लेत,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं ।।५।।

झूलत हिँडोरैं दुहूँ बोरे रस रंग जिन्हैं,
जोहत अनंग-रति-सोभा कटि कटि जाति ।
मंजु मचकी सौं उचकत कुच-कोरनि पै,
ललकि लुभाइ रसिया की डीठि डटि जाति ।।
देखत बनै ही कछु कहत बनै न नैंकु,
बाल अलबेली जब लाज सौं सिमटि जाति ।
हटि जात घूँघट लटकि लाँबी लट जाति,
फटि जाति कंचुकी लचकि लोनी कटि जाति ।।६।।

चहुँ दिसि छाई हरियाई सुखदाई जहाँ,
सोहति सुहाई तापै फबनि फुहीनि की ।
कहै रतनाकर ब्रजंगना उमंग-भरीँ,
झूलतिँ हिँडोरैं झोरैं सुखमा सुरीनि की ।।
भाषै चित-चाव कौन भौन-सुख-भोगिनि कौ,
डहकि डगाए देति मनसा मुनीनि की ।
ऊरुनि की हचक सु उचक उरोजनि की,
लंक की लचक औ मचक मचकीनि की ।।७।।

हरी हरी भूमि मैं हरित तरु झूमि रहे,
हरी हरी बल्ली बनौं बिबिध बिधान की ।
कहै रतनाकर त्यौं हरित हिँडोरा परयौ,
तापै परी आभा हरी हरित बितान की ॥
है है हिय हरित हरैं ही चलि हेरौ हरि,
तीज हरियाली की प्रभाली सुभ सान की ।
एती हरियाली मैं निराली छबि छाइ रही,
बसन गुलाली सजे लाली बृषभान की ॥८॥

---

(१२) शरदष्टक

विकसन लागे कल कुमुद-कलाप मंजु,
मधुर अलाप अलि अवलि उचारै है।
कहै रतनाकर दिगंगना-समाज स्वच्छ,
कास-मिसि हास के विलासनि पसारै है॥
कार-चाँदनी मैं रौन-रेती की वहार हेरि,
याही निरधार ही हुलास भरि धारै है।
जीति दल वादल के परव पुनीत पाइ,
कूल कालिंदी के चंद रजत वगारै है॥१॥

पौन अति सीतल न तपत सुगंध-सने,
मंद मंद वहत अनंद-देन-हारे हैं।
कहै रतनाकर सुकुसुमित कुंजनि मैं,
वैठि उठि भ्रमत मलिंद मतवारे हैं॥
छिटकति सरद-निसा की चाँदनी सौं चारु,
दीपति के पुंज परैं उचटि उझारे हैं।
स्वच्छ सुखमा के परि पूरित प्रभा के मनौ,
सुंदर सुधा के फूटि फवत फुहारे हैं॥२॥

पूरि रह्यौ छिति तैं अकास लौं प्रकास-पुंज,
जामैं लखि रजत-पहार गुमड़ी परै।
पारद अपार रतनाकर तरंग की सी,
सुखमा अभंग चहुँ घेर घुमड़ी परै॥
चमकति रेती चारु जमुना - कछार-धार,
बिपिन अगार भलमल झुमड़ी परै।
राखी संचि चंद्रिका मनौ जो बरषा भर की,
सोई चंद तैं है सतचंद उमड़ी परै ॥३॥

साज लखिबे कैं काज आए ब्रज-राज तहाँ,
सिमट्यौ समाज जहाँ सारदी सुमेला कौ।
कहै रतनाकर बिलोकि राधिका कौ रूप,
राँच्यौ रंग अंगनि अनंग के झमेला कौ॥
ताकी दिव्य दीपति कौ अंतर सँचार भयौ,
वार भयौ तीछन कटाच्छ-सेल-रेला कौ।
चाहि झझिया कौ घट पूजत सचोप ताहि,
घट झझिया कौ बन्यौ घट अलबेला कौ ॥४॥

रंग रंग साजे चीर अंगना उमंग-भरी,
तीर जमुना कैं रंग रुचिर रचावैं हैं।
कहै रतनाकर सुघट झझिया कौ घट,
पूजि पूजि मोद उर-अंतर खचावैं हैं॥

गावैं गीत सरस बजावैं मिलि ताल सबै,
छैलनि की छाती काम-तापनि तचावैं हैं।
घूमि घूमि चारौं ओर कटि-तट दूमि दूमि,
झुकि झुकि झूमि झूमि झूमर मचावैं हैं ॥५॥

बिसद बहार क्वार-राका की निहारि कूल,
भूलि गति जमुना-प्रवाह जकि ज्वै रह्यौ।
कहै रतनाकर त्यौं प्रकृति समाजनि की,
सुखमा अमंद सौं अनंद-रस च्वै रह्यौ॥
चंद-बदनीनि-संग रास ब्रज-चंद रच्यौ,
छवि के प्रकास सौं अकास लगि छ्वै रह्यौ।
चेत चलिबे की षट मास लौं न आई इमि,
एते चंद चाहि चंद चकपक ह्वै रह्यौ ॥६॥

पद थरकाइ फरकाइ भुजमूल भरी,
मंद मुसकानि भौंह तानि तमकति हैं।
लंक लचकाइ चल अंचल उचाइ लोल,
कुंडल कपोलनि झुमाइ झमकति हैं॥
स्वेद-सनी-बदन मदन-सुख-देनी वर,
बेनी बाँधि किंकिनी सहाँस हमकति हैं।
करतिं अलाप स्याम-संग ब्रज-बाम मंजु,
मेघ-मेखला मैं चंचला सी चमकति हैं ॥७॥

नचत लचाइ लंक लोचन चलाइ बंक,
करत प्रकास रासि ब्रज-जुवतीनि की।
आनँद-अमंद-चंद उमँग बढ़ावै मनौ,
रस - रतनाकर - तरंग - अवलीनि की॥
काकौ मन मोहत न जोहत जुन्हाई माहिँ,
छहर कन्हाई की मुकट-पँखुरीनि की।
छवि की छटक पीत-पट की चटक चारु,
लटक त्रिभंग की मटक भृकुटीनि की॥८॥

---

(१३) हेमंताष्टक

विकसन लागे मुचुकुंद लवली औ लोध,
कछु परसौं तैं सरसौं हूँ दलिनी भई।
कहै रतनाकर मनोज-ओज पोषन कौं,
बन उपवन मैं प्रफुल्ल फलिनी भई॥
औरै और कलिनि खिलावत समीर हेरि,
माष मन मानि कै मलिन नलिनी भई।
हेंवंत मैं काम की अपूरब कला सौं चकि,
कोकिल भुलाने कूक मूक अलिनी भई॥१॥

पौन पान पानी भए सीतल सुहाए स्वच्छ,
असन-सवाद भयौ सबही मिठाई सौ।
कहै रतनाकर विचित्र चित्र-सारी माहिँ,
उठत सुगंध-धूम मौज मन-भाई सौ॥
विविध बिलासनि के हरष-हुलासनि सौं,
सुखद बसंत होत सुकृत-कमाई सौ।
बाम अभिराम सी सुहाई घाम देह लगै,
लागत सनेह नए नेह की निकाई सौ॥२॥

धारि कै हिमंत के सजीले स्वच्छ अंबर कौं,
आपने प्रभाव कौ अडंबर बढ़ाए लेति।
कहै रतनाकर दिवाकर-उपासी जानि,
पाला कंज-पुंजनि पै पारि मुरझाए लेति॥
दिन के प्रताप औ प्रभा की प्रखराई पर,
निज सियराई-सँवराई-छवि छाए लेति।
तेज-हत-पति-मरजाद-सम ताकौ मान,
चाव-चढ़ी कामिनी लौं जामिनी दबाए लेति ॥३॥

अंतपुर पैठि भानु आतुर कढ़ै न बेगि,
चिर निसि-अंक मैं निसापति डरे रहैं।
कहै रतनाकर हिमंत कौ प्रभाव ही सौं,
संत-मनहूँ मैं भाव और ही भरे रहैं॥
नर पसु पच्छी सुर असुर समाज आज,
काम अरचा मैं निसि-बासर परे रहैं।
ह्वै कै कुसुमायुध के आयुध उबारू अब,
सब घरिनी ही मैं धरोहर धरे रहैं ॥४॥

भानुहूँ की लागी प्रीति अगिनि दिगंगना सौं,
सीत-भीति जागी इमि सकल समंत कौं।
कहै रतनाकर रहत न अकेले बनै,
मेले बनै रूसिहूँ तिया सौं दोषवंत कौं॥

हिम की हवा सौं हलि अचल समाधि त्यागि,
लपटनि-लालसा-लसित लखि कंत कौं।
पाट की पिछौरी बाहु दाहिनैं पखौरी किए,
गौरी लगी हुलसि असीसन हिमंत कौं ॥५॥

हेरत हिमंत के अनंत प्रभुता कौ दाप,
भानु के प्रताप की प्रभाहूँ गरिबै लगी।
कहै रतनाकर सुधाकर किरन फेरि,
काम के जिवावन कौ जोग करिबै लगी ॥
बदलन बाने सब निज मनमाने लगे,
चारौं ओर और ही बयार भरिबै लगी।
जोगिनि के होस पै भरोस पै वियोगिनि के,
रोस पै सँजोगिनि के ओस परिबै लगी ॥६॥

विचलत मान जानि हेंवत अवाई माहिं,
ढीली परि सकल हठीली सकुचाई हैं।
कहै रतनाकर सुलाज राखिवै कैं काज,
ताके रोकिवे की बृथा विधि बहु ठाई हैं ॥
डारि राखे परदे चहूँघाँ मंजु मंदिर मैं,
अगर सुगंध तैं दसौं दिसि रुँधाई हैं।
चोली कसमीरी कसी कंपित करेजनि पै,
सेजनि पै साजि धरी दुहरी दुलाई हैं ॥७॥

गावैं गीत अंगना प्रवीन कर बीन लिएँ,
आनँद-उमंग-भरी रंग के भवन मैं।
कहै 'रतनाकर' जवानी की उमंग होईं,
तंग होईं बसन सजीले तने तन मैं॥
सुखद पलँग होईं दुहरी दुलाई लगी,
आनँद अभंग तब होइ अगहन मैं।
नूपुर कैं संग संग बाजत मृदंग होईं,
रंग होइ नैननि तरंग होइ मन मैं॥८॥

—

(१४) शिशिराष्टक

फूली अवली हैं लोध लवली लवंगनि की,
धवली भई है स्वच्छ सोभा गिरि-सानु की।
कहै रतनाकर त्यौं मल्लिक फूलनि पै,
झूलनि सुहाई लगै हिम-परमानु की॥
साँझ-तारी औ भोर-तारा सौ दिखाई देनि,
सिसिर कुही मैं दबी दीपनि कृसानु की।
सीत-भीत हिय मैं न भेद यह भान होत,
भानु की प्रभा है कै प्रभा है सीतभानु की॥१॥

धाइ धाइ सिंधुर मदंध फूले लोधनि सौं,
गंध-लुब्ध है कै कंध रगरत जात हैं।
कहै रतनाकर मसान अगनाई माहिं,
बाघनि के छौना लसत लुगियान हैं॥
उठि उठि धूप बनवासिनि के धामनि तैं,
आसनि तैं सीत के नसाएँ पदगान हैं।
पंछीगन सीस काढ़ि बिटप-कोटरनि तैं,
उमहि कछुक पौन गहि गहि जात हैं॥२॥

सिसिर खिलारी भयौ मिसिर मदारी महा,
करतब आपनौ अनूपम उघारै है।
कहै रतनाकर अखिल हरियारी पर,
कलित कपूर-धूर बिसद बगारै है॥
पावक पै फूँकि कै प्रभाव निज पानी करै,
पानी कौं परसि पल उपल सुधारै है।
प्रबल-प्रचार सीतकार की करामत सौं,
भानु कौं पलटि सीत-भानु करि डारै है॥३॥

आयौ इमि सिसिर-अतंक महि-मंडल मैं,
अंक माहिं संकित न बाल ठुनकत है।
कहै रतनाकर न बिकसत बोल नैकुँ,
कोकिल न कूजत न भौंर गुनकत है॥
इमि हिम-गाला बरसत चहुँ ओरनि तैं,
ताकौ कहि आवत कसाला-गुन कत है।
सीत-भीत अतुल तुलाई करिबे कौ मनौ,
धुनक बिधाता तूल-धाप धुनकत है॥४॥

ह्वै कै भय-भीत सीत प्रबल प्रभावनि सौं,
पाला माहिं मेदिनी सुगात निज ग्वै रही।
कहै रतनाकर तपाकर कौं चंद जानि,
मानि सुख चकई-बियोग-ताप ग्वै रही॥

जोगी भयौ चाहत सँजोगी भोगी जोगी भयौ,
मति जुवती मैं पंच-पावक मैं ध्वै रही।
पैठे जात सिमिट भवानी के पटंबर मैं,
अंबर की चाह यौं दिगंबर कौं ह्वै रही ॥५॥

मृगमद - केसर - अगर - धूप - धूम काँपि,
सीत-भीत काँपनि की रीतिहिं बुझावैं हैं।
कहै रतनाकर त्यौं परदे दरीचिनि के,
हिलि हिलि हिलन अजोगता सुझावैं हैं॥
संग-सुख-संपति न दंपति बिहाइ सकैं,
प्रीति सौं परस्पर यौं भाषि अरुझावैं हैं।
सिसिर-निसा मैं निसरन कौ न चाह कहूँ,
गिलिम गलीचा पाइ गहि समुझावैं हैं ॥६॥

मृग-मद केसर - अगर - धूम जालनि कौ,
सुखद दुसालनि कौ जदपि सहारौ है।
कहै रतनाकर पै आनत बिचार आन,
काँपि जात गात सब हहरि हमारौ है॥
तन की कहा हैं अब आनि मनहूँ पै पर्‌यौ,
ऐसौ कछु सिसिर-प्रभाव कौ पसारौ है।
मानहूँ तैं प्यारौ मान लागत सखी पै आज,
मानहूँ तैं प्यारौ लगै पीतपटवारौ है ॥७॥

मंजुल मकंदनि के कोंपल सचोप लखैं,
लागे गान गुनन मलिंद छिन द्वैक तैं।
कहै रतनाकर गुलाबनि मैं बौंड़ी लगीं,
औंड़ी ओप औरही अनूप इन द्वैक तैं॥
केसरि - कुरंगसार - लेप न सुहात अंग,
कन घनसार के मिलावै किन द्वैक तैं।
दाबी रहै हौंसनि को हुमस न ही मैं अब,
फाबी फाब सीत पै गुलाबी दिन द्वैक तैं॥८॥

---

(१५) प्रभाताष्टक

ऊषा कौ प्रकास लाग्यौ लैकन अकास माहिँ,
सुमन विकास कैं हुलास भरिवे लगे।
कहै रतनाकर त्यौं विटप निवासनि मैं,
द्विजगन चेति कसमस करिवे लगे॥
मुनिजन लागे लेन चुभकी गगन गंग,
गौन पौन-पथिक हिये मैं धरिवे लगे।
तमचुर-बंदी धरे अरुन-सुवाने सीस,
ताकौ राज-रोर चहुँ ओर भरिवे लगे॥१॥

साजे सीस बानौ तमचुर ज्यौं प्रभाकर कौ,
प्रगट पुकारि तासु आगम जनायौ है।
कहै रतनाकर गुलाब चटकारी देत,
दिसि विदिसानि त्यौं सुगंध सरसायौ है॥
आयौ अगवानी कौं समीर धीर दक्खिन कौ,
चहकि विहंग मंगलीक गान गायौ है।
ज्यौं ज्यौं व्योम बढ़त प्रकास-पुंज पूरब सौं,
त्यौं त्यौं तम-तोम जात पच्छिम परायौ है॥२॥

द्विज-गन लाग्यौ मंत्र पढ़न सजीवन औ,
सुमन-समूह दै सचोप चुटकी उठ्यौ।
कहै रतनाकर रुचिर रस रंग पाइ,
उपबन जंगल है मंगल मई उठ्यौ॥
ग्रानद प्रभात-परमानँद अमंद पाइ,
मंद मलयानिल यौँ बरसि अमी उठ्यौ।
आछे अंगधारिनि कै चरचा-प्रसंग कहा,
नवल उमंग सौँ अनंग पुनि जी उठ्यौ॥३॥

पेखन कौँ प्रात-प्रभा उपबन बृंदनि को,
नंदन की सोभा सब सिमिटि इतै रही।
कहै रतनाकर त्यौँ प्रकृति निछावर कौँ,
ओस मुकताली बगराइ अमितै रही॥
मंद मलयानिल कै परस-प्रमोद पाइ,
ललित बिनोद बल्ली बिटप हितै रही।
बिबस बिसारि चकवा सौँ मिलिबे कौ चाव,
चकई चहूँघाँ चित चकित चितै रही॥४॥

प्यारे प्रात आवन की बिसद बधाई देत,
डोलैँ मंद मारुत सुगंध सुचि धारे हैँ।
कहै रतनाकर सु आहट-प्रमोद पाइ,
गाइ उठे बिपुल बिहंग चहकारे हैँ॥

फूलनि पै मंजु महि-हरित-दुकूलनि पै,
ओस-कन झूलैं झलमल-दुतिवारे हैं।
स्वच्छ सुखमा के मनौ छूटत फुहारे ताके,
बिंदु छटकारे चहुँ-ओरनि बगारे हैं ॥५॥

जाके अरुनच्छद उमंग कौ प्रसंग पाइ,
सुखद सुगंध पौन मंद मंद थरके।
कहै रतनाकर सुमन-गन फूलि उठे,
दिग-बनितानि पै अनूप रूप छरके॥
करत जुहार चारु चहकि उचाइ ग्रीव,
चाय-भरे चपल विहंग फिरैं फरके।
आयौ देत दिवस बधायौ वर हेम-हंस,
मोती मंजु चुनत सु जोती-पुसकर के ॥६॥

चंचरीक चाय-भरे चाँचरि मचाई चारु,
पच्छिनि धमार राग रुचिर उचारयौ है।
कहै रतनाकर सुमन-गन फूलि फूलि,
परिमल-पुंज लै अबीर मंजु पारयौ है॥
सुखमा बिलोकि बल्ली बिटप बिनोद-भरे,
झूमि झूमि आनँद-हुलास-आँस ढारयौ है।
मेलत गुलाल-रंग दिग-बनितानि अंग,
राग भरयौ भानु फाग खेलत पधारयौ है ॥७॥

लागे गान करन विहंगम-समाज सबै,
रंग-भूमि रूरौ सुखमा कौ साज भ्वै गयौ।
कहै रतनाकर सचेत ह्वै सुमंच बैठि,
कौतुक निहारि मंजु मोद मन ग्वै गयौ॥
देखत हीं देखत दिगंगना सु अंग पै,
बाजीगर-भानु कौ कला कौ कर छ्वै गयौ।
नीलम तैं मानिक पदुमराग मानिक तैं,
तातैं मुकता ह्वै पुनि हीरा-हार ह्वै गयौ॥८॥

कृतियों के रूप में देखा जाय तो रत्नाकर जी की काव्य कृ[illegible]
हिन्दी साहित्य के लिये अनुपम भेंट स्वरूप हु[illegible]
इनकी काव्य शैली में अतीव निखरता एवं अ[illegible]
का पुट दिखलाई देता है। आपकी काव्य कौशल[illegible]
लिये पथ प्रदर्शक बन कर सामने आया है।
आपकी [illegible]

(१६) संध्याष्टक

बालपन बिसद बिताइ उदयाचल पै,
संबलित कलित कलानि है उमाहै है।
कहै रतनाकर बहुरि तम-तोम जीति,
उच्च-पद आसन लै सासन उछाहै है॥
पुनि पद सोऊ त्यागि तीसरे बिभाग माहिँ,
न्यून-तेज है कै सून पास मैं निबाहै है।
जानि पन चौथौ अब भेष कै भगौहौं भानु,
अस्ताचल थान मैं पयान कियौ चाहै है॥१॥

छाई छवि स्यामल सुहाई रजनी-मुख की,
रंच पियराई रही ऊपर मुरेरे के।
कहै रतनाकर उमगि तरु-छाया चली,
बढ़ि अगवानी हेत आवत अँधेरे के॥
घर घर साजैँ सेज अंगना सिँगारि अंग,
लौटत उमंग भरे बिछुरे सवेरे के।
जोगी जती जंगम जहाँ हीँ तहाँ डेरे देत,
फेरे देत फुदकि बिहंगम बसेरे के॥२॥

सैल तैं पसरि कर-निकर सुधाकर के,
आनि जल-तल पै लखात लहकत हैं।
कहै रतनाकर प्रभाकर प्रभा के दाम,
छोरि छिति कछुक अकास ठहकत हैं॥
राते अरबिंद कैं पराग मकरंद जात,
कैरव पै मंजुल मलिंद महकत हैं।
अहकत आह कै बराक चक्रवाक दाहि,
चाहि चहुँ ओर सौं चकोर चहकत हैं॥३॥

जानि नभनाथ कौ पयान सैन-मंदिर कौं,
मंगलीक गान मैं दुजाली भूरि भूली है।
कहै रतनाकर बिनोद चहुँ कोद बढ्यौ,
कामिनी तरुनि पै प्रमोद-प्रभा झूली है॥
मोती-माल वारतीं दिगंगना उमंग भरीं,
तारा ह्वै अकास-अंगना सो परै रूली है।
प्राची मुख सेत उत खेत चाँदनी है किधौं,
तूली साजि अंबर प्रतीची इत फूली है॥४॥

आजु अति अमल अनूप मुख-रूप रची,
सरद - निसामुख की सुखमा सुहाति है।
कहै रतनाकर निसाकर दिवाकर की,
एकै दुति दोऊ दिसि माहिं दरसाति है॥

कुमुद सरोज अध मुकुलित देखि परैं,
चाय-बोरी चहकि चकोरी चकराति है।
चलि चलि चकई चपल दुहुँ ओर चाहि,
चकित कराहि औ उमाहि रहि जाति है ॥५॥

तुंग कुच-स्‍ृंग-सैल-सिखर सराहैं अजौं
मान जुवती तन मैं थान परषत है।
जानि यह उदित निसापति मनोज-बंधु,
धिक निज धाक मन मानि मरषत है ॥
लाल ह्वै बिसाल कर प्रखर पसारि वेगि,
जासौं जोम-धारिनि कौ धीर धरषत है।
मुकुलित कुमुद - मियान तैं अतंक - जुत,
बंक भ्रमरावली - कृपान करषत है ॥६॥

राग की बगीची जो सँजोगिनि प्रतीची गनै,
स्रोनित-उलीची सो बियोगिनि बतावै है।
कहै रतनाकर चकोरनि अनंद देत,
सोई चंद कोकनि कैं ओक सोक छावै है ॥
मनि-गन लागत तुम्हैं तो उड़गन आली,
फनि मनि-माली लौं हमैं सो डरपावै है।
खेलौ हँसौ जाइ जाहि भावत सलोनी साँझ,
ह्याँ तौ जरे माँझ सो लुनाई लोन लावै है ॥७॥

लागै रजनी-मुख की सुखमा सुहाई ताहि,
नाहि सुखरासि की न आस टरि गई होइ।
कहै रतनाकर हिमाकर-मुखी कैँ हाँस,
दिवस-कसाला-जगी ज्वाला हरि गई होइ॥
पूछौ पर जाइ वा बियोगी के हिये सौँ नैँकु,
जाकी थाकी पीडँरी भभरि भरि गई होइ।
उठत न होइ पाय गाँय-सामुहैँ लौँ आइ,
धाइ मग माँझ हाय साँझ परि गई होइ॥८॥

सानी कछु श्वाँस मैं उसास मैं उड़ानी कछू छूटे केस-पास मैं कलेस अरुझानी हैं—पृ० ४८९

(१) श्री कृष्ण-दूतत्व

बोधन कैं काज जदुराज दुरजोधन कौं,
पाँचौ महाजोधनि के मत सुनि ठानी है।
कहै रतनाकर मिलाप के अलाप हेत,
आप चलिबे की चारु चाह चित आनी है॥
एते माहिँ द्रौपदी दुखारी दुरी दीठि परी,
सारी संधि साधन की साध सिथिलानी है।
सानी कछु आँस मैं उसास मैं उड़ानी कछू,
छूटे केस-पास मैं उसेस अरुझानी है॥१॥

बोधन मदंध अंध-पूत दुरजोधन कौं,
दीनबंधु आनि रथ-कंध ठहरत हैं।
कहै रतनाकर तरंगित उमंग-रंग,
स्याम-घन अंग छनदा लौं छहरत हैं॥
निस्वन-निनाद औ असंख संख-बाद मिले,
जान आदि घुमड़ी घटा लौं घहरत हैं।
थहरत चक्रपानि सारँग भुजा पै सज्यौ,
अच्छय धुजा पै पच्छिराज फहरत हैं॥२॥

दुख बनबास के अज्ञात बासहू के त्रास,
रावरे कहै पै कै बिसास सब झेले हैं।
कहै रतनाकर बुलाइ अब कीजै न्याइ,
दूरि करि जेते द्रोह मोह के झमेले हैं॥
दीजै बाँटि बखरे कछू तौ बेगि पांडव के,
दस्य रन-तांडव के दारुन दुहेले हैं।
भीषम औ द्रोन सौं बिचार करि देखौ रंच,
द्रोही दुष्ट-पंचक तौ पंच पर खेले हैं॥३॥

दीजै गाँव पाँच हीं हमारे कहैं पांडव कौं,
खांडव लौं ना तौ राज-साज दहि जाइँगे।
कहै रतनाकर निछत्र छिति ह्वै है सबै,
सूर बीर स्रोनित-नदी मैं बहि जाइँगे॥

बोधन मंदंध अंध-पूत दुरजोधन कौं दीनबंधु आनि रथ-कंध ठहरत हैं—पृ० ४८१

ए हो ! कुरुराज ! जो न मानिहौ हमारी आज तौ पै या समाज पर गाज परि जाइगी । पृ० ४८७

सूझत नहीं है तुम्हें अब तौ सुझाऐं रंच,
पाछैं पछिताऐं कहा लाहु लहि जाइँगे।
जैहैं वृथा आँखैं खुलि तब जब देखन कौं,
जग मैं तिहारे ना दुलारे रहि जाइँगे ॥४॥

भीषम औ द्रोन कृपाचार राखि साखी सुनौ,
भाषी ना हमारी यह टारी टरि जाइगी।
नाथ रतनाकर के कहत उठाए हाथ,
माथ पै अकीरति तिहारे धरि जाइगी ॥
ह्वै है दुरजोधन निधन सब जोधनि लै,
सारी औनि स्रोन-सरिता सौं भरि जाइगी।
ए हो कुरुराज जौ न मानि हौ हमारी आज,
तौ पै या समाज पर गाज परि जाइगी ॥५॥

मानी दुष्ट-पंचक न बात जब रंचक हूँ,
वंचक लौं और ही अठान वरु ठानी है।
कहै रतनाकर हुमसि हरि आनन पै,
आनि कछु औरै कोप-ओप उमगानी है ॥
हेरि चक्र चहुँघाँ सरोस दृग फेरि चले,
अक्र ह्वै सबै ही रहे बक्रता बिलानी है।
सौहैं हाथ-पावनि उठावन की कौन कहै,
दीठि ना उठाई कोऊ ढीठ भट मानी है ॥६॥

त्रिकुटी तनेनी जुटी भृकुटी बिराजैं बक्र,
तोले संख चक्र कर डोले थरकत हैं।
कहै रतनाकर त्यौं रोष की तरंग भरे,
रोषित-उमंग अंग-अंग फरकत हैं॥
कर्न दुरजोधन दुसासन कौ मान कहा,
मान इनके तौ पाँसुरी मैं खरकत हैं।
भीषम औ द्रोनहूँ सौं बनत न डारैं डीठि,
नीठिहूँ निहारे नैन-तारे तरकत हैं॥७॥

पाँचजन्य गूँजत सुनान सब कान लग्यौ,
दसहूँ दिसानि चक्र चक्रित लखायौ है।
कहै रतनाकर दिवारनि मैं, द्वारनि मैं,
काल सौ कराल कान्ह-रूप दरसायौ है॥
मंत्र षडयंत्र के स्वतंत्र है पराने दूरि,
कौरव-सभा मैं कोऊ होंठ ना हलायौ है।
संक सौं सिमिटि चित्र-अंक से भए हैं सबै,
बंक अरि-उर पै अतंक इमि छायौ है॥८॥

---

(२) भीष्म-प्रतिज्ञा

भीषम भयानक पुकार्यौ रन-भूमि आनि,
छाई छिति छत्रिनि की गीति उठि जाइगी।
कहै रतनाकर रुधिर सौं रुँधैगो धरा,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठि जाइगी॥
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु-पूतनि की,
भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी।
कैतौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जाइगी कै,
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी ॥१॥

पारथ विचारौ पुरुषारथ करैगौ कहा,
स्वारथ - समेत परमारथ नसैहौं मैं।
कहै रतनाकर प्रचार्यौ रन भीषम यौं,
आज दुरजोधन-दुख दूरि दैहौं मैं॥
पंचनि कैं देखत प्रपंच करि दूरि सबै,
पंचनि कौ स्वत्व पंचतत्त्व मैं मिलैहौं मैं।
हरि-प्रन-हारी-जस धारि कै धरा है सांत,
सांतनु कौ सुभट सपूत कहवैहौं मैं ॥२॥

मुंड लागे कटन पटन काल-कुंड लागे,
रुंड लागे लोटन निमूल कदलीनि लौं ।
कहै रतनाकर त्रितुंड-रथ-बाजी-झुंड,
लुंड मुंड लोटैं परि उछरिति मीनि लौं ॥
हेरत हिराए से परस्पर सचिंत चूर,
पारथ औ सारथी अदूर दरसीनि लौं ।
लच्छ-लच्छ भीषम भयानक के बान चले,
सबल सपच्छ फुफुकारत फनीनि लौं ॥३॥

भीषम के बाननि की मार इमि माँची गात,
एकहूँ न घात सव्यसाची करि पावै है ।
कहै रतनाकर निहारि सो अधीर दसा,
त्रिभुवन-नाथ - नैन नीर भरि आवै है ॥
बढ़ि बढ़ि हाथ चक्र-ओर ठढ़ि जात नीठि,
रहि रहि तापै बक्र दीठि पुनि धावै है ।
इत मन-पालन की कानि सकुचावै उत,
भक्त-भय-घालन की बानि उमगावै है ॥४॥

छूट्यौ अवसान मान सकल धनंजय कौ,
धाक रही धनु मैं न साक रही सर मैं ।
कहै रतनाकर निहारि करुनाकर कैं,
आई कुटिलाई कछु भौंहनि कगर मैं ॥

रोकि झर रंचक अरोक वर वाननि कौ,
भीषम यौं भाष्यौ मुसकाइ मंद स्वर मैं ।
चाहत बिजै कौं सारथी जौ कियौ सारथ,
तौ वक्र करौ भृकुटी न चक्र करौ कर मैं ॥५॥

वक्र भृकुटी कै चक्र ओर चष फेरत हीं,
सक्र भए अक्र उर थामि थहरत हैं ।
कहै रतनाकर कलाकर अखंड मंडि,
चंडकर जानि प्रलय खंड ठहरत हैं ॥
कोल कच्छ कुंजर कहलि हलि काढ़ैं खीस,
फननि फनीस कैं फुलिंग फहरत हैं ।
मुद्रित तृतीय दृग रुद्र मुलकावैं मीड़ि,
उद्रित समुद्र अद्रि भद्र भहरत हैं ॥६॥

जाकी सत्यता मैं जग-सत्ता कौ समस्त सत्त्व,
ताके ताकि मन कौं अतत्त्व अकुलाए हैं ।
कहै रतनाकर दिवाकर दिवस ही मैं,
झंप्यौ कंपि झूमत नछत्र नभ छाए हैं ॥
गंगानंद आनन पै आई मुसकानि मंद,
जाहि जोहि वृंदारक-वृंद सकुचाए हैं ।
पारथ की कानि ठानि भीषम महारथ की,
मानि जव विरथ रथांग धरि धाए हैं ॥७॥

ज्यौंही भए बिरथ रथांग गहि हाथ नाथ,
निज प्रन-भंग की रही न चित चेत है।
कहै रतनाकर त्यौं संग हीं सखाहूँ कूदि,
आनि अर्‌यौ सौंहैं हाहा करत सहेत है॥
कलित कृपा औ तृपा छिमग समाहे पग,
पलक उच्यौई रह्यौ पलक-समेत है।
धरन न देत आगैं अरुझि धनंजय औ,
पाछैं उभय भक्त-भाव परन न देन है॥८॥

---

(१) वीर अभिमन्यु

धरम-सपूत की रजाइ चित-चाही पाइ,
धायौ धारि हुलसि हथ्यार हरबर मैं।
कहै रतनाकर सुभद्रा कौ लड़ैतौ लाल,
प्यारी उत्तराहू की रुक्यौ न सरबर मैं॥
सारदूल-सावक वितुंड-झुंड मैं ज्यौं त्यौंहीं,
पैठ्यौ चक्रव्यूह की अनूह अरबर मैं।
लाग्यौ हास करन हुलास पर वैरिनि के,
मुख मंद हास चंदहास करबर मैं॥१॥

वीरनि के मान औ गुमान रनधीरनि के,
आन के विधान भट-बृंद घमसानी के।
कहै रतनाकर विमोह अंध-भूपति के,
द्रोह के सँदोह सूत-पूत अभिमानी के॥
द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के,
आयु-औधि-दिवस जयद्रथ अठानी के।
कौरव के दाप ताप पांडव के जात बहे,
पानी माहिँ पारथ-सपूत की कृपानी के॥२॥

पारथ-सपूत की कृपान की अनोखी काट,
देखि ठाट बैरिनि के ठठकि ठरे रहे।
कहै रतनाकर सु सक्र असनी लौं पिल्यौ,
चक्र-व्यूहहू के गुन गौरव गरे रहे॥
मानि निज बीरनि की भीर कौं न गन्य न्यून,
द्रोन आदि बादि भूरि भ्रम सौं भरे रहे।
खंडे रिपु-भुंडनि के मुंड जे अखंडित ते,
मंडित घरीक रुंड-ऊपर धरे रहे॥३॥

चक्रव्यूह अचल अभेद भेदि बिक्रम सौं,
आपुहीँ बनावै बाट आपनी सुढंगी है।
कहै रतनाकर रुकै न कहूँ रोकैं रंच,
झोंके झेलि पावत न कोऊ ज्वान जंगी है॥
बिमुख समूह जम-जूह के हवालैं होत,
सनमुख सूरनि बनावै सुर-संगी है।
पानी गंग-धार कौ कृपानी मैं धर्यौ है मनौ,
जाहि करि अंगी होत अरि अरधंगी है॥४॥

बीर अभिमन्यु की लपालप कृपान बक्र,
सक्र-असनी लौं चक्रव्यूह माहिँ चमकी।
कहै रतनाकर न ढालनि पै खालनि पै,
झिलिम झपालनि पै क्यौं हूँ कहूँ ठमकी॥

वीर अभिमन्यु की लपालप कृपान बक्र सक्र-असनी लौं चक्रव्यूह माहिं चमकी—पृ० ४६८

आई कंध पै तौ बाँटि बंध प्रतिबंध सबै,
काटि कटि-संधि लौं जनेवा ताकि तमकी।
सीस पै परी तौ कुंड काटि मुंड काटि फेरि,
रुंड के दुखंड कै धरा पै आनि धमकी ॥५॥

गांडिव-धनी कौ लाल आइ ब्यूह-मांडव मैं,
ऐसौ रन-तांडव मचायौ कर-कस तैं।
कहै रतनाकर गुमान अवसान मान,
करिगे पयान अरि-प्रान सरकस तैं ॥
काटे देत रोदा दंड चंड बरिबंडनि के,
छाँटे भुज-दंड देत बान करकस तैं।
ऐंचन न पावैं धनु नैंकु धाक-धारी धीर,
खैंचन न पावैं वीर तीर तरकस तैं ॥६॥

केते रहे हेरत तरेरत दृगनि केते,
सुनि धुनि-धूम-धाम धनु के टकोरे की।
कहै रतनाकर यौं घायनि की घाल भई,
झिलिम झपाल भई झिँगुली पटोरे की ॥
बिरचित ब्यूह के बिचलि चल जूह भए,
झेलत बनी न झोंक-झपट झकोरे की।
इंद्र-सुत-नंदन की बान-बरषा सौं बेगि,
बीरनि की बारि ह्वै दिवारि गई सोरे की ॥७॥

धरि धरि मारि मारि करि करि धाए बीर,
सौंहैं आनि धीर रह्यौ भैया मैं न बाबू मैं।
कहै रतनाकर न बिचल्यौ चलाएँ रंच,
ऐसी अचलाई न लखाई परै आबू मैं॥
आवत हीं पास काटि डारत प्रयास बिना,
मानौ चंद्रहास रास करत अलाबू मैं।
पारथ के लाल पै न काहू की मजाल परी,
काबू मैं न आयौ आयौ जद्यपि चकाबू मैं॥८॥

एक उत्तरा कैं पति राखी पति पांडव की,
दीन्हें पति केतिनि जे पाइ उमगाति हैं।
कहै रतनाकर निहारि रन-कौतुक सो,
जूटी सुर असुर बधूटी ललचाति हैं॥
बड़े बड़े बमकत बीर रनधीरनि की,
कढ़ति मियान तैं कृपान थहराति हैं।
आगैं देखि घाय धाइ बरतिं घृताची आदि,
पाछैं पेषि पकरि पिसाची लिए जाति हैं॥९॥

---

(४) जयद्रथ-वध

पांडव कौ ताप औ प्रताप दुरजोधन कौ,
सूत-सुतहू कौ दाप सोधि सियराऊँ मैं।
कहै रतनाकर प्रतिज्ञा यह पारथ की,
द्रोनहू महारथ की धाक धोइ धाऊँ मैं॥
सिंधुराज जटिल जयद्रथ कौ जीवन लै,
आज अंधराज हिय आँखिनि खुलाऊँ मैं।
कृष्ण-भगिनी के द्रौपदी के उत्तरा के हियैं,
सोक-विकराल-ज्वाल जरति जुड़ाऊँ मैं॥१॥

बरुन कुबेर सुरराज आदि साखी राखि,
आज गुरु द्रोनहूँ कौ गौरव गँवाऊँ मैं।
कहै रतनाकर यौं रोस-रस-घूमि-झूमि,
पारथ प्रचारयौ भूमि-मंडल कँपाऊँ मैं॥
जौपै मारतंड के रहत नभ-मंडल मैं,
रुंड सौं जयद्रथ कौ मुंड ना गिराऊँ मैं।
तौपै जरयौ वीर अभिमन्यु तौ मरे पै पर,
इहिं तन कायर कौं जियत जराऊँ मैं॥२॥

बीर अभिमन्यु मन्यु मन मैं न हूज्यौ मानि,
जानि अब रन कौ बिधान किमि पैहौं मैं ।
पायौ पैठि संगहूँ न रंग-भूमि हूँ मैं जब,
जैहै तहाँ को तब जहाँ अत्र सिधैहौं मैं ॥
कालिह चंद्र-ब्यूह पैठिबे के पहिलैं हीं तुम्हैं,
हाल रन-भूमि को उताल पहुँचैहौं मैं ।
कै तौ तव बिजय जयद्रथ सुनै है जाय,
कै तौ लै पराजय - प्रलाप आप ऐहौं मैं ॥३॥

आयौ जुद्ध-भूमि मैं सनद्ध बर बीर क्रुद्ध,
रुद्ध-बुद्धि ह्वै ह्वै रहे बिरुद्ध दलवारे हैं ।
कहै रतनाकर प्रभाकर-कराकर से,
अबिरल धाए बिसिखाकर करारे हैं ॥
धीर भए ध्वस्त हस्त-लाघव बिलोकि सबै,
भागे जात अस्त-ब्यस्त बीरता बिसारे हैं ।
बान लेत मंडन उमंडत न पेखि परैं,
देखि परैं रुंड मुंड खंडित बगारे हैं ॥४॥

गांडिव के कांड यौं उमंडि रनमंडल मैं,
राँच्यौ रन-तांडव उदंड रिपु-झुंड मैं ।
कहै रतनाकर बिपच्छि बरिबंड लगे,
लुंडमुंड लोटन धरा मैं स्रोन-कुंड मैं ॥

खंडित ह्वै उचटि उमंडि चंड बाननि सौं,
औरनि के मुंड मिलैं औरनि के रुंड मैं।
कुंडिनि के रुंड मैं वितुंडनि के सुंड लगैं,
कुंडिनि के मुंड त्यौं वितुंडनि के तुंड मैं ॥५॥

सद्रथ धनंजय के धावत जयद्रथ पै,
आठ-आठ प्रबल महद्रथ निवारैं हैं।
कहै रतनाकर सुभट प्रन-प्रान रोपि,
कोपि कोपि मग पग पग पै जुझारैं हैं॥
माच्यौ महा संगर अभंग रंग-भूमि माहिं,
दंग है सुरासुर अपांग सौं निहारैं हैं।
आठहूँ महारथ पै पारथ के चंद-बान,
चंद आठवें लौं लागि मंद किए डारैं हैं॥६॥

पारथ कियौ जो प्रन घोर ताहि तोरन कौं,
कोरि प्रान-पन सौं महारथ सकैहैं ना।
मींजि मींजि हाथ कहैं नाथ रतनाकर के,
भानुहूँ पयान माहिं विलंब लगैहैं ना॥
सावधान चक्र आज काज अक्रता कौ नाहिं,
जौपै सक्र-पूत प्रन पालत लखैहैं ना।
आपनी प्रतिज्ञा की अवज्ञा करि लैहैं पर,
भक्त-भीर-भंजन की संज्ञा जानि दैहैं ना॥७॥

ऐरे चक्र अक्र है रह्यौ है कहा बेगि धाइ,
जाइ तितै रंचहूँ बिलंब कहूँ लैयौ ना ।
कहै रतनाकर सँदेस ना निदेस यह,
कहियौ अतंक सौं ससंक सकुचैयौ ना ।।
जौलौं अरि-रक्त सौं धनंजय न पूरै मंग,
तौलौं नील अंबर दिगंगना सजैयौ ना ।
सिंधुराज-जीवन सौं जौलौं ना अघाइ जम,
तौलौं जम-जनक बिराम-ठाम जैयौ ना ।।८।।

गांडिव के मंडल मैं पांडु कौ सपूत क्रुद्ध,
बैरिनि कौं चंड मारतंड लौं चितै गयौ ।
कहै रतनाकर प्रखर किरनाकर से,
तीखे बिसिखाकर सौं अंग अंग तै गयौ ।।
लागी चकचौंध यौं मदंध अंध-पच्छिनि कौं,
अच्छिनि कैं आगैं अंधकार - धुंध छै गयौ ।
सूझि पर्‌यौ आपनौहीं दावँ ज्यौं जुवारिनि कौं,
बूझि पर्‌यौ देखत दिवाकर अथै गयौ ।।९।।

रोधन कै भानु दुरदिन दुरजोधन कैं,
जोधनि कौं कैधौं रैनि बोधन करायौ है ।
कहै रतनाकर द्विविध अंधराज कौ कै,
राजनि पै संगति प्रभाव दरसायौ है ।।

कैधौं सिंधुराज तपैं जीवन है धूमधार,
पटल अपार पारि तपन छपायौ है।
मेरी जान कान्ह भक्त-रंजन कृपा कैं पुंज,
नेम पैं धनंजय के छेम-छत्र छायौ है ॥१०॥

जानि-जानि भानु कौ पयान जुरे आनि सवै,
कढ़ि-कढ़ि जूह के अनूह अरवर सौं।
कहै रतनाकर अभाग निज जारन कौं,
दारुन अरी की चिता-आगि की लवर सौं॥
तौलौं द्वारिकेस से निमेस कौ निदेस पाइ,
सीस कटि विकट विजै के सरवर सौं।
अंसुधर अंसु जौ लौं पहुँचैं धरा पै पुनि,
सीस उड़यौ अधर जयद्रथ के धर सौं ॥११॥

(५) महाराणा प्रताप

साजि सेन समर-सपूत राजपूतनि की,
विक्रम अकूत औ अभूत प्रन ठाने हैं।
कहै रतनाकर स्वदेस पूत राखन कौ,
गाजि सहबाज के दराज साज भाने हैं॥
कुंत करवार सौं प्रचारि करि वार दारि,
केते दिये डारि केते भभरि भगाने हैं।
प्रबल प्रताप-ताप-दाप सौं हवा है सद्द,
बद्दल समान मुगलद्दल बिलाने हैं॥१॥

म्लेच्छनि के दीन कौ जलाल पायमाल करे,
रूम के हिलाल-भाल नाल थिर थापे है।
कहै रतनाकर अरीनि-उर हार देत,
चारु चंद्रहार उर्वरा कैं उर आपे है॥
प्रबल प्रताप जब चढ़त बिलोकि वंक,
वैरिनि कौ अमित अतंक पूरि तापे है।
झाँपै तुरकनि कौ सितारा धूरि धारा माहिं,
अस्व-टाप हिंदुनि की छाप छिति छापे है॥२॥

टारचौ जौ कलंक- तम - तोम राजपूतनि कौ,
बीस बिसे जाइ सो दिलीस - दग छायौ है।
कहै रतनाकर हरयौ जो जाड़ भारत कौ,
सोई पैठि पारस कौ पंजर कँपायौ है॥
प्रबल प्रताप कौ तपाकर-प्रताप-ताप,
जमन-कलाप-मुख-आप जो सुखायौ है।
तुरकिनि-आँखिनि मैं भाप ह्वै छयौ सो स्रवै,
रुकत रुकायौ औ न चुकत चुकायौ है॥३॥

साजि-साजि पागैं वागे पहिरि सुरंग चले,
आनन पै कुंकुम उमंग कल दीपै है।
कहै रतनाकर बरन कौं सुकीरति कैं,
प्रबल-प्रभाव चारु चाव चढ़यौ जी पै है॥
कढ़ी परै म्यान सौं कृपान बिनु लाऐं पानि,
ऐसी कछु ठान की उठान आतुरी पै है।
ब्याह कौ उछाह बढ़यौ चाहि निज वीरनि कैं,
ठाट्यौ लै प्रताप ठाठ घाट हलदी पै है॥४॥

कीनी मिहमानी मन मानि के अतिथि पर,
कानि रजपूती की न जान दई कर सौं।
कहै रतनाकर न खायौ बैठि थारौ संग,
सारौ जानि साह कौ टिकायौ दूरि घर सौं॥

मुगल पठान की नै धौंस धमकी सौं डरयौ,
दीन्हौ छाँड़ि कठिन कृपान छ्वाइ गर सौं।
मानी मानसिंह की महान मान-हानी कर,
प्रबल प्रताप ठान ठानी अकबर सौं ॥५॥

रोजा औ नमाज हज्ज करि कै हजार हारे,
ऐसी प्रथा पाई पै न पावन प्रनाली की।
कहै रतनाकर प्रताप कैं प्रताप तपैं,
जैसी होति स्वच्छता बिपच्छिनि कुचाली की ॥
बीररस-मातौ जब घूमै रंग-भू मैं आनि,
प्रगटति पद्धति पुनीत करवाली की।
काली करै किलकि कलोल स्रोन-कुंड माहिँ,
म्लेच्छनि के मुंड माल होत मुंडमाली की ॥६॥

कुंत असि सायक के फल सौं अघाए इमि,
पायक औ नायक सिपाह सुलतानी के।
कहै रतनाकर रही न उठिबै की सक्ति,
जित तित लोटैं परे लाड़िले पठानी के॥
माँगत न पानी हूँ किए यौं तृप्त जीवन सौं,
ठाठि कै प्रताप नए ठाठ मेहमानी के।
घाट-हलदी सौं जमपुर की बताइ बाट,
म्लेच्छनि उतारयौ घाट कठिन कृपानी के ॥७॥

सेखनि की सेखी झारहीँ सौँ जरि छार भई,
सूखे घट जीवन पठाननि अठानी के।
कहै रतनाकर त्यौँ गलित गुमान भए,
साहसीक सैयद सिपाह सुलतानी के॥
जागी ज्वाल-कौंध सौँ चकाइ चकचौँधि परे,
औँधि परे मुगल महान गोरकानी के।
प्रबल प्रताप कौ प्रताप ताप दानी देखि,
पानी गए उतरि मलेच्छनि कृपानी के॥८॥

सूर-कुल-सूर महा प्रबल प्रताप सूर,
चूर करिबे कौँ म्लेच्छ क्रूर प्रन लीन्यौ है।
कहै रतनाकर विपत्तिनि की रेलारेल,
झेलि झेलि मातभूमि-भक्ति-भाव भीन्यौ है॥
वंस कौ सुभाव अरु नाम कौ प्रभाव थापि,
दाप कै दिलीपति कौँ ताप दीह दीन्यौ है।
घाट हलदी पै जुद्ध ठाटि अरि मेद पाटि,
सारथ विराट मेदपाट नाम कीन्यौ है॥९॥

देस-ब्रत कठिन कठोर महा लोह-मयी,
राजपूत-टेक पै विवेक सौँ बनाई है।
कहै रतनाकर दढ़ाई दाप-दीपति सौँ,
विषम विपत्ति-घन-घातनि गढ़ाई है॥

प्रबल प्रताप की सुढार तरवार-धार,

जमन-कुचक्र खर सान सौं धराई है।

धीर महिषी के उर-ताप मैं तपाई अरु,

बालक-अधीर-नैन-नीर मैं बुझाई है ॥१०॥

बद्दल से व्यूह मुगलदल के जूह डाँटि,

काटि काटि ठाटनि उघाटि बाट लीन्ही है।

कहै रतनाकर यौं पैठत सवेग जात,

ताकी फहराति धुजा परति न चीन्ही है ॥

केहरि लौं हेरत अहेर निज सौंहैं हेरि,

फेर चारु चेतक दरेर नैंकु दीन्ही है।

सुंडी के भुसुंड पै उभारि कै अगौंहैं पाइ,

मानी मानसिंह पै प्रचारि वार कीन्ही है ॥११॥

पाँच सौ छः

(६) छत्रपति शिवाजी

हिंदू-वेष धारन मैं सूथन पँवारन मैं,
डाढ़ी के उजारन मैं दौरे लगे जात हैं।
कहै रतनाकर चपल यौं चले हैं धाइ,
मानौ पाय धरत धरा पै दगे जात हैं॥
मुख नवरंग कैं न रंग एक हूँ है रह्यौ,
छाँड़े संग आपने बिगाने सगे जात हैं।
साहसी सिवा के बाँके हल्ला कौ धड़ल्ला देखि,
अल्ला अल्ला करत मुसल्ला भगे जात हैं॥१॥

दच्छिन मैं जानि कै विकट जमराज-राज,
सूबा लेन कौ सो मनसूबा ना ठहत हैं।
कहै रतनाकर अमीर रनधीर किते,
त्यागि समसीर बाट हज्ज की गहत हैं॥
कसि कसि बाँधैं फेंट भैंट करिवे कौं प्रान,
छाने तऊ सूथन ठिकाने ना रहत हैं।
सरजा सिवाजी की सवेग तेग-ताजी चाहि,
गाजी गजनी के रनसाजी ना चहत हैं॥२॥

ऐसौ कछु भभरे हिये मैं भय हूलि जात,
भूलि जात गाजिबौ दिल्ली के साह गाजी कौ।
कहै रतनाकर सुध्यात वहै आठौं जाम,
नाम सरजा कौ भयौ कलमा नमाजी कौ॥
धाई धाक धूम यों भुवाल भौंसिला की भूमि,
कहियै खभार नर नारि के कहा जी कौ।
सरकत सुंडी सुंड दाबत भुसुंडनि मैं,
भरकत बाजी नाम सुनत सिवाजी कौ॥३॥

जंगी सत-द्वादस सवारनि लगाइ घात,
संगी स्वल्प संग अफ़जल्ल पग धार्‌यौ है।
कहै रतनाकर त्यौं हौंसला अपारि धारि,
भौंसला भुवाल आनि तुरत जुहार्‌यौ है॥
भुज भरि भेंटि भींचि जौलौं करि-काय नीच,
पंजर मैं खंजर लै खोंपिबौ बिचार्‌यौ है।
तौलौं नर-केहरि तमकि नर-केहरि लौं,
केहरि-नहा सौं दरि उदर बिदार्‌यौ है॥४॥

कैधौं खल-मंडल उदंड चंड दंडन कौं,
उद्दत अखंडल कौ अस्त्र दमकत है।
कहै रतनाकर कै जमन-प्रलै कैं काज,
त्र्यंबक कौ अंबक त्रितीय रमकत है॥

कैधौं दीह दिल्ली-दल-बन-घन जारन कौ,
दपटि दवानल स ताप तमकत है।
चमकत कैधौं सूर-सरजा-दुधारा किधौं,
सहर सितारा कौ सितारा चमकत है ॥५॥

माचै सुर-पुर मैं उपद्रव कहूँ ना कछू,
याही हम गुनत हिये मैं गरे जात हैं।
कहै रतनाकर-बिहारी सौं सुरेस लखौ,
आनि आनि जमन असेस अरे जात हैं॥
काम सरजा के अरु नाम गिरिजापति के,
ऐसैं मम धाम कौं निकाम करे जात हैं।
सनमुख जुद्ध के जुरैया जुरे जात अरु,
सिव सिव भाषत भजैया भरे जात हैं ॥६॥

बाजी-घोर पाँड़े कौं कठोर मान-दंड दियौ,
साजी सेन सरजा समत्थ बहुरंगी हैं।
कहै रतनाकर चली न अली आदिल की,
बिदलित कीन्हे दल पैदल तुरंगी हैं॥
फजल मुहम्मद के फजल फजूल भए,
तूल भए आवत सलावत भडंगी हैं।
लै लै तोप तुपक तुफंग जंग-साज भेँट,
गोवा के फिरंगी हू सिवा के भए संगी हैं ॥७॥

बीजापुर दिल्ली गोलकुंडा आदि खंडनि मैं,
अमल अखंड कल कीरति बिभाजी है।
कहै रतनाकर नगर गढ़ ग्राम जिते,
तेते अधिकार मैं सुधारि सुभ साजी है॥
मात-भूमि भक्ति सक्ति अबिचल साहस की,
सहित प्रमान प्रतिपादि छिति छाजी है।
राना मूल-मंत्र जो स्वतंत्रता प्रकास कियौ,
ताकौ महाभास कियौ सरजा सिवाजी है॥८॥

मान के बिरुद्ध सनमान मानि क्रुद्ध भयौ,
आनन पै आनि भाव उद्धत बिराजे हैं।
कहै रतनाकर सो चंड सरजा कौ रूप,
देखि म्लेच्छ मंडल उदंड छोभ छाजे हैं॥
निकसत बैन औ न बिकसत नैन भए,
अकबक साह साहजादे खान खाजे हैं।
भूले अवसान मान गौरव-बिधान सबै,
कौरव-सभा मैं जदुराज जनु गाजे हैं॥९॥

---

(७) श्रीगुरु गोविंदसिंह

पैठि पठनैटनि के उमगे अँगेठनि मैं,
चूर करि ऐंठ सबै धूरि मैं धुरेटू मैं।
कहै रतनाकर प्रचारयौ गुरु गोविंद यौं,
मीर मीरजादनि के धीर धरि फेटू मैं॥
सेखनि की सेखी करि देखत अलेखी सबै,
दूरि दलि भूरि मुगलद्दल दपेटू मैं।
भेटू भव्य भाव देस-भक्त सद्पंथिनि के,
मोहमद-पंथिनि के मोह-मद मेटू मैं॥१॥

ढाहैं अरि-आस के अकास तिनि सीसनि पै,
होस कौं हवा कै हवा उनकी उड़ावैं हम।
कहै रतनाकर गरजि गुरु गोविंद यौं,
जमन-निसानी लोह-पानी सौं वहावैं हम॥
जारि जारि प्रखर प्रचंड रोष झारनि मैं,
छार उनहीं की उन-आँखिनि पुरावैं हम।
पंच तत्त्व हूँ मैं निज भाव सत्त्व संचित कै,
म्लेच्छ-दल वंचक पै पंचक लगावैं हम॥२॥

चाखि लोह-चनक अघाइ देस दच्छिन सौं,
पच्छिम बढ्यौ जो तृषा-व्याधि अधिकानी है।
कहै रतनाकर गुविंद गुरु बिंदि यहै,
लोह ही के पानि सौं सिरावनि की ठानी है ॥
जीवन की आस नासि सासक दिल्ली कौ भज्यौ,
बिकल बिहाइ सान कानि गोरकानी है।
छाँड़ि असि परसु कुठार कुंत बान कहूँ,
पंचनद हू मैं जुरयौ रंचक न पानी है ॥३॥

चाहि चतुरंगिनी अकालिनि की काल-रूप,
भूप नवरंग रंग एक ना उघारै है।
कहै रतनाकर अमीर मीर पीर कोऊ,
रन रुकिवे कौ धीर रंच हू न धारै है ॥
त्यागि त्यागि संगर अभागे फिरैं भागे सबै,
कोऊ ढंग पै ना मीच-फंग सौं उबारै है।
जानि जिय गायनि कौं गोविंद दुलारै सदा,
बीँदि बीँदि गोविँद गवासनि सँघारै है ॥४॥

देखि देखि बिक्रम अभिक्रम अकालिनि के,
कालिनि के नाद साधुवाद बहु दीन्हे हैं।
कहै रतनाकर कुरंग अवरंग भयौ,
भाजे सेन रौँदत मतंग बिनु चीन्हे हैं ॥

आज गुरु गोविँद विरंचि रचना मैं जस,
पंचगुने भूपति भगीरथ सौँ लीन्हे हैं।
संचि संचि जमन प्रपंचिनि के स्रोनित सौं,
पंचनद माहिँ और पंचनद कीन्हें हैं ॥५॥

सूबा-सरहिंद सग गब्बर गिरिंद आनि,
जानि जिय अब्बर अनंदगढ़ घेरयौ है।
कहै रतनाकर गुविंद गुरु विंदि घात,
निज रनधीर वीर बृंदनि कौं टेरयौ है॥
कढ़ि कढ़ि बाहिर उमहि कहि वाह-गुरु
बढ़ि नेजा असि-न्याव निवटेरयौ है।
माते अरि-करिनि करेरनि दरेरयौ दौरि,
मानौ कुल केहरि अहेर निज हेरयौ है ॥६॥

थापे भीति माहिँ जो अभीत जुग बाल वृच्छ,
तिनकौं यथेच्छ म्लेच्छ स्रौन सौं सिचाऊँ मैं।
कहै रतनाकर लहौर सरहिंद-सेन,
कुंत-करवार-बान फलनि अघाऊँ मैं॥
हम तुम जीवित रहे जौ कछु काल तौव
पुरुष अकाल महा महिमा दिखाऊँ मैं।
चाहत हमैं जो निज कलमा पढ़ावन सो,
वाह-गुरु मंत्र तव अंत्र मैं मढ़ाऊँ मैं ॥७॥

जैसैं मदगलित गयंदनि के बृंद बेधि,
कंदत जकंदत मयंद कढ़ि जात है।
कहै रतनाकर फनिंदनि के फंद फारि,
जैसैं बिनता कौ नंद कढ़ि जात है॥
जैसैं तारकासुर के असुर-समूह सालि,
स्कंद जगबंद निरद्वंद कढ़ि जात है।
सूबा-सरहिंद-सेन गारि यौं गुबिंद कढ़्यौ,
ध्वंसि ज्यौं बिधुंतुद कौं चंद कढ़ि जात है॥८॥

गढ़ चमकौर सौं चपल चमकाइ तुरी,
आतुरी-समेत रन-खेत बढ़ि आयौ है।
कहै रतनाकर बिपच्छिनि यौं लच्छ कियौ,
उच्चयीस्रवा पै सहसाच्छि चढ़ि आयौ है॥
श्रीगुरु गुबिंदसिंह बैरिनि बिदारत यौं,
मानौ बिकराल काल-मंत्र पढ़ि आयौ है।
ताव देत ताजिहिँ सवारनि कौं दाव देत,
पाव देत पैदल बिदलि कढ़ि आयौ है॥९॥

भारत की दीन दसा दारुन निवारन कौं,
श्रीगुरु गुबिंद महा जज्ञ-बिधि चीन्ही है।
कहै रतनाकर कठैटे-पठनैटे-सेख-
सैयद-मुगल-सेन समिधा सु लीन्ही है॥

खड्ग-स्रुवा सौं मेद-मज्जा-स्रौन आहुति दै,
प्रज्वलित जुद्ध-विकराल-ज्वाल कीन्ही है।
देस-भक्ति-वेदी पै स्वतंत्रता कौ मंत्र साधि,
पूत पंच पूतनि की पंच बलि दीन्ही है ॥१०॥

---

(८) महाराज छत्रसाल

देव-द्विज-द्रोहिन के आँसनि उसाँसनि सौं,
मातभूमि गात कौ सँताप सियराऊँ मैं।
कहै रतनाकर बुँदेला भट मानी महा,
जमन-निसानी असि-पानी सौं बहाऊँ मैं॥
श्रीपति सहाय सौं दिलीपति कौ छत्र सालि,
छत्रसाल नाम निज सारथ बनाऊँ मैं।
चपल चकत्ता की महत्ता अरु सत्ता चाँपि,
चंपत कौ नंदन अमंद कहवाऊँ मैं॥१॥

कढ़त बुँदेलनि के रेलनि के नारा रन,
बलख बुखारा जिमि पारा थहरत हैं।
कहै रतनाकर सपीर पीरजादनि के,
मीर मीरजादनि के धीर भहरत हैं॥
निपट निसंक बंक बैरिनि के जूथनि के,
सूथन ससंक लंक त्यागि ढहरत हैं।
मुगल पठाननि की सत्ता औ महत्ता मिटै,
कत्ता कढ़ैं छत्ता के चकत्ता हहरत हैं॥२॥

अन्न-जल जाकौ पाइ परम प्रसन्न रहे,
ताकौं हाय इमि अवसन्न किमि चैहैं हम।
कहै रतनाकर सपूत राय चंपत कौ,
म्लेच्छनि अपूत के न पद सौं दलैहैं हम ॥
उद्धत अधर्मिनि के कुटिल कुकर्मिनि के,
दास है उदास इहिं नरक न रैहैं हम।
कैतौ भूमि भारत कौं सरग बनै हैं अवै,
कैतौं तेग झारि वेगि सरग सिधैहैं हम ॥३॥

लगन धराइ कै लिखाइ बेगि चीठी चारु,
वाकी खाँ बसीठी दिल्ली नगर पठाई है।
कहै रतनाकर तुरंत रनदूलह की,
विसद बरात सेन सज्जित सिधाई है ॥
कढ़ि कढ़ि बाँकुरे बुँदेला रन-मांडव मैं,
बढ़ि बढ़ि घोर घमसान यौं मचाई है।
भागे सबै भभरि अभागे रन त्यागे चंपि,
चंपत कैं लाल बिजै-वाल बरि पाई है ॥४॥

है कै दलमलित बुँदेलनि के रेलनि सौं,
मुगल पठाननि के मान मद मरके।
कहै रतनाकर ततार असवार लिए,
रूम सामहू के सरदार हारि सरके ॥

बाकी खान सूबा के बिलाने मनसूबा सबै,
विचले हवा है अवसान हू समर के।
सूरता तहौवर मियाँ की चकचूरि परी,
धूरि परी नूर पै नवाब अनवर के ॥५॥

समर-समुद्र वैर-अचल सुमेरु अद्रि,
जीत-आस बासुकी-बरेत बर धारी है।
कहै रतनाकर सुरासुर बुँदेल-म्लेच्छ,
करसि यथेच्छ कियौ घरसन भारी है॥
प्रगटे सुभासुभ परिनाम रत्न,
जिनकी सजत्न भई जोग बटवारी है।
फेरि बिजै-लच्छमी प्रतच्छि जस-कंज-माल,
चंपत के लाल कैं बिसाल बच्छ पारी है ॥६॥

सुतुर-विहीन सुतुरदी दलि दीन भयौ,
ऐसौ मुगलदल बुँदेल बीर लूट्यौ है।
कहै रतनाकर परान्यौ हाथ माथैं दिये,
मानौ टकटोरत कहाँ धौं भाग फूट्यौ है॥
बीर छत्रसाल-करवार-धार-पानिप त्यौं,
दमकि दिलीस-सेन-सीस इमि टूट्यौ है।
अबदुस्समद की समदता सिरानी सबै,
अवद अपाय हैं चुकाइ चौथ छूट्यौ है॥७॥

जानी निज संपति सिरानी ततकाल सबै,
हाल चाहि चंपति के लाल रनरत्ता कौ।
कहै रतनाकर बिचारै माथ धारे हाथ,
मानि अपमान महा मुगल-महत्ता कै॥
खीसत खिझात दाँत पीसत अमीरनि पै,
देखत तुरंत अंत होत म्लेच्छ सत्ता कै।
सुनि गुनि धीर बीर छत्ता की बिजै पै बिजै,
लत्ता अवसान भयौ चकित चकत्ता कै॥८॥

जोई जात गाजि सोई आवत गँवाइ भाजि,
भारी सेन ऐसहीं हमारी घिसि जाइगी।
बब्बर की धाक औ अकब्बर की साक सबै,
अब्बर की छाक लौं सनैहीं मिसि जाइगी॥
सोच-रतनाकर की तरल तरंगैं पोच,
गनि गनि हाथ कै बिहाइ निसि जाइगी।
बढ़ति महत्ता देखि छत्ता की चकत्ता कहै,
सत्ता इसलाम की सबै धौं खिसि जाइगी॥९॥

(९) श्रीमहारानी दुर्गावती

दुर्ग तैं तड़पि तड़िता सी तड़कैं हीं कढ़ी,
कड़कि न पाए कड़खाहूँ अवै मुरगा।
कहै रतनाकर चलावन लगी यौं बान,
मानौं कर फैले फुफुकारी मारि उरगा॥
आसा छाँड़ि प्रान की अमान की दुरासा माँड़ि,
भागे जात गव्वर अकव्वर के गुरगा।
देवी दुरगावती मलेच्छ-दल गेरे देति,
मानौ दैत्य-दलनि दरेरे देति दुरगा॥१॥

देवी दुरगावती के धावत मलेच्छ-सेन,
फाटि चली फेन लौं रुकी ना हरकहु मैं।
कहै रतनाकर निहारे वहु संगर पै,
ऐसे रन-रंग ना विचारे तरकहु मैं॥
चरवन चाहि जाहि आयौ चढ़ि आसफ खाँ,
ताकी कठिनाई ना लखाई करकहु मैं।
एतौ रन-विमुख मलेच्छनि-झमेला भरचौ,
मेला भरचौ माची ठेलठेला नरकहु मैं॥२॥

दुर्ग तैं निकसि दुरगावती स्ववीर धीर,
फूंकि कै स्वतंत्रता कौ मंत्र ललकारे हैं ।
कहै रतनाकर स्वदेस-हित ठानि तिनि,
मुगल-पठान-दल वद्दल विदारे हैं ॥
धावा करि आपहूँ जहाँ ही तहाँ कावा करि,
दावा करि अरि अरदावा करि पारे हैं ।
मारे किते बान सौं कृपान सौं सँघारे किते,
केते कुंत तानि कै उतान करि डारे हैं ॥३॥

रानी दुरगावती स्वतंत्रता की ठानी ठान,
देस-हित-हानी ना सुहानी छतरानी है ।
कहै रतनाकर लखानी अस्त्र सस्त्र धारि,
अरि-दल मानी मैं भयंकर भवानी है ॥
हेरत हिरानी लंतरानी सब आसफ की,
चलति कृपानी ना चलावत विरानी है ।
पानी सब मुख कौ उतरि हिय पानी भयौ,
पानी गयो तेग कौ विलाइ दृग पानी है ॥४॥

दोष दुख दारिद सु चूरि दीनता कै दूरि,
भूरि सुख संपति सौं पूरि प्रजा पाली है ।
कहै रतनाकर स्वतंत्रतानुरक्ति अरु,
देस-भक्ति थापी वाक-सक्ति सौं निराली है ॥

पाँच सौ इक्कीस

पुनि कढ़ि दुर्ग तैँ कृपान दुरगावति लै,
दुष्टनि पै रुष्ट ह्वै अपार वार घाली है।
धोखैँ रहैँ हेरत त्रिदेव जिय जोखैँ यहै,
यह कमला है, कै गिरा है, किधौँ काली है ॥५॥

जाकैँ रन धावत प्रचारि तरवारि धारि,
धमकि धराधर समेत धरा धूजी है।
कहै रतनाकर उमंडि जिहिँ ओर जाति,
ताही ओर रुंडमुंड होत झुंड मूजी है॥
देवी दुरगावती बजाइ सैफ आसफ सौँ,
हर के हियै की हरषाइ हौँस पूजी है।
जोगिनी कहैँ को यह जोगिनी नई है अहो,
चंडी कहै चंडी को प्रचंडी यह दूजी है ॥६॥

देस-प्रेम-पूरन कौँ अरि-दल-चूरन कौँ,
सूरनि गुहारि मंत्र-माया किए देति है।
कहै रतनाकर कृपान कुंत बान घालि,
अरिनि निकाय कौँ निकाया किए देति है॥
मुंड-हीन दीसत मलेच्छनि के झुंड झुंड,
मानहु चमुंड प्रतिछाया किए देति है।
देवी दुरगावती दपेटि दुरगा लौँ दौरि,
आसफ की सफ कौ सफाया किए देति है ॥७॥

देवी दुरगावती कराल कालिका सी कोपि,
काल-चालिका सी रन तागी मारि पहुँची।
कहँ रतनाकर जहाँ ही भीर भारी परी,
तमकि तहाँ ही किलकारी मारि पहुँची॥
जब सफ आसफ की अमित अपार महा,
नाहिं गहिबे कौं सेन सारी मारि पहुँची।
फूटीं आँखिहूँ ना तऊ म्लेच्छनि छटागी चही,
सरग-अटारी पै कटारी मारि पहुँची॥८॥

---

(१०) सुमति

जानि देस-द्रोही भव-विभव विमोही ताहि,
छत्री-कुल-कानि कै महान मन माषी है।
कहै रतनाकर अचेत दुरगावती लौं,
हटकन दीन्हौ ना त्रिदेव राखि साखी है॥
नैंकु पग वंचक के उत कौं बढ़ावत हीं,
चंचा-नर समुझि तपंचा-वार नाखी है।
देसव्रत मानि कै बरेस-ब्रत हू सौं परैं,
मारि पति सुमति सु नारि-पति राखो है॥

---

(११) वीर नारायण

उमगिन उमंग जिय जंग जुरिबे कौ भरयौ,
कदि गढ़ सिंगर तैं संगर मचायौ है।
कहै रतनाकर पठान पैंचहत्थनि के,
मत्थनि पै आनि जम-जत्थनि नचायौ है॥
पैठि अरि व्यूह मैं अभिक्रम अनूठ साधि,
असि सौं हियै पै निज विक्रम खँचायौ है।
वीर अभिमन्यु लौं समन्यु रनधीर वीर,
भारत मही मैं महाभारत मचायौ है॥१॥

वीर वीरसिंह वीर-माता के सपूत धन्य,
वीर अभिमन्यु लौं समर-पन कीन्हौ है।
कहै रतनाकर मलेच्छनि कैं व्यूह पैठि,
तच्छन अनूठ महा नर-पन कीन्हौ है॥
देस-हित नेमिनि स्वतंत्रता के प्रेमिनि कौं,
आपनौ चरित्र दिव्य दरपन कीन्हौ है।
तरपन कीन्हौ जननी कौ अरि-स्रोनित सौं,
सीस कौं गिरीस-माल अरपन कीन्हौ है॥२॥

---

(१२) श्री नीलदेवी

मृतक पती की कटि-तट की कटारी खोलि,
तोलि कर ताहि बोलि तोहिँ अपनाऊँ मैँ ।
कहै रतनाकर प्रतिज्ञा नीलदेवी करी,
आर्य-महिला की महा महिमा दिखाऊँ मैँ ॥
पति के बियोग हूँ सौँ तेरौ तृषा-सोग भारी,
तातैँ सती पाछैँ है सुपति-पद पाऊँ मैँ ।
अबदुस्सरीफ-हिय स्रोनित कौ आज तोहिँ,
पान पहिलैँ हीँ निज पानि सौँ कराऊँ मैँ ॥१॥

अबदुस्सरीफ सौँ हरीफ है सुजुद्ध जुरैँ,
कीरति तिहारी तौ अबाध रहि जाइगी ॥
भाषै नीलदेवी सुत सील-रतनाकर सौँ,
भाजि बच्यौ सो तौ दीह दाघ रहि जाइगी ॥
प्यास रहि जाइगी असाध इहिँ खंजर की,
भारत की त्रास हूँ अगाध रहि जाइगी ।
आधि रहि जाइगी मरे हूँ पै हमारे हियैँ,
हाय-मनहीँ मैँ मन-साध रहि जाइगी ॥२॥

भारत की भव्य भामिनीनि की कहानी कल,
मंडित करौं मैं म्लेच्छ-मुखनि वजीफा सी।
कहै रतनाकर पुकारि नीलदेवी आज,
करनी करौं जो जगै जग मैं लतीफा सी॥
देस-प्रेम-प्रबल-प्रभाव दिव्य देखैं सबै,
करति कहा है एक अबला नईफा सी।
दारि डारौं देखत हीं देखत बिथारि डारौं,
अबदुस्सरीफ की सराफत सरीफा सी॥३॥

ऐसौ नाच नाची नीलदेवी म्लेच्छ-मंडल मैं,
मंडि नीच-मुंडनि पै मीच कौं नचायौ है।
कहै रतनाकर अमोल गुनरूप तोलि,
अबदुस्सरीफ लोल ललकि लुभायौ है॥
निकट बुलाइ कै बिठाइ हुलसाइ हियैं,
मद-मतवारौ मद-पान हठ ठायौ है।
ज्यौं ही चह्यौ चसक चखायौ ताहि कंजर सो,
पंजर मैं त्यौं ही पेसि खंजर खपायौ है॥४॥

पेसि कै कटारी धरमारी के करेजैं बीच,
तारी दई तरकि तराक नीलदेवी ज्यौं।
कहै रतनाकर त्यौं संग कैं हथ्यार धारि,
कीन्हीं चहुँवार वार दारु की जलेवी ज्यौं॥

पैठि परचौ बीरनि समेत सोमदेव धीर,
चेते कछु चकित अचेत सुरासेवी ज्यौं।
एकाएक आनि कै महान् अजगैवी परी,
दीसति फरेबी सभा रकत-रकेवी ज्यौं ॥५॥

फूँकि कै स्वतंत्रता कौ मंत्र सेन-अंत्र माहिँ,
छत्री-धर्म-कर्म की समर्म सुधि ध्याई है।
कहै रतनाकर सपूत राजपूतनि कैँ,
पूत-देस-भक्ति-महा-सक्ति जिय ज्याई है॥
दुवन फरेबी कौँ फरेव-फल दैवे काज,
चाय की रचाय नीलदेवी सुरा प्याई है।
जमन जरार फौजदार फारि खंजर सौँ,
पंजर सौँ पति की निकासि लास ल्याई है ॥६॥

मारि निसि-छाप सूरदेव कौँ गह्यौ जो क्रूर,
फलन न पायौ सो फतूर वा फरेबी कौ।
कहै रतनाकर सु आर्य-महिला कैँ कर,
छाकैँ वन्यौ ताकैँ निज परस्यौ रकेवी कौ॥
जाकौ चारु चरित समच्छ सव कच्छनि कैँ,
लच्छ ह्वै प्रतच्छ लसै दच्छ देस-सेवी कौ।
जमन कुडीलनि के मंद मुख नील करै,
सुजस समुज्जल सुसील नीलदेवी कौ ॥७॥

चढ़त चिता पै नीलदेवी के उमंगि जुरीं,
देवनि कैं संग देव-अंगना जुहारती।
कहै रतनाकर करनि कुसुमाकर लै,
पुलकित ह्वै ह्वै धन्य-धुनि कै उच्चारती ॥
द्वै द्वै दिव्य आसन सिंघासन पै रीते राखि,
आँखिनि निहारती सुभापनि उचारती।
जौलौं कवि भारत के भारती सँवारयौ करैं,
तौलौं तव आरती उतरयौ करै भारती ॥८॥

---

(१३) महारानी लक्ष्मीबाई

दीह दल साजि गाजि नत्थे खाँ समत्थ चढ़्यौ,
झाँसी के निवासी भरे भूरि भय भारे हैं।
कहै रतनाकर प्रतच्छ लच्छमी सो लच्छि,
दच्छ निज पच्छिनि समच्छ ललकारे हैं॥
धधकत गोलनि के ताँते अरि-मुंडनि पै,
तुंग गढ़-स्रंग तैं भुसुंडिनि प्रहारे हैं।
खूटे-आयु-औधि-द्यौस फूटे-भाग बैरिनि के,
टूटे मनौ नभ तैं कतारे बाँधि तारे हैं॥१॥

पीठि बाँधि बालक बिराजि बर बाजि ईठि,
जाकी दौर देखि दीठि छकित छली गई।
कहै रतनाकर विपच्छिनि के कच्छनि सौं,
लच्छमी प्रतच्छ अच्छि आगे निकली गई॥
अचल उदंड बरिबंडनि के मंडल मैं,
डंड लौं अखंडल के खंडत हली गई।
झारति कृपान सौं गुमान ज्वान जंगिनि के,
फारत फिरंगिनि के फर कौं चली गई॥२॥

सेन लै तुरंगी संग सेनप फिरंगी वीर,
जंगी नारि धीर धाइ धारिबौ बिचार्यौ है।
कहै रतनाकर भँडेर ग्राम नेरैं घेरि,
राहु कौ रिसाला हाला चंद पर पार्यौ है॥
रानी लच्छमी त्यौं रन-उच्छता प्रतच्छ करि,
कावा काटि धावा कै समच्छ ललकार्यौ है।
ठोकर दै अस्व कौं उड़ाइ वेगि वोकर पै,
तीखी तरवारि सौं बिदारि मदि डार्यौ है॥३॥

पेस पेसवा की औ नवाब की न ताब लखि,
भेस करि लच्छमी प्रतच्छ मरदाने कौ।
कहै रतनाकर सवार ह्वै तुरंगम पै,
संग लै रिसाल बिकराल लाल बाने कौ॥
दोऊ कर झारति झपटि करवार-वार,
फारति फुरत फौज-फर फिरगाने कौ।
मंद करि दीन्हौ धावा धवल अरिंदनि कौ,
बंद करि दीन्हौ दीह दंद तोपखाने कौ॥४॥

ओलनि लौं गोलनि की बाढ़ सेँधिया की परैं,
ताव गई तरकि नवाब पेसवाजी की।
कहै रतनाकर त्यौं लच्छमी उमंगि बढ़ी,
संग लिए बाहिनी बिकट बर बाजी की॥

तोपचिनि मारि लोपि वार तोपखाननि की,
भानन लगी ज्यौं अरि-पाँति भाँति भाजी की।
भाजी सिलेदारी घाटवारी सेन-राजी सबै,
साजी रन-वाजी गई विचलि जयाजी की ॥५॥

कोटा की सराय सौं धधाइ कै फिरंगी-फौज,
ग्वालियर-कोट पै लगाइ चोट चमकी।
कहै रतनाकर समच्छ लच्छमी त्यौं कढ़ि,
सबल सवार-सेन-संग धाइ धमकी॥
काटि-काटि डारन लगी यौं महि रुंड मुंड,
पैठि अरि-झुंड मैं जमात मनौ जम की।
धमकी जहाँ हीं जहाँ संगर-घटारी घोर,
बिज्जु की छटारी ह्वै तहाँ हीं तहाँ तमकी ॥६॥

ग्वालियर-कोट सौं सचोट सिंहनी सी कढ़ि,
लच्छमी समच्छहीं विपच्छि-सेन भारी के।
कहै रतनाकर उमंगि जुरी जंग धाइ,
संग लै सवार गने करनी करारी के॥
झारति कृपान फौज फारति फिरंगिनि की,
दारति दरेरि दल जंगिनि हजारी के।
धधकत गोलनि कैं दूंदर धँसी यौं जाति,
धँसत समंदर ज्यौं अंदर दवारी के ॥७॥

अच्छिनि-समच्छ गई छिति सौं अलच्छित ह्वै,
लच्छ बनि लच्छमी विपच्छिनि रिसाला कौ।
कहै रतनाकर सुधाकर कौ बिंब बेधि,
प्रान कियौ तुरत पयान सुर-साला कौ॥
अधरहिँ धार्‌यौ धर धाइ जगधाइ जानि,
पावै धरा पीर ना सरीर बीर बाला कौ।
इत तैं उमंडि संडिया पै मुंडमाली आनि,
मुंड मध्य-मंडन बनायौ मुंड-माला कौ॥८॥

---
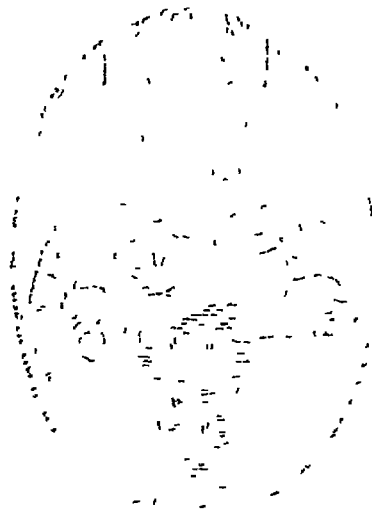
(१४) श्री ताराबाई

राजपूत बीर जो निसेस देस-पीर करै,
ताकौं सुख मानि पानि आपनौ गहाऊँ मैं।
कहै रतनाकर तिबारा भरि तारा बाच,
ना तरु कुमारी रहि आप चढ़ि धाऊँ मैं॥
मंडि रन-मंडल उमंडि चंड चंडी सम,
प्रखर प्रचंड खंड-धार घमकाऊँ मैं।
तात की बिपत्ति-बिथा बिषम बहाऊँ अरु,
मात की अपूती-दाह दारुन सिराऊँ मैं॥१॥

साजै बीर बाहिनी बरातहिँ उछाहि नीकैं,
बैरिनि की खाल खैँचि दुंदुभी मढ़ावै जो।
कहै रतनाकर पछाड़ि देस-द्रोहिनि कौं,
फाड़ि कै करैजौ हाड़-भूषन गढ़ावै जो॥
मातभूमि-बेदी पै हिए की दाह साखी राखि,
सबिधि स्वतंत्रता के मंत्रहिँ पढ़ावै जो।
वाही बर बीर कौं बरौं मैं अनुराग पागि,
अरि उर-राँग माँग सेँदुर चढ़ावै जो॥२॥

झेलति तुफंग-तीर-वार सुकुमार अंग,
आइ पति संग पैठि संगर मैं तमकी।
कहै रतनाकर नवाब मालवा की ताव,
रंचक रही न भई हीन सब हम की॥
बलगद बाजी पै बिराजि सेन-राजी साजि,
घेरि मल्ल सूरज निसा मैं लोह-तमकी।
धावत घुमाइ चमकावति दुधारा खग्ग,
तारा मेदपाट कौ सितारा बनि चमकी॥३॥

—

(१) श्रीराधा-विनय

जानत न पीर-हीन पीर पीर-वारनि की
तातैं तिन्हैं पीर-पाक रोचक चिखाइ दै।
कहै रतनाकर प्रिया के नख-रेखनि सौं
जन्म-कुंडली मैं प्रेम-परख लिखाइ दै॥
ललिता दया की लली ललिता सुनी मैं कान
प्रगट प्रमान ताकौ नैननि दिखाइ दै।
सरल-सुभाइ स्वामिनी कौं समुझाइ टेक
पैयाँ परौं नैंकु मान करिबौ सिखाइ दै॥ १॥

पाँच सौ सैंतीस

जोगी जोग साधैं भोगी भोग-ब्यौंत बाँधैं सबै
ब्रह्म अवराधैं ज्ञानी गूढ़-सुख-साधा कै।
कहै रतनाकर बिरागी राग त्यागैं ऐंठि
रागैं षटराग रागी बिरति अबाधा कै॥
ऐसौ कछु बानक बनाइ दै बिधाता जदि
तौ पै गुनैं ताकी ताकि करुना अगाधा कै।
धाइ ब्रज-बीथिनि अघाइ जमुना कैं बारि
एकौ बार उमगि पुकारैं हम राधा कै॥ २॥

काढ़ति न ही की हाँस कुटिल कटाच्छ बेधि
उतरी-कमान-प्रभा भौंहनि मैं भाई है।
कहै रतनाकर प्रभावहीन बैननि औ
भावहीन नैननि दिखाति दुचिताई है॥
हा हा किन कारन उचारन करति कहा
बारन-उबारन की सुधि बिसराई है।
कीन्यौ मनुहार ना तिहारे कौन सेवक कौ
जाकैं ताप मानस की भाप दृग छाई है॥ ३॥

(२) श्रीब्रज-महिमा

दूरि करिबे कौं तन मन कौ मलान सबै
आयौ इहिं ओक आप तीन लोक-त्राता हूँ।
कहै रतनाकर रुचिर रुचिकारी जाहि
जानैं संभु-सहित गजानन की माता हूँ॥
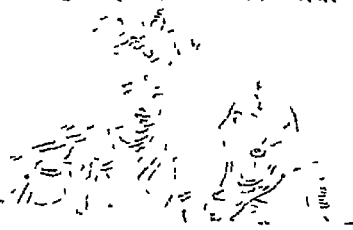
आइ इहिँ घाट पै धुवाइ पट मानस कौ
होत सुचि स्वच्छ सँतहू मैँ सूम दाता हूँ।
ऐसौ देखि पातक पखारन कौ यामैँ खार
ब्रजरज संचि बन्यौ रजक विधाता हूँ ॥ १ ॥

सिद्धनि की सिद्धि औ समृद्धि तप-वृद्धनि की
परम प्रसिद्ध रिद्धि प्रेम-निधि वर की।
कहै रतनाकर सुरस-रतनाकर की
सुचि रतनाकर-निधान धूरि छरकी ॥
भक्ति की प्रसूति भुक्ति मुक्तिनि की सूति मंजु
परम प्रभूत है विभूति विस्व-भर की।
बृंदारक-बृंद जामैँ लहत अनंद-कंद
ऐसी रज वंद्य बृन्दावन के डगर की ॥ २ ॥

भेजे देत जीव जंतु संतत न जानैँ कहाँ
मानैँ यहै तंत पै पतौ न लहि जाइगौ।
कहै रतनाकर विधाता कहै त्राता टेरि
कब लौँ कहौ तो खीस-खाता सहि जाइगौ।
हेर-फेरहू तौ मेरु होत या जरा मैँ नाथ
अब ना नए सिर सौँ ठाठ ठहि जाइगौ।
भाव रहि जाइगौ यहै जौ ब्रजमंडल कौ
मानिनि के भाव कौ अभाव रहि जाइगौ ॥ ३ ॥

संपति विलोकि नंदराय वृषभानु जू की
संपति सुरेसहू की भासति भिखारी सी।
कहै रतनाकर सुवृंदावन कुंजनि पै
वारियति कोटि कोटि नंदन की बारी सी॥
रज की न जाति बात बरनी हमारैं जान
आठौं सिद्धि नवौं निधि मग मैं बगारी सी।
निरखि निकाई व्रज-नागरि नवेलिनि की
रंभा उरवसी रमा लागति गँवारी सी॥ ४॥

जल जमुना कौ जसुदा कौ कियौ कज्जल लै
गोपिका-मटूकी मसि-भाजन भराऊँ मैं।
कहै रतनाकर कलम पुटिया लै करूँ
कान्ह की लुकटिया कहूँ जो परी पाऊँ मैं॥
वंसीवट पातनि के विसद बनाइ पत्र
विजन करीर-कुंज आसन लगाऊँ मैं।
व्रज-महिमा कौ एक रजहूँ सुलेखौ तऊ
आवत परेखौ कहा लेखि लिखि पाऊँ मैं॥ ५॥

जद्यपि न दूरि मधुपुरि कछु श्रीवन तैं
अरग न तौ हूँ एक परग सिधैहैं हम।
कहै रतनाकर वियोग-ज्वाल-जालनि मैं
जरि वरु वृंदावन-रज मैं विलैहैं हम॥

तन की कहै को मन मान आतमा हूँ सबै
याही के कनूका पै तिनूका लौं लुटैहैं हम।
जौ हूँ ब्रजवासी प्रेम पद्धति उपासी तऊ
अन्य धाम स्याम हूँ सौं मिलन न जैहैं हम ॥ ६ ॥

(३) श्रीराम-विनय

पाइ वर गोपी ग्वाल हूँ कै संग खेलन कौं
आनँद सकेलन कौं मौज मन भाई मैं।
कहै रतनाकर मुनीस वन दंडक के
मगन उमंग की तरंग सुखदाई मैं ॥
भूलि भूलि देस-काल-ज्ञान गुन-मान सबै
पूछत परसपर सरस अतुराई मैं।
व्रज की जवाई मैं कितेक वेर लागै कहौ
कैक दिन और अहो द्वापर अवाई मैं ॥

(४) श्रीअयोध्या-महिमा

जिनके परत मुनि-पतिनी पतित तरी
जानि महिमा जो सिय छुवत सकानी है।
कहै रतनाकर निषाद जिन जोग जानि
धोए बिनु धूरि नाव निकट न आनी है ॥

ध्यावैं जिन्हैं ईस औ फनीस गुन गावैं सदा
नावैं सीस निखिल मुनीस-गन ज्ञानी हैं।
तिन पद पावन की परस-प्रभाव-पूँजी
अवध-पुरी की रज-रज यैं समानी है॥

(५) श्रीशिव-वंदना

अरक धतूरौ चाबि रहत सदाई आप
भोग जथाजोग बगरावत घने रहैं।
कहै रतनाकर त्यौं संपति असेस देत
निज कटि सेस धारि आनँद सने रहैं॥
ललकि लुटाइ दिव्य भूषन अदूषन जे
दोषाकर भाल भव-भूषन गने रहैं।
पुरट पटंबर के अखिल अटंबर के
बाँटि सब अंबर दिगंबर बने रहैं॥१॥

बेर बेर बिलखि बिधाता सौं कुबेर कहै
हम पैं तिहारी परै संपति सँभारी ना।
कहै रतनाकर लुटाए देत संभु सबै
देखी कहूँ ऐसी मति दान-मतवारी ना॥

रावरे कुअंकहू की टारैं मरजाद सबै
वाकी पै निरंकुस कुटेव टरैं टारी ना।
सब हमही से किए देत अब कोऊ करै
सोन-टोकरी हू दिये नोकरी हमारी ना ॥१॥

सुमति गजानन की देत कविराजनि कौं
राजनि पैं वीरता खड़ानन की छाए देत।
कहै रतनाकर त्यौं अन्नपूरना की सुचि
रुचिर रसोई जग-बीच बरताए देत ॥
चेतै घरबार ना विलोकि द्वार मंगन कौं
सीस धरी गंग हूँ उमंग सौं बहाए देत।
द्वै ही एक अंगुल गयौ है रहि चाँदी जानि
मादी चंदचूर चंद चूर कै लुटाए देत ॥३॥

कैसैं सूलपानि है अपार खल खंडि देते
जन-मन कौ जौ सूल पानि करते नहीं।
कहै रतनाकर न बात हम काँची कहैं
साँची कहिबे मैं पुनि नैंकु डरते नहीं ॥
पावते कहाँ तैं गंग विष के निवारन कौं
कान जौ भगीरथ की आन धरते नहीं।
ल्यावते लुकार धौं कहाँ तैं काम-जारन कौं
जौ पै तीन लोक के त्रिताप हरते नहीं ॥४॥

गंग कौ न धार जो सिधारि जटा-जूटनि मैं
भूप बिनती बिनु धधाइ धरा धैहै ना।
कहै रतनाकर तरंग भंगहू कौ नाहिं
जो निज उमंग और अंग दरसैहै ना॥
यह करुनाहूँ की कदंबिनी न नाथ सुनौ
ताप बिनुहीं जो द्रवि आप झर लैहै ना।
यह तौ कृपा की धुनि-धार है अपार संभु
मानस दरारे मैं तिहारे रुकि रैहै ना॥५॥

(६) श्रीकाशी-महिमा

माधौ गंग ढुंढी डंडपानि कछु छीने लेत
कछु कर कीने लेति भैरव-जमाति हैं।
कहै रतनाकर हमारी पाप-रासि सबै
देखत ही संभु कैं हठाहठ हिराति है॥
इमि चहुँ ओर सौं झपट झकझोर हेरि
तूँ हूँ मुख फेरि अंब मंद मुसकाति है।
कासी की कहा है अब जगत न ऐहैं हम
माई इहाँ जनम-कमाई लुटि जात है॥ १॥

बिधि औ निषेध कौ न भेद कछु राखति हैं
ताहू पर बेद मंजु महिमा प्रकासी है।
कहै रतनाकर हमारैं जान यामैं कछू
राजति नवल नटराज की कला सी है॥

तकत त्रिलोक कौ त्रिसूल निरमूल करै

आप त्रिपुरारि के त्रिसूल पै तुला सी है।

सबकी बिलाति महा-पातक जमाति यामैं

तौहूँ पुन्य-रासी ही कहाति यह कासी है॥ २॥

छूटत ही साथ भूतनाथ के नगर माँहिं

बिषम विचित्र बनें बानक लखात हैं।

कहै रतनाकर ये जनम-सँघाती जऊ

तौहूँ नाहिं भेंटिबे कौं पुनि सम्रुहात हैं।

भेद-कूटनीति सौं कछूक फूट फैलै इमि

फेरि ना परस्पर कदापि नियरात हैं।

पंचभूत भूत-मंडली मैं जाइ बैठैं ऐंठि

मान त्यौं अभूति की विभूति मिलि जात हैं॥ ३॥

विधि सौं कहत जम जिय बिलखाइ हाय

कासी कौ सुभाय काहू भाय सुधरै नहीं।

कहै रतनाकर सो लोक तीनि हूँ तैं कढ़ी

सूली के त्रिसूल चढ़ी तदपि डरै नहीं॥

राखति है अकस तिहारी रचना सौं इमि

बस परि याकैं प्रानी उतकौं ढरै नहीं।

ऐसौ कछु मंतर फुँकाइ देति काननि मैं

पंच कैं प्रपंच रंच सो पुनि परै नहीं॥ ४॥

मानि कासिका कौं सुभ-सासिका बस्यौ हौं आनि
जानि सरनागत कौं स्वगत सुखारे देति।
कहै रतनाकर लखात सही सो तौ सबै
विविध विनोद मोद तन मन वारे देति॥
पर अब जान्यौ जन भावत न नैंकु याहि
पूँजी ही विलोकि रोकि आनँद-सहारे देति
जनम अनेकनि की करम कमाई छीनि
आपकौ कहै को तीनि लोक सौं निकारे देति॥ ५॥

(७) श्रीहनुमद्महिमा

संतत हिमायत-हमेव मैं छक्यौ सो रहै
ताकी छाक छनक उछाकि को सकत है।
कहै रतनाकर जमी जो जग ताकी धाक
ताहि फलफंदनि फलाकि को सकत है॥
ताके सामना की करि कामना कुटिल कूर
मूढ़ मदचूर है न थाकि को सकत है।
बाँह दै बसावै जाहि बाँकौ हनुमान ताहि
तनक तेरेरि तीखैं ताकि को सकत है॥१॥

दलिमलि जात दर्प दुष्ट-दल-दानव कौ
पूरै आयु पिसुन-पिसाचनि पत्यारी की।
कहै रतनाकर बिलाति सुख-स्वप्न-साध
बाधक विपच्छि-पच्छ-राच्छस कुचारी की॥

बिमुख-बितंडी-प्रेत-मंडी खंड खंड होति
अंडबंड बात चाई-भूत-भीर सारी की।
बैरिनि के फेफरे फलकि फटि फाँक होत
हाँक होत बाँके बजरंग धाक-धारी की ॥२॥

आपि अवलंब जगदंब अवधेस्वरी कौं
अरि की असोक-बाटिका धरि उजारैगौ।
कहै रतनाकर त्यौं अच्छय-घमंड खंडि
चंडकर-पूत-दीठि चंडनि पै पारैगौ॥
दैहै अमी-मूलिका सुमित्रानंद रच्छन कौं
बेगि हीँ बिपच्छिनि के पच्छनि कौं झारैगौ।
भारी-भीर-भंजन प्रभंजन कौ पूत बीर
गंजन गनीम कौ गुमान करि डारैगौ ॥३॥

कैधौँ बलसागर की उद्धत तरंग तुंग
बोरन कौं सेना रजनीचर अकूत की।
कहै रतनाकर कै संत-मान-रच्छन कौं
महिमा बसिष्ठ-दंड परम प्रभूत की॥
जानकी के सोक जलजान की मथूल किधौँ
कैधौँ बर ब्रज की बिभूति पुरहूत की।
कठिन कराल काल-दंड की रुजा है राम
जीत की धुजा है कै भुजा है पौनपूत की ॥४॥
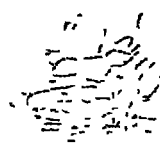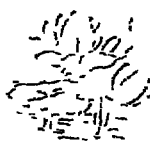
याही तैं हँकारत हुते ना हनुमान होति
हलबल भारी तुम्हैं जन-रखवारी मैं।
कहै रतनाकर पै आनन उदास चाहि
लीनी थाहि बात जो न सकुचि उचारी मैं॥
कर भुजडंडनि न फेरौ औ न हेरौ गदा
इतनौ बखेरौ ना हिमायत हमारी मैं।
दलिमलि जाइ हैं बिपच्छिनि के पच्छ सबै
तनक सरीखी तीखी ताकनि तिहारी मैं॥५॥

एहो हनुमान मान एतौ जो बढ़ायौ जग
राखियै तौ ध्यान आन-बान के निभाए कौ।
कहै रतनाकर बिसारियै न कानि बर
बिरद सँभारियै कृपाल के कहाए कौ॥
और की न पौरि पै पठैयै मन ठैयै यहै
आपही बनैयै सब काज अपनाए कौ।
फेरियै निगाह ना गुनाह हूँ किये पै लाख
राखियै उछाह निज बाँह दै बसाए कौ॥६॥

(८) श्रीज्वालामुखी-विनय

ज्वाला-मुखी माइ दिव्य दरस तिहारौ पाइ
भव्य भावना मैं इमि मति अनुरागी है।
कहै रतनाकर दिवाकर दिया के यह
लेसन कौं मानहु असेस लव लागी है॥
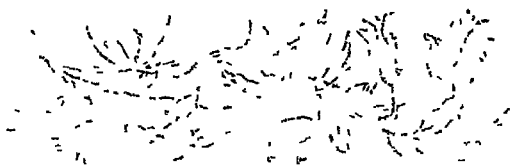
कैधौं मनि कामद-मयूष की छटा है किधौं
सुर-मुनि-तेज-लय अमल अदागी है।
कैधौं वेद-कवि की प्रतच्छ प्रतिभा है
कैधौं प्रगट-प्रभा है आदि जोत जग जागी है।। १ ।।

सकल मनोरथ की सिद्ध बल-बुद्धि-वृद्धि
संपति-समृद्धि दै दुलारतै रहति है।
कहै रतनाकर निहारि करुना की कोर
करवर-निकर निवारतै रहति है।।
दारिद के ब्यूह औ समूह दुरभागनि के
पातक के जूह जोहि जारतै रहति है।
ज्वालामुखी मातु निज भक्तनि सुखी कै सदा
भुक्ति-मुक्ति-वृंदनि बगारतै रहति है।। २ ।।

सकल सँवारन की सिद्धि सुभ तोमैं ताकि
बिधि-बुधि जोग औ अजोग की बिसारी है।
कहै रतनाकर बिहारौ प्रतिपाल हेरि
परिहरि चिंता सुख-नींद हरि धारी है।।
दुष्ट-दल घालन की घात मैं बिलोकि तोहिं
अचल समाधि साधि राखी त्रिपुरारी है।
भारत की आरत पुकार सुनिबे कौं एक
ज्वालामुखी मात जोति जागति तिहारी है।। ३ ।।
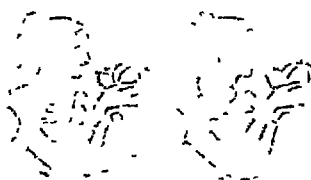
(९) श्रीसती-महिमा

बैठि कै हुतासन कैँ आसन अकास जाइ
लीन्ही हठि संगति उमंगति पती की है।
कहै रतनाकर निहारि सब दंग भए
ऐसी रही रंगत न जंगम जती की है॥
जाकौ गुन सुनि मुनि-पतनी सिहातिँ सदा
कहत रसाति रीझि रसना रती की है।
बेदनि सौं उमड़ि पुराननि कैँ पूरि बढ़ी
तीनौं महि माहिँ महा महिमा सती की है॥

(१०) दीपक

जब बिधि-बिरचित दिव्य दीप अस्ताचल जावै।
दुख-दायक तम-तोम ब्यौम-छिति-छोरनि छावै॥
तब गुन-रासि कपास नेह भरि हृदय हुलासै।
निज काया करि नास और कौ बास प्रकासै॥१॥

तब सानंद सुबंदनीय दीपक-पद पावै।
ज्यौति-रूप कौ रूप जानि तिहिँ जग सिर नावै॥
देव-मंदिरनि माहिँ पाइ सुभ ठाम बिराजै।
राजनि के सुभ सदन माहिँ मंजुल छबि छाजै॥२॥
कवि पंडित कैँ धाम होत आदर अधिकारी।
सुजन-सभा मैँ करति प्रभा ताकी उजियारी॥
पै यह लहि सनमान नैंकु निज बानि न त्यागत।
सबही कैँ उपकार हेत एकहि सौ जागत॥३॥

नीच दरिद्री मूढ़ कूढ़ मूरख पापी कौं।
देत प्रकास समान रूप रुचि सौं सवही कौं ॥
स्वर्न रजत के पात्र माहिँ नहिँ अधिक प्रकासै।
नहिँ माटी के घटित दिया मैँ कछु घटि भासै ॥
जब रोम रोम इमि नेह भरि गुनमय सब कौ हित करै।
तव लहि पदवी कुल दीप की दीप दीप दीपति भरै ॥४॥

(११) भारत

भारत पै दुरभाग्य-प्रबल-वज्री कोप्यौ है।
इहिँ हिय जानि अनाथ नाथ चाहत लोप्यौ है ॥
महा घोर अज्ञान-तिमिर-घन चहुँ दिसि छावत।
मूसलधार अपार विपति-जल खल बरसावत ॥
अब धाइ कृपाचल धारि ध्रुव वेगहिँ आइ उवारियै।
नतु गिरिवर-असरन-सरन बाँकौ विरद विसारियै ॥१॥

अहौ आर्य संतान मान उन्नत अति धारी ॥
सब मिलि अब इहिँ भाँति मनाऔ दिव्य दिवारी ॥
ज्ञान-दीप की मंजु माल उर-अंतर मेलौ।
उन्नति-चौसर चारु प्रान-पन सौँ खुलि खेलौ ॥
सुभ मनसा वाचा कर्म के अच्छ दच्छताजुत धरौ।
जुग बाँधि साधि निज चाल चलि सार काढ़ि बाहिर करौ ॥२॥
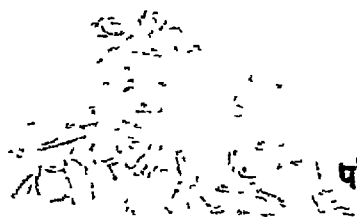
आरत होहु न भारतबासी सँभारत दुःख सबै ठिलि जात है।
त्यौं रतनाकर हाथ औ माथ हिलाएँ हिमाचल हूँ हिलि जात है॥
काह न होत उछाहनि सौं मृदु कीट हू पाहन मैं पिलि जात है।
आरस त्यागि कै ढारस कीन्हैं सुधारस पारस हूँ मिलि जात है॥३॥

क्या अब कृपा का भी न यह अधिकारी रहा
या कुछ कृपा ही ने निठुरपन धारा है।
कहै रतनाकर उसी की तौ दसा है यह
जिसको अनेक बार तुमने दुलारा है॥
हारा बल पौरुष न इष्ट रहा कोई कहीं
एक आपही की दया-दृष्टि का सहारा है।
हाथ पावँ मारा भी न जाता इससे है अब
गारत हुआ यौं हाय भारत हमारा है॥ ४॥

(१२) हरिश्चन्द्र

मूरति सिँगार कौ अगार भक्ति-भायनि कौ
पारावार सील औ सनेह सुघराई कौ।
कहै रतनाकर सपूत पूत भारती कौ
भारत कौ भाग औ सुहाग कविताई कौ॥
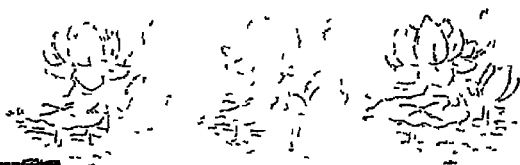
धरम धुरीन हरिचंद हरिचंद दूजौ
मरम जनैया मंजु धरम मिताई कौ।
जानि महिमंडल मैं कीरति समाति नाहिँ
लीन्यौ मग उमगि अखंडल अथाई कौ॥

(१३) शुद्धि

क्रुद्ध है मलेच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने
जाल जे कुबुद्धि तनैं उद्धत अड़ंगा कौ।
कहै रतनाकर न संकुचित होत रंच
परम प्रपंच रचैं दंभ अरु दंगा कौ॥
लाइ कै लबार हरताल निगमागम पै
छाइ कै विकार निज कुमति कुढंगा कौ।
झाँप हरिनाम के प्रताप पर पारत हैं
गारत हैं गौरव गँवार गुनि गंगा कौ॥ १॥

मानत हुते कै यह मंजुल महान मंत्र
सब सुख-साधन की सिद्धि उपजावैगौ।
कहै रतनाकर पै धरम-धुरीननि सौं
जानि परथौ सो तौ कछु काम नहिँ आवैगौ॥
म्लेच्छनि के रंचक प्रपंच-पेंच सौं जो ऐंचि
हिंदुनि की पाँति मैं सुभाँति ना बिठावैगौ।
सोई हरि नाम जम-पास तैं निकासि कहा
सुखद सुपास सुर-वास मैं बसावैगौ॥ २॥

बेद कौं न मानैं ना पुरान भेद जानैं कछू
ठानैं ठान आपने लबेद अड़बंगा की।
कहै रतनाकर नसावैं सुद्ध स्वारथ हूँ
आड़ मैं अनोखे परमारथ-भड़ंगा की॥
जैन अरु बुद्ध स्वामि-संकर किये जो सुद्ध
ताहू के विरुद्ध जुक्ति जोरत लफंगा की।
भक्ति तौ बखानैं पर रंचक प्रमानैं सक्ति
गुरु की न गोबिंद की गाय की न गंगा की ॥३॥

(१४) अन्योक्ति

आयसु दै टेरि बलि-पायस खवैऐं खिन
निज गुन रूप की हमायस बढ़ावै-ना।
कहै रतनाकर त्यौं बावरी बियोगिनि कैं
कंचन मढ़ाऐं चंचु चाव चित ल्यावै ना॥
निज तन धारे इंद्र-नंद मतिमंद जानि
मानि दृग-हानि हियैं हाँस हुमसावै ना।
हंस कौं दिखावै ना नृसंस गति-गर्व छाक
ए रे काक कोकिल कौं काकली सुनावै ना॥

(१५) शांत रस

देखै देखि देखन की दीठि दई जाहि दई
इहिं जग जंगम न कोऊ थिर थावै है।
कहै रतनाकर नरेस रंक सूधौ बंक
कोऊ कल नैंकु एक पलक न पावै है॥
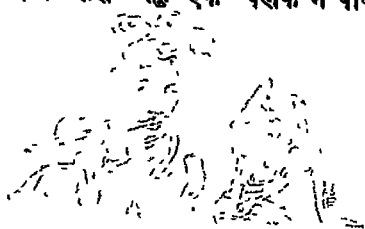
ऐसी कछु चपल चलाचल चली है इहाँ
जीवन तुरी पै अति आतुरी मचावै है।
किरन-छटा सौं दिन तरनि ततावै रैनि
वेगि चलिवै कौं चंद चाबुक लगावै है ॥

(१६) गंगा-गौरव

गंग-कछार कैं मंजुल वंजुल, काक कोऊ महामोद उफानै।
देखत प्राकृत सुंदरता-पद, प्राकृत ही के हियैं ठिक ठानै ॥
पाइ सुधा-सम वारि अघाइ न, आपनी जोट कोऊ जग जानै।
हंस कौं हाँस मजूर मयूर कौं, कोइला कोकिला कौं मन मानै ॥१॥

पापिनि की मंडली लकाए देति जानैं कहाँ,
धाए तिहूँ लोक पै न पावति पतीजियै।
कहै रतनाकर विधाता सौं पुकारै जम,
खाता खीस होत सबै याही दुख छीजियै ॥
पूछैं उठै गाजि तापै हँसत समाज सबै,
लाजनि कहाँ लगि लहू की घूँट पीजियै।
कैतौ कैद कीजियै कमंडल मैं गंग फेरि,
कैतौ यह साहवी हमारी फेरि लीजियै ॥२॥
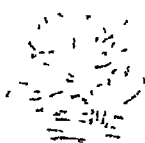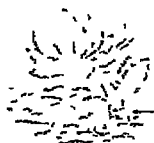
(१७) स्फुट काव्य

जाके सुर प्रबल प्रवाह कौ झकोर जोर
सुर-नर-मुनि-वृंद-धीर-विटप बहावै है।
कहै रतनाकर पतिव्रत परायन की
लाज कुलकान कौ करार विनसावै है॥
कर गहि चिबुक कपोल कल चूमि चाहि
मृदु मुसुकाइ जो मयंकहिँ लजावै है।
ग्वालिनि गुपाल सौँ कहति इठलाय कान्ह
ऐसी भला कोऊ कहूँ बाँसुरी बजावै है॥ १।

जब तैँ रची है रूप रावरे रसिकलाल
तब तैँ बनी है बाल बात बरकत की।
कहै रतनाकर रही है रुचि नैननि मैँ
मीन मुख मंजुल मुकुत ढरकत की॥
आठौ जाम धाम मग जोहत मृगी सी जब
चौँकै पाय आहट तिनूका खरकत की।
अनुराग रंजित अवाज सौँ कहत स्याम
मानिक तैँ मानहु मरीचि मरकत की॥ २॥

ज्यौँ भरि कै जल तीर धरी निरख्यौ त्यौँ अधीर ह्वै न्हात कन्हाई।
जानैँ नहीँ तिहिँ ताकनि मैँ रतनाकर कीनी कहा ठुनहाई॥
छाई कछू हरुवाई सरीर कै नीर मैँ आई कछू भरुवाई।
नागरी की नित की जो सधी सोई गागरी आजु उठै न उठाई॥३॥

लै लियौ चुंबन खेलत मैं कहूँ तापै कहा इतनौ सतरानी।
होंठनि हीं मैं कछू करि सौंहैं वृथा भरि भौंह कमान हैं तानी॥
लीजियै फेरि सबेर अबै अबहीं तौ मिठासहुँ नाहिं सिरानी।
यौं कहि सौंहैं कियौ अधरा इन वे तिरछौंहैं चितै मुसकानी॥४॥

स्वासनि की मृदु मंजुल बास सु एला बरास-बिलास बसावति।
सील सकोच की रोचकता रतनाकर त्यौं रसता अधिकावति॥
दाँतनि की दुति बातनि मैं बिथुरे त्वग छीरक की छवि छावति।
पाटल की पँखुरी अधरानि कौं मंद हँसी गुलकंद बनावति॥५॥

तंग अँगिया सौं तन्यौ चोटी सौं चमोटी पाइ
हिय हुमसावत भुअंग चल्यौ जात है॥
कहै रतनाकर त्यौं जोवन उमंग भर्यौ
ग्रीवा तानि उन्नत उतंग चल्यौ जात है॥
पायौ मरुभूमि मैं कहाँ तैं इतौ पानिप जो
पूरत तरंग अंग अंग चल्यौ जात है।
घूँघट बनाए ठमकत पैंड़ पैंड़ लखौ
ऐंड़त अनंग कौ तुरंग चल्यौ जात है॥ ६॥

देत ही काल्हि ही सीख हमैं पर आपु ही आज मलोलन लागी।
सामुहैं आयौ सुबोल बड़ौ अब तौ लघुता लिए बोलन लागी॥
रूप-सुरा रतनाकर की चख तैं अँखियाँ इमि लोलन लागी।
बावरी लौं बलि कुंजनि कुंजनि भाँवरी देत सी डोलन लागी॥ ७॥

मोहन की मनमोहनी मूरति देखैं बिना कल पावत नाहीं ।
देखैं अदेखिनि की अवली कहूँ तालु सौं जीभ लगावत नाहीं ॥
कीजियै कैसी दई की दया मरिवेहूँ कौ ब्यौंत बनावत नाहीं ।
मीच की कौन कहै रतनाकर नींद हूँ नीच तौ आवत नाहीं ॥८॥

ठाढ़ी अबै चलि होहु कहूँ न तु बीर न भीर मैं पावँ थिरैंगे ।
हाट औ बाट अटारिनि के घर-द्वारिनि के सब ठाम घिरैंगे ॥
देखनें कौं रतनाकर के बस नैंकु मैं एक पै एक गिरैंगे ।
धेनु चराइ बजावत बेनु सुन्यौ इहिँ गैल गुपाल फिरैंगे ॥ ९ ॥

जोग का भोग न भैहै हमैं सो सँजोग की भावना टारी न जैहै ।
रूप-सुधा-रतनाकर छाँड़ि तृषा मृग-नीर निवारी न जैहै ॥
हौड़ न आइबे आइबे की परी ऊधव सो अब हारी न जैहै ।
धारी न जैहै तिहारी कही वह मूरति मंजु बिसारी न जैहै ॥१०॥

हटकन संभु कौ न मानि हठ ठानि चली
आई पितु गेह बात जानि सु उछाह की ।
कहै रतनाकर तहाँ न सनमान पाइ
मन पछितान मैं बिलानी गति चाह की ॥
पति अपमान मानि जदपि जराई देह
तदपि समस्या भई कठिन निबाह की ।
भावी बस और की कहै को यौं सती हुती कै
तौ हुती पतिब्रता कही न मानो नाह की ॥ ११ ॥

दंत मुकताली मैं निराली लसै लाली वलि
अधर चुनी तैं प्रभा नीलम की फूटी है।
कहै रतनाकर कपोल पद्मरागनि पै
कल कुरुविंद की छवीली छटा छूटी है॥
कैसी मनवारी माल धारी है अनोखी यह
जाकी विन गुन ही पत्यारी रहै जूटी है।
जूटी है कहाँ तैं यह संपति प्रवीन आज
कौन से नवीन जौहरी की हाट लूटी है॥ १२॥

जमुना-कछारनि पै वन-द्रुम-डारनि पै
औरै कछू मंजु मधुराई फिरि जाति है।
कहै रतनाकर त्यौं नगर अगारनि पै
वारनि पै वनक-निकाई फिरि जाति है॥
नर-पसु पच्छिनि की चरचा चलावै कौन
पौन गौनहू मैं सरसाई फिरि जाति है।
जहाँ जहाँ वाँसुरी वजावत कन्हाई वीर
तहाँ तहाँ मदन-दुहाई फिरि जाति है॥ १३॥

मन होत्यौ न जौ पहिलैं ही तौ ता विन होती न ऐसी दसा तन की।
रतनाकर जानै सु मानै विथा निधि पाइ कै हाय गँवावन की॥
नहिँ आनन की कछु आनन पै चतुराई चितै चतुरानन की।
हाथ ही पारिवौ हो मन जौ तौ रच्यौ किन मोहिँ विना मन की॥१४॥
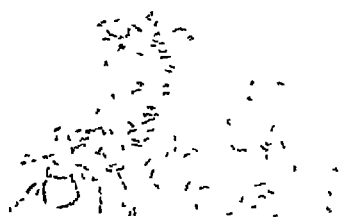
फूल मंडली कौ बर बानक बन्यौ है बन
चारौं आस सुख सुखमा की रासि छै रहीं।
कहै रतनाकर रसिकमनि स्यामास्याम
झूलत हिंडोरैं सखि चहुँघाँ उनै रहीं॥
केती रस घूमि रहीं केती झुकि झूमि रहीं
चूमि चूमि आँगुरी बलैया किती लै रहीं।
केती झनकारि नचैं नूपुर नगीना अरु
बीना लिए केतिक प्रवीना गान कै रहीं॥ १५॥

लै लियौ चुंबन तौऽब कहा अधरा तौ रह्यौ तुम पास तुम्हारौ।
एते ही पै इतनौ करि रोस कियौ इमि तेवर तानि करारौ॥
पै अपनौ तौ कियौ नहिं देखतिं लेखतिं ताहि तौ खेल पसारौ।
देखौ हियैं धरि हाथ अहो तन मैं न रह्यौ मन हाय हमारौ॥ १६॥

भाव नए चित चाव नए अनुभाव नए उपराजति ही रहै।
आँस सौं नैन उसास सौं आनन गाँस सौं प्राननि छाजति ही रहै॥
कीजै कहा रतनाकर हाय अकाज के साजनि साजति ही रहै।
कानन मैं बिन बाजैं हूँ बैरिनि काननि मैं नित बाजति ही रहै॥ १७॥

लालसा लगीयै रहै भरि द्दग देखन कौं
सुंदर सलोने वहै साँवरे पुरुष के।
जोहि जोहि मोहैं जाहि सो छवि न जोहैं फेरि
घेरि रहैं याही हेर फेर मैं वपुष के॥

पारावार सुखमा अपार के हलोरनि सौं
औरै और चोप चढ़ै होत सनमुख के।
पल पल माहिँ होति प्लावित पयोनिधि मैं
बिपुल बियोग औ सँजोग दुख सुख के ॥१८॥

मोहे नैन जोहि कै सुरूप सुखमा कौ ऐन
स्रौन सुनि बैन जो सु-चैन-रस बोद्यौ है।
कहै रतनाकर रसीली रसना रुचि कौं
बतरस-लालच छकाइ छरि छोद्यौ है॥
सुखद सुबास पै लुभानी बास-बासना है
अंग-अंग परस उमंग-रस पोद्यौ है।
सोद्यौ है कहा पै तोहिँ परत न जानि मोहिँ
एरे मन जानि तैं अजान कहा मोद्यौ है ॥१९॥

खेलन कौं ख्याल औ गुलाल रंग मेलन कौं
साल पाछिले लौं संग सखिनि सिधारी मैं।
कहै रतनाकर पै अब कैं अनोखी कछू
अति बिरीपति रीति नवल निहारी मैं॥
हाँ तौ लख्यौ साबर-बसीकर-प्रभाव मंत्र
निपट स्वतंत्र गीति अटपटवारी मैं।
तंत्र-मूठि चलति गुलाल की निहारी अरु
मोहन कौ मंत्र जग्यौ जंत्र पिचकारी मैं॥२०॥

सारी सखी मंडली मनाइ समुझाइ थकीं
निज-निज गुन के गुमान सब गारैं हैं।
कहै रतनाकर रसिक मनि मोहन हूँ
मोहन कौं करि मनुहार मन हारैं हैं॥
एते माहिँ धाइ लगी लाल के हिये सौं बाल
चातक कलापी दापी सुनि ललकारैं हैं।
ढारैं स्वच्छ सुरस सदाई घनस्याम तातैं
लच्छ करि पच्छ मोर-पच्छ सिर धारैं हैं॥२१॥

तौ कत अक्रूर क्रूर आए इहिँ गाम लैन
एक ही सौं सो जौ ठाम ठाम ठहरायौ है।
कहै रतनाकर हतायौ किन तासौं कंस
घट-घट जाकौ निरगुन गुन छायौ है॥
बिन सिर पाय की उचारन चले जो बात
ताकौ यहै कारन हमारैं मन आयौ है।
रूप तौ इहाँही रह्यौ हिय मैं हमारैं तुम्हैं
ताही तैं अरूप-रूप भूप दरसायौ है॥ २२॥

थाती राखि रूप की हमारी हाय छाती माहिँ
बाल कौ सँघाती घाती बनि बिलगायौ है।
कहै रतनाकर सो सूधौ न्याव ही तौ ऊधौ
मधुपुरि माहिँ जो अरूप सो लखायौ है॥
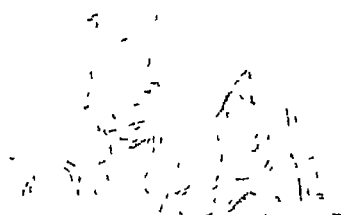
परम अनूप एक कूबरी विरूप छाँड़ि
रूपवती जुवती न कोऊ मोहि पायौ है।
तातैं तुम्हैं अब मनभावन सुरूप सोई
हिय तैं हमारे काढ़ि ल्यावन पठायौ है। २३॥

रूप-रतनाकर-अनूप-ओप आनन पै
बिथुलित लोल लट ललित लटूरी है।
मैन-मद-माते नैन ऐंड़-इठलाते बैन
जोवन कैं ठैन छक्यौ आसव अँगूरी है॥
रोम-रोम रमत निहारैं छवि पानिप सो
ताहू पै दरस रस-तृपति अधूरी है।
लहियत मान कान्ह लखत हजारनि पै
वारनि की होति तऊ लालसा न पूरी है ॥२४॥

ऐसी दसा लखि कै सखि रावरी बावरी होति न धीर धर्यौ परै।
कौन के रूप के पानिप कौ रतनाकर यौं भरि कै उबर्यौ परै॥
बूझैं न मानति भेद कछू पर स्वेद ह्वै रोमनि सौं सु ढर्यौ परै।
बैननि सौं रस ह्वै निकर्यौ परै नैननि सौं बनि आँस झर्यौ परै ॥२५॥

१२—७—३०

आशा-व्योम-मंडल अखंड तम-मंडित मैं
उषा के शुभागम का आगम जनाता है।
उच्च-अभिलाषा-कंज-कलिका अधोमुख को
मान फूँक फूँक मुकुलित दरसाता है॥

भारत-प्रताप भानु उच्च उदयाचल से
कुहरा कुबुद्धि का चिरस्थित हटाता है।
भावी भव्य सुभग सुखद सुमनावली का
गंधी गंधवाहक सुगंध लिए आता है॥ २६॥

२—८—३०

आई सहेट मैं भेंटन कौं चलि कान्ह की चेटक सी बतिया सौं।
देखी तहाँ इक सुंदरी नौल विलोकति लोल कछू घतिया सौं॥
लौटन कौं ज्यौं कियौ रतनाकर सोच सकोच सनी गतिया सौं।
त्यौं उन धाइ चितै हँसि कै कसि कै लपटाइ लई छतिया सौं॥ २७॥

१२—८—३

साँवरी राधिका मान कियौ परि पाइनि गोरे गुबिंद मनावत।
नैन निचौंहैं रहैं उनके नहिँ बैन बिनै के न ये कहि पावत।
हारी सखी सिख दै रतनाकर आन न भाइ सुभाइ पै आवत।
ठानि न आवत मान उन्हैं इनकौं नहिँ मान मनावन आवत॥२८॥

१९—८—३०

बेष हमारौ किए कहा बैठि बिसूरति कुंजनि मैं बनवारी।
यामैं है घात कछू न कछू तुम हौ रतनाकर चेटक-चारी॥
घात कहा गुनौ साँची सुनौ हम तौ यह बैठि मनावत प्यारी।
देखन कौं यह रूप अनूप तुम्हैं अँखियाँ दई देहि हमारी॥२९॥

२९—८—३०

जानि बल पारुष बिहीन दलि दीन भयौ
आपने बिगाने हूँ कटाई जाति काँधी है।
कहै रतनाकर यौं मति गति साधी मची
जाकी क्रांति बेग सौं असांति महा आँधी है॥

कुटिल कुचारी के निगीरन मुखारी पर
वक्र चाहि चक्र चरखे की फाल बाँधी है।
ग्रसित गुरंड-ग्राह आरत अथाह परे
भारत-गयंद कौ गुविंद भयौ गाँधी है ॥ २० ॥
१—१—२१

बौरे बैद बींदत कहा धौं इहिँ रोग माहिँ
सारे जोग जतन अजोग-जोगवारे हैँ।
कहै रतनाकर गुनत गारुड़ी तू कहा
यामैँ जंत्र मंत्र तंत्र निपट नकारे हैँ ॥
हाय हितचिंतक चितावत कहा तू चिंति
चाव चित इनकैँ अचिंत-गति-वारे हैँ।
एरे गुनी गनक गुनत तू कहा धौं बैठि
प्रेमिनि के नभ मैँ न ग्रह हैँ न तारे हैँ ॥२१॥
८—१—२१

विषम वियोग-रोग-पीर सौँ अधीर है कै
वेदन कौ भेद मन बैद कौँ सुनायौ है।
कहै रतनाकर सुनारी-उद्वेग जानि
निपट निदान कै विधान ठहरायौ है ॥
नेह कौ पचैबौ तप्यौ जीवन अँचैबौ घूँटि
नीँद भूख प्यास कौ बचैबौ समुझायौ है।
नैननि कैँ पाथ क्राथ कुमुद-हिये कौ कह्यौ
दलित करेजौ पथ्य पावन बतायौ है ॥२२॥
३१—१—३१

चल चित चाहि इन्हैं चंचल बतावत पै
ये तौ आनि अचल हिये मैं करैं डेरे हैं।
कहै रतनाकर निकाम कामबान गनैं
ये तौ कामना के घाय पूरत घनेरे हैं॥
कहत सरोज जे न पावत प्रमान-खोज
ये तौ रूप-पानिप-अनूप-मौज हेरे हैं।
कहत कुरंग जे न जानैं कछु रंग ढंग
परम सुरंग ये तिरग नैन तेरे हैं॥ २३॥
६—२—३१

परम प्रचंड मारतंड की मरीचिनि सौं
ग्रीषम कौ भीषम प्रताप इमि छायौ है।
कहै रतनाकर मयंक मनि-कांत भयौ
सांत राति हू मैं पारि किरन जरायौ है॥
बहति लुवार मनौ दहति दवारि देह
कैधौं फनिपति फुफकार-झार लायौ है।
कोऊ किधौं बिकल बियोगिनि बिनै कै फेरि
तीसरौ त्रिलोचन कौ लोचन खुलायौ है॥ २४॥
७—२—३१

कूजन लगे हैं पिक पंचम रसीले राग
गूँजन लगे हैं भौंर-संघ सुघराई मैं।
कहै रतनाकर रसाल बौरि झूलि उठे
फूलि उठे सुमन अनंद अधिकाई मैं॥

साजन लगे हैं साज सुखद सँजोगी-गन
बाजन लगे हैं बाज बिसद बधाई मैं।
दंत लागे चाँपन बियोगी कहि हाय हंत
संत लागे काँपन बसंत की अवाई मैं॥ ३५॥
८—२—३१

नाचत स्याम सदा इन पै तऊ ये तौ रहैं दिखसाध मैं सानी।
चाहति रूप कौ लाहु लहैं पै सहैं सुख संपति नित हानी॥
है विपरीत महा रतनाकर रीति परै इनकी नहिं जानी।
पानिप ही की तृषारत हैं तऊ ढारति हैं अँखियाँ नित पानी॥ ३६॥
११—२—३१

करति बिचार नाहिं घाम छाहिं हूँ कौ कछू
चाहन-उमाह सौं अथाहनि भरी रहै।
कहै रतनाकर सु रोकत रुकै न रंच
टोकत सखीनि हूँ कैं बिलखि लरी रहै॥
लटकि मुरेरे सौं करेरे कुच टेकि नैंकु
कान दिये आहट पै थानहिं थरी रहै।
जब तैं निहारी लाल रावरी छटा री बाल
तब तैं अटारी आनि अटकि अरी रहै॥३७॥
१०—२—३१

लाल पै गुलाल की चलाई राधिका जो मूठि
झूठि ह्वै परी सो कर-कंपन तैं खोटी है।
कहै रतनाकर सम्हारि पिचकारी उन
प्यारी कुच-कोर कौं निहारि उत जोटी है॥

नैंकु नैन सौंहैं तैं टरै न इनके सोभाइ
मुरि मुसुकाइ जो पिछौंहैं चोट ओटी है।
चोटी लहरी जो लुरि पीठि पै सुहागिनि की
नागिनि है कान्ह के करेजैं वह लोटी है ॥३८॥

तरुवर-झुंड कहूँ झुकि झहरात कहूँ
सघन लतानि के बितान झपि झूमि रहे।
कहै रतनाकर कहूँ हैं सर ऊसर और
कहूँ कुस कास के बिलास भरि भूमि रहे॥
फुदकि बिहंग कहूँ कौंपल कँपावै कहूँ
कुदकि प्लवंग कहूँ साखनि कौ दूँमि रहे।
जुरत जलासनि चरासनि कुरंग संग
बाघ कहूँ तिन पैं लगाए लात घूमि रहे ॥३९॥
१४—२—३१

तरनि तनूजा तीर बीर अवलोक्यौ आज
बर ब्रजराज साज सुषमा अभाषी कौ।
रस रतनाकर की तरल तरंगनि सौं
होत चल बिचल सुचित्त अभिलाषी कौ॥
चाह भरि चाहिबौ सराहिबौ उमाहि ताहि
थाहिबौ है अमित अकास लघु माखी कौ।
पूरती कछूक रूप-रासि लखिबे की आस
आँखिनि मैं होत्यौ जौ निवास सहसाखी कौ ॥४०॥
१५—२—३१

छूटे जटा जूट सौं अटूट गंगधार धौल
मौलि सुधागार कौ अधार दरसत है।
कहै रतनाकर रुचिर रतनारे नैन
कलित कृपा कौ चारु चाव सरसत है॥
चारौं कर चारौं फल वितरत चारौं ओर
और लेन हारे ना निहारैं अरसत है।
दै दै बरदान ना अघात पंच आनन सौं
देखि सहसानन सिहात तरसत है॥४१॥
१५—२—३१

आए बुझावन कौं ब्रज मैं पर
ब्रह्म हुतासन की लव लावत।
है रतनाकर-मीत अहो नहिँ
रंचक धीरज-नीर सिँचावत॥
लाज की आहुती पारि चले इत
ताही सौं ऊधव हाय कहावत।
लाइ गए हरि आगि बियोग की
औ तुम जोग की बात चलावत॥४२॥
१७—२—३१

खेलन मैं मिस कै गुलाल मूठि मेलन कौं
नैननि अनूठी मूठि चेटक की दै गयौ।
कहै रतनाकर सुरंग रंग पारि अंग
स्याम निज रंग हियैं रुचिर रचै गयौ॥

F. 72

करि कै बहानौ मनमानौ फाग भेंटन कौ
बीज अनुराग कौ सु रोमनि मैं बै गयौ।
जानी पहिलैं तौ हाय होली की ठठोली पर
चोली की टटोली मैं मरोरि मन लै गयौ॥४३॥
१८—२—३१

कीजियै हाय उपाय कहा
अपने सियराइबे कौं हमें दाहतिं।
रूप-सुधा रतनाकर की सु-
चखावन काज निरंतर नाहतिं॥
और रहीं कितहूँ की नहीं
अँखियाँ दुखियाँ उतहीं कौं उमाहतिं।
ऐसी भई दिखसाध असाध कै
देख्यौ अबै पुनि दोखिबौ चाहतिं॥४४॥
१८-२-३१

देखिबे कौं अकुलानी रहैं नित
पीर सौं रंचक धीर न धारतिं।
त्यौं रतनाकर रैन-दिना कलपैं
पल पै पल नैंकु न पारतिं॥
ये अँखियाँ पँखियाँ बिनु हाय
सहाय कौं और न ब्यौंत बिचारतिं।
धाइबे कौं उत ध्याइ मनाइ कै
पाइनि पै जल-अंजलि ढारतिं॥४५॥
१८—२—३१

देखन ही की सु घात मैं डोलति
बोलति बात सबै वितत्तानी
रोवत रोवत ही अब तौ गिरि
बाकी गयौ अँखियानि कौ पानी ॥४८॥

२०—२—३१

नीरव दिगंगना उमंग रंग-आंगन में
जिसके प्रसंग का अभंग गीत गाती हैं।
अतुल अपार अंधकार विश्वव्यापक में
जिसकी सुज्योति की छटाएँ छहराती हैं।
जिसके अमंद मुखचंद के विलोके विना
पारावार-तरल-तरंगें उफनाती हैं।
पाने को उसी की बाँकी झाँकी मन-मंदिर में
मंद मुसकाती गिरा गुप्त चली आती हैं ॥४९॥

औधि तौ ज्यौं त्यौं व्यतीत भई अब
जात न धीरज बाँधि धरयौ है।
त्यौं रतनाकर बातनि सौं न तु
पातिनि सौं तन-ताप सरयौ है॥
आपुहीं बारियै पाइ उतै हम पै
तौ उपाय न जाय करयौ है।
मान उसास ह्वै जात उड़यौ अरु
आँसु ह्वै जीवन जात ढुरयौ है॥५०॥

४—३—३१

चोरमिही चिनि-हार-गिलानि न
मानि इतौ मन मैं अवसेरौ।
प्यारी दिवारी की रैनि अहो
रतनाकर सौं इमि नैन न फेरौ॥
चुंबन की बदि बाजी अबै तुम
सारि लै आपनैं हीं कर गेरौ।
हार औ जीत हू कौ सुख सौं रहै
रावरे ही मुख सौं निबटेरौ॥५१॥

१२—३—३१

तू तौ कहै अलकावली भौंर सी
मो मत ये अलि आहिं जंजीरैं।
तोहिं तौ कंज से नैन लगैं पर
मैन के बान लौं मोहिं बिदीरैं॥
है कछु नैननि ही कौ बिबेक कै
एक सौं है गईं द्वै तसवीरैं।
तोहिं तौ मूक है चित्र पै मोहिं
बतावत भाव विचित्र की भीरैं॥५२॥

२५—३—३१

निकसत चारु चुभकी लै मुख मंडल पै
केसनि कौ कलित कलाप मढ़ि आयौ है।
मानौ निज बैरि के कढ़त रतनाकर तैं
ब्योम तैं पसरि तम-तोम चढ़ि आयौ है॥

ताहि सरुझाइ उझकाइ सीस टारयौ बाल
भाव यह चित पै सचाव चढ़ि आयौ है।
मानौ मंद राहु के निवारि तम फंद बंद
अमल अमंद चारु चंद कढ़ि आयौ है ॥५३॥

१५—४—३१

आवन हीँ सुधि रावरी रंचक
ही मैँ हजार हुलास भरैँ हैँ।
औ रतनाकर नाम लिऐँ सु
उसास ह्वै आनन आनि अरैँ हैँ ॥
जानि यहै मन मैँ रतनाकर
रावरे पंथ की धूरि धरैँ हैँ।
राखत आँखिनि मैँन रहैँ
अँसुवा बनि पाइनि आनि परैँ हैँ ॥५४॥

१५—४—३१

कोऊ उठै काँपि कोऊ रहति करेजौ चाँपि
कोऊ झाँपि ठौरही ठगी सी मढ़ि जाति है।
कहै रतनाकर त्रिभंगी कौ सुधंग चाहि
गोपिनि कैँ और ही उमंग बढ़ि जाति है ॥
रीझै काहि जोहि काहि चाहत रिझैबौ मोहिँ
सो तौ बात त्यौरि सौँ न ब्यौरि पढ़ि जाति है।
जितै जितै चारु चितै भ्रकुटी बिलासै कान्ह
तितै तितै काम की कमान चढ़ि जाति है ॥५५॥

२४—४—३१

लै अधरानि की माधुरी मंजुल
ऊष महूष हूँ लाजति ही रहै।
भावनि के रतनाकर मैं
अलखी लहरैं उपराजति ही रहै॥
माननि मैं हिय मैं अँग अंग मैं
यौं धुनि पै धुनि छाजति ही रहै।
कानन मैं तो बजै न बजै
पर काननि बाँसुरी बाजति ही रहै ॥५६॥
२९—४—३१

आली दिन द्वैक तैं न जानैं कहा कौतुक सौ
तन मन माहिँ देखि दरसन लाग्यौ री।
बैठत उठत बतरात जल जात गात
कछु न जनात कहा अरसन लाग्यौ री॥
लखि रतनाकर की बंक भ्रकुटी कौ लोच
अकथ सकोच सोच परसन लाग्यौ री।
तरसन लाग्यौ जिय जानति न जानि कहा
औरै रंग ढंग अंग सरसन लाग्यौ री॥५७॥
२३—५—३१

गोकुल गावँ मैं फाग मच्यौ
हुरिहारनि के उर आनँद भूले।
मूठ चलावत स्याम चितै
रतनाकर नैन निमेष हैं भूले॥
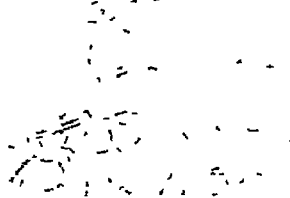
लाल गुलाल की धूँधरि मैं
ब्रज-बालनि के इमि आनन तूले।
काम-कलाकर की मनौ मूठ सौं
पावकपुंज मैं पंकज फूले ॥५८॥
२४—५—३१

सेस दिनेस लै श्री अवधेस कौं
लाइ चिता चित सूल सौं हूले।
जानकी जाइ निसंक चढ़ी
रतनाकर मानि दई अनुकूले॥
आनन नैन प्रसन्न महा लखि
देव अदेव सबै सुधि भूले।
गौरि गिरा मन माहिँ कह्यौ
मनौ पावक पुंज मैं पंकज फूले॥ ५९॥
२४—५—३१

फूले फूले फिरत कहाँ तौ तुम कापै अहो
याकी तौ महत्ता सत्ता सब कछु जानी है।
कहै रतनाकर विडंबना विचित्र जेती
जीवन के चित्र सौं न अधिक प्रमानी है॥
हाँ सौं नहीं होति औ नहीं सौं होति हाँ है सदा
तातैं हाँ चहैयनि नहीं सौं रुचि मानी है
इहिं भवसागर मैं स्वास आसही पै बस
पानी के बबूले सी थिरानी जिंदगानी है॥६०॥
२४—५—३१
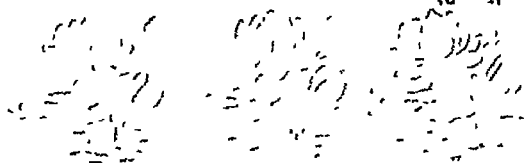
भारत निवासिनि कौ सहन-सुभाव देखि
विस्व चकरान्यौ परि बिस्मय भ्रमर मैं
कहै रतनाकर बिलोकी वीरता तौ बहु
ऐसी पर धीरता न नर मैं अमर मैं ॥
एक ओर कुंतल कृपान घमसान तोप
एक ओर टूटी हू कटारी ना कमर मैं ।
भूले से भ्रमे से भकुवाने से बिलोकि रहे
हारि रहे हिंसक अहिंसा के समर मैं ॥६१॥
२४—५—३१

लागैं नैंकु नैननि अचैन चित-ऐन भरैं
अंग करैं सकल अनंग मतवारे हैं ।
कहै रतनाकर बढ़त तन ताप होत
दरस-तृषा सौं प्रान परम दुखारे हैं ॥
औषध उपाय ना बिहाइ विष सोई और
तलफत हाय परे नंद के दुलारे हैं ।
धारे सुरमे की सान-ओप अनियारे अति
लोचन तिहारे बलि बिसिष बिसारे हैं ॥६२॥
२५—५—३१

आए हैं कहाँ तैं कहाँ जाइबौ कहाँ है फेरि
काकी खोज माहिं फिरैं जित तित मारे हैं ।
कहै रतनाकर कहा है काज तासौं पुनि
काज औ अकाज के विभेद कत न्यारे हैं ॥

भेद भावना कौ कहा कारन औ काज कछू
कारन औ काज के कहाँ लगि पसारे हैं।
ये सब प्रपंच गुनैं ज्ञान-मतवारे वैठि
हम तौ तिहारे प्रेम-पान-मतवारे हैं॥६३॥
२०—६—३१

वा सुखमा रतनाकर कौ चित
तैं नहिँ कौतुक नैंकु भुरात है।
यौं लहरैं छवि की छहरैं
छुटि छींटनि औनि अकास पुरात है॥
ऐसौ भरयौ कछु पानिप नैननि
जो तन तापनि हूँ न झुरात है।
गोवत गोवत हूँ न दुरात औ
रोवत रोवत हू न उरात है॥६४॥
२०—७—३१

छोटे बड़े बृच्छनि की पाँति वहु भाँति कहूँ
सघन समूह कहूँ सुखद सुहाए हैं।
कहै रतनाकर बितान बन-वेलिनि के
जहाँ तहाँ विविध विधान छवि छाए हैं।
वैठत उड़त मँडरात कल वोलत औ
डारनि पै डोलत विहंग वहु भाए हैं।
बिचरत बाघ बृक पूरत अतंक कहूँ
कहूँ मृग ससक ससंक फिरैं धाए हैं॥६५॥
२८—७—३१
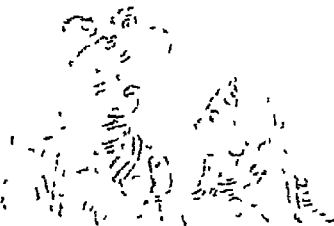
सिंह-पौर सज्जित सौं लज्जित करत काम
नैन अभिराम स्याम जमकत आवै है।
कहै रतनाकर कृपा की मुसक्यानि मढ़्यौ
आनन अनूप चारु चमकत आवै है॥
माते मद-गलित गयंद लौं सु मंद-मंद
चलि चलि ठाम ठाम ठमकत आवै है।
दमकत दिव्य दिपत अनूप-रूप
झाँझरौ मुकुट भूमि झमकत आवै है ॥६६॥
१—८—३१

देखत तुम्हैं ना तौ कहा हैं नैन देखत ये
सुनत तुम्हैं ना तौऽब स्रवन सुनैं कहा।
कहै रतनाकर न पावै जौ तिहारी वास
नासा तौ प्रसूननि सौं ललकि लुनै कहा।
तेरे बिनु काकौ रस रसना लहति यह
परसन माहिं त्वक अपर चुनैं कहा।
कोऊ धुनैं ज्ञान की कहानी मनमानी बैठि
अलख लखैयनि कौं हम पै गुनैं कहा ॥६७॥
१—९—३१

देखैं नभ-मंडल तैं सहित अखंडल के
मंडल अखंड सब सुरनि अनी के हैं।
कहै रतनाकर न पावैं पर कोऊ लखि
कौतुक अनोखे आज होत जो अलीके हैं॥

पाइ निज तारौ नैन स्रवन चवाइनि के
खुलि गए द्वार कारागार के दरी के हैं ।
नींद सौंपि आपनी प्रगाढ़ पाहरू गन कौं
जागि उठे भाग वसुदेव देवकी के हैं ॥६८॥

५—९—३१

आवन लगी है दिन द्वैक तैं हमारैं धाम
रहै बिनु काम जाम जाम अरुझाई है ।
कहै रतनाकर खिलौननि सम्हारि राखि
बार-बार जननी चितावत कन्हाई हैं ॥
देखीं सुनी ग्वारिनि कितेक ब्रज वारिनि पै
राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है ।
हेरत हीं हेरत हरयौ तौ है हमारौ कछू
काह धौं हिरानौ पै न परत जनाई हैं ॥६९॥

१९—१०—३२

राका रजनी की सज नीकी गंग की यौं लसैं
मानौ मुकता के भरे थार थलकन हैं ।
कहै रतनाकर यौं कल धुनि आवै होति
मानौ कलहंसनि के गोत ललकत हैं ॥
हिलि मिलि मंद लहरी के माल-जालनि पैं
झिलिमिल चंद के अनंद झलकत हैं ।
मानौ चारु चादरे बिसाल बादले के बने
पवन प्रसंग सौं सुढंग हलकन हैं ॥७०॥

१५— ७—३१

गमकत मंजु कहूँ प्रफुलित कंज-गंज
गुंजरत जापै अलि-पुंज झमकत हैं।
कहै रतनाकर सिवारनि के झारनि मैं
करत झमेला कहूँ चेल्हा चमकत हैं॥
लोल लहरी की सुखमा पै हेम-मंडित कै
अरुन प्रकास के बिलास दमकत हैं।
तट तटिनी के चख चंचल जहाँ हीं जात
चंचलता त्यागि कै तहाँ हीं ठमकत हैं॥७१॥
१५—१२—३१

सरद निसा की सरिता की सुखदाई छवि
हेरत हीं हेरत हिये मैं सरसाति है।
कहै रतनाकर अमद चंद्रिका के परै
सारी जरतारी की छटा री छहराति है॥
मीन दृग चंद्र-बिंब आनन सिवार केस
कल कल नूपुर की सु धुनि सुहाति है।
सज्जित सिंगार अभिसारिका रसीली मनौ
जीवन-अधार कैं अगार चली जाति है॥७२॥
१५—१२—३१

लाए घात बाघ कौं बिलोकि हूँ टरै ना मृग
आऐं पास मृग हूँ पै बाघ ना झरापै है।
कहै रतनाकर लगाए थन आनन मैं
बछरा न चाँपै औ न गाय पय आपै है॥
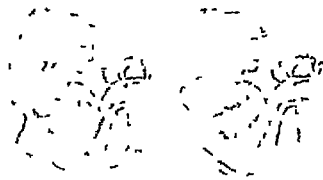
पाय परचौ पन्नग हूँ रहत रिसैबौ रोकि
जब नँदनंद नैँकु बाँसुरी अलापै है।
भोगिनि की पाँसुरी सु साथ छाप छापै नई
जोगिनि की साँसु री समाधि थिर थापै है ॥७३॥

१७—१२—३१

पावस अमावस की रैनि मैं बिलोकी जाइ
सुर-सरिता पै छवि छलकति छाजी है।
कहै रतनाकर चहूँघाँ अंधकार-रासि
अवनि अकास एकमेक रुचि साजी है॥
हिलिमिलि तामैं धौल धार की अनोखी छटा
कवि-मुख चोखी चारु उक्ति उपराजी है।
तम-गुन-तोम गिरि कज्जल के बीच मनौ
उज्जल सतोगुन रजत रेख राजी है ॥७४॥

१७—१२—३१

एहो लंदनेस नंदनेस लौं बिराजे रहौ
छाजे रहौ छाया सुभ नीति सुरबेली की।
ह्वै है सांति फेर वाही भाँति भव्य भारत मैं
पाँति पछितैहै क्रांतिकारिनि झमेली की॥

....

....

पैहै एक बाल एकबाल कम होन नाहिँ
ढाल कम ना है एक मालकम हेली की ॥७५॥

ललकति लोनी लटैं ललित कपोलनि कौं
अधर अमोलनि बुलाक थलकति है।
कहै रतनाकर रुचिर ग्रीव-सीव पाइ
दुलरी दमकि दुलराइ दलकति है ॥
अंग अंग आनँद तरंग की उमंग उठैं
आनन पै मंजु मुसुकानि छलकति है ॥
फलकति काँधैं चढ़ी चटक पिछौरी पीत
हुलसि हिये पै वनमाल हलकति है ॥७६॥

२८—१—३२

तेरौ रोस रुचिर सदोस हू ह्वै हेरन कौं
लागी मन लालसा न नैंकु डगि जाति है।
कहै रतनाकर रुखाई माहिं मान हूँ की
सहज सुभाव सरसाई खगि जाति है ॥
फीकी चितवनि हूँ न नीकी भाँति जानी जाति
तामैं लोल लोचन लुनाई लगि जाति है।
कहति कछू जो कटु बानि हूँ अठान ठानि
आनि अधरा सो मधुराई पगि जाति है ॥७७॥

५—२—३२

गंग-कछार कैं मंजुल वंजुल काक कोऊ महा मोद उफानै।
देखत प्राकृत सुंदरता पद प्राकृत ही के हियैं ठिक ठानै ॥
पाइ सुधा-सम वारि अघाइ न आपनी जोट कोऊ जग जानै।
हंस कौं हाँस मजूर मयूर कौं कोइला कोकिला कौं मन मानै ॥७८॥

३२—५—२

रांच्यौ रति जाग नींद सौंपि कै हमारै भाग
सो तौ सोध आप ही झपकि ठहि देत हैं।
बाढ़ै उहिं प्यारी-मुख मंजुल सुधाकर सौं
रस-रतनाकर की थाह थहि देत हैं॥
पानिप के अमल अगार सुख सार तऊ
लाइ उर दुसह दवारि दहि देत हैं।
नैन बिन-बानी कहि कबिनि बखानी बात
ये तौ पर सकल कहानी कहि देत हैं॥७९॥

२९—४—३२

दुख सुख रावरे हमारे ह्वै रहे हैं एक
सारे भेद-भाव के पसारैं दरे देत हैं।
कहै रतनाकर तिहारे कजरारे ओंठ
कालकूट नैननि हमारैं धरे देत हैं॥
जावक के दाग रहे जागि रावरैं जो भाल
सो तो मम अंतर अँगारैं भरे देत हैं।
कठिन करारे कुच उर जो तिहारे अरे
हिय मैं हमारे सो दरारैं करे देत हैं॥८०॥

१—५—३२

फाटि जात बसन हिये मैं लागि काँट जात
कैसैं डाँट आपने बिराने की बरैहैं हम।
कहै रतनाकर त्यौं सखिनि सहेलिनि के
कूट-कालकूट-घूँट घातक अँचैहैं हम॥

पाँच सौ चौरासी

अब लौं भई सो भई कब लौं दई कै गई
ननद-जिठानी-सास-त्रास सिर सैहैं हम।
लैहैं वर वेली चारु चटक चमेली चुनि
सुमन गुलाब के न चुनन सिधैहैं हम ॥ ८१ ॥
५—५—३२

कलित कलापी पन्नगेस मोती-मात मंजु
खंजरीट कीर के सरीर जात जाने हैं।
कहै रतनाकर बलाक कल कोकिल औ
पारावत चारु चक्रवाक रुचि साने हैं॥
कोमल पुरैनि-पात सुंदर मलिंद-पाँति
केहरि करिंद हंस कविनि बखाने हैं।
ढंग पसु पच्छिन के तेरैं अंग अंगनि ज्यौं
रंग मानहूँ मैं त्यौं अमानवी समाने हैं ॥ ८२ ॥
११—५—३२

सघन सुदेस केस-कलित-कलाप हेरि
ललित अलाप कै कलापी बहकत हैं।
कहै रतनाकर तिहारी भ्रकुटी की सान
देखि देखि कुसुम-कमान अहकत हैं॥
अधर बिलोकि कीर लोलुप अधीर होत
बानी ढंग कान कै कुरंग गहकत हैं।
ठहकत भौंर भोर जात कुंज-कानन कौं
रैनि चाहि आनन चकोर चहकत हैं ॥८३॥
१३—५—३२

देखि तव आनन अपार सुखमा कौ भार
चित्त चतुरानन कैं अजगुत जाग्यौ है।
कहै रतनाकर सुधा के मंजु आकर सौं
तोलन कौं ताहि लोल अति अनुराग्यौ है॥
समता न पाइ पै उपाय करिबे कौं कछू
हमता लगाइ ममता सौं मोह पाग्यौ है।
तारनि की रासि सौं बढ़ायौ तासु गौरव पै
तौ हूँ पला चंद कौ अकास जाइ लाग्यौ है॥८४॥
१४—५—३२

देखि तव आनन अनूप सुख रूप महा
जाकी सुखमा कौ जग होत गुन-गुंज है।
कहै रतनाकर सुधाकर बनावै बिधि
ताकी समता कौं हमता कैं परि तुंज है॥
तेरौ दिव्य दुति सो न दीपति बिलोकि ताकी
सकुचि सिहाइ होति मति गति लुंज है।
तोरि तोरि डारत बिथोरि रिस भारनि सौं
होत दिसि चारनि सो तारनि कौ पुंज है॥८५॥
१६—५—३२

जारे देत किंसुक उजारे देत गंधबाह
दाप कै बिचारे बिरहीनि के निकर पै।
कहै रतनाकर प्रचारि बाट पारे देत
पिक मतवारे व्यथा-मारे की डगर पै॥

एहो ऋतुराज कैसौ राज है तिहारौ हाय
जामैं वली गाजि गाज गेरत निबर पै।
काम हूँ जनावै वल आनि अवलानि ही पै
करत न वार पै नकार गिरिधर पै॥ ८६॥
१७—५—३२

होत चल अचल अचल चल होत अहो
होत जल पाहन पखान जल-खाता है
कहै रतनाकर अनंग अंग धारि नयौ
स्वर-सर साधत न जाकौं जग-त्राता है॥
रहति न रूँधी व्रजवाम चलैं सूधौं धाइ
त्याग्यौ पति पतिनी स्वपूत त्याग्यौ माता है।
संचि संचि मूर्छना प्रपंच पटराग पागि
कान्ह मुख लागि भई वाँसुरी विधाता है॥८७॥
१८—५—३२

फेरि मुख नैननि निवेरि कहा वैठी वीर
रावरौ कटाच्छ महा तीर वृथा कीजै ना।
कहै रतनाकर निहारि ये तिहारे ढंग
कान्हर कैं औंर हूँ उमंग अंग भीजै ना॥
प्रीति-रंग-भूमि-नीति-निपुन नवेलिनि कौ
सखिनि सहेलिनि कौ हास सिर लीजै ना।
आर करि कीजै निचवार नीठि हूँ ना दीठि
रार करि वैरी कौं अनैरी पीठि दीजै ना॥ ८८॥
२०—५—३२
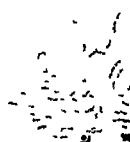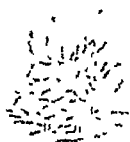
लखि ब्रजराज कौ लड़ैतौ उहिँ ग्वैंड़ अरी
पैंड़ पैंड़ ऐंड़ि पग धारत चलत है।
कहै रतनाकर बिछाई मग आँखिनि के
लाख अभिलाषनि उभारत चलत है॥
सुमन सुवास लाइ रुचिर बनाइ रच्यौ
कंदुक अनंद सौं उछारत चलत है।
करि करि मनौ हाथ मन दिखवैयनि के
परखत पारत सँभारत चलत है॥ ८९॥

२१—५—३२

संग यैं तरैयनि के राका रजनीस चारु
चौहरे अटा पै छटा वलित बिराज्यौ है।
कहै रतनाकर निहारि सो नवेली निज
आनन सौं करन-मिलान-ब्यौंत साज्यौ है॥
संग लै सयानी सखियानि नियरान चली
पग-पग नूपुर-निनाद मग बाज्यौ है।
ज्यौं-ज्यौं मंद-मंद चढ़ी आवति गरूर बढ़ी
त्यौं त्यौं मद-चूर चंद दूरि जात भाज्यौ है॥९०॥

३—६—३२

सकत न नैकुँहूँ सँताप सहि मित्रनि के
होत आप द्रवित गिरीस सुखकारी हैं।
कहै रतनाकर सु थँभत न थाँभौ फेरि
चलत धधाइ भए औढर ढरारी हैं॥

कृपा-छमा-दान-बरदान-सनमान रूप
थाह-हीन प्रचुर प्रवाह होत भारी हैं।
एक गंग-धारी तुम्हैं कहत सबै हैं पर
आप तौ पुरारी किये पंच गंग जारी हैं॥९१॥
६—६—३२

देखि मुगलदल मैं बिवस प्रताप परयौ
आड़े कैलवाड़े कौ सु झाला झूमि आयौ है।
कहै रतनाकर स्वदेस अनुरक्ति आनि
स्वामि-भक्ति ठानि प्रान पानि धरि धायौ है॥
चीरि भीर काढ़यौ ताहि तुरत अलच्छित कै
लच्छ परपच्छिनि कौ आप कौं बनायौ है।
दीन्ही भुजा साथ मेदपाट की धुजा लै हाथ
हेम-छत्र लै कै छेम-छत्र सिर छायौ है॥९२॥
९—६—३२

रानी पृथिराज की निहारति सिँगार-हाट
पारति सु दीठि गथ बिबिध बिसाती पै।
कहै रतनाकर फिरी त्यौं फँसी फंद बीच
लपक्यौ नगीच नीच धरम अराती पै॥
परसत पानि आनवान राजपूती आनि
औचक अचूक घात कीन्ही घूमि घाती पै।
झटकि झटाक कर पटकि धरा पै धरी
काती-नोक गब्बर अकब्बर की छाती पै॥९३॥
१६—६—३२

(१८) दोहावली

भौं चितवनि डोरे वरुनि असि कटार फँद तीर।
कटत फटत बँधत विँधत जिय हिय मन तन बीर ॥ १ ॥

कापै तेरे दृगनि की कही वड़ाई जाइ।
त्रिभुवन जाके मुख बसै सो जिहिँ रह्यौ समाइ ॥ २ ॥

किये लाल जब तैं ललकि बाल-नैन निज ऐन।
बरुनी ओट उसीर की तव तैं सींचत मैन ॥ ३ ॥

छाके नेह निरास की तब लौं प्यास न जाइ।
जब लौं हियौ अघाइ नहिँ दृग-सर-पानिप पाइ ॥ ४ ॥

चित चितवनि कौं दीन्यौ बिन तकरार।
सहल्यौ कौन तगादौ बारंबार ॥ ५ ॥

ऋनी धनी सौं हैं परत यों परिहरत उदोत।
देखत दिनकर दरस ज्यौं चंद मंद-मुख होत ॥ ६ ॥

चंद-मुखिनि के वृंद-बिच निरतत श्री ब्रजचंद।
एते चंद बिलोकि भो चंद चकित-चित मंद ॥ ७ ॥

नभ जल थल नैना करत निसि दिन रहैं अहेर।
खंज मीन मृग कहन के बाज ग्राह अरु सेर ॥ ८ ॥

सौति-फंद ब्रजचंद लखि चंद-गहन मन मानि।
देन चहति जिय-दान तिय तुरत न्हाइ अँसुवानि ॥ ९ ॥

आस-पास मैं परि रह्यौ प्रान-पखेरू पाइ।
हाय करत पंजर गरत परत न तऊ उडाइ ॥ १० ॥

नव नीरद-दामिनि-दुति जुगल-किसोर ।
पेखि मुदित मन नाचत जीवन मोर ॥११॥

ब्रज-जीवन-जीवन सो जीवन मोर ।
ब्रज जीवन जीवन सो जीवन मोर ॥१२॥

पिय पयान की बतियाँ सुनि सखि भोर ।
आँस नहीं दृग आवत जीवन मोर ॥१३॥

जतन परोसी-चैन कौं करिबौ अति सुख देत ।
सुनत कहानी कान ज्यौं नैन-नींदँ के हेत ॥१४॥

ऊँचौ नीचौ ह्वै रहत अगनित लहत उदोत ।
जात सिंधुतल सुक्ति परि मुक्ति स्वाति-जल होत ॥१५॥

संतत पिय प्यारे बसत मो हिय दर्पन माहिं ।
धँसत जात त्यौं त्यौं सखी ज्यौं ही ज्यौं बिलगाहिं ॥१६॥

होत सीस नीचौ निपट नीच-कुसंगति पाइ ।
परत वारि-बिच जाइ ज्यौं काम छाइ दरसाइ ॥१७॥

सुबरन-कनक प्रभाव तैं सुमन-कनक कौ बीस ।
वह महीस कैं सीस यह चढ़त ईस कैं सीस ॥१८॥

दारिद-बाय प्रभाय सौं पीड़ित जाकी देह ।
ताके क्रम निमेस कौं चहत धनेस-सनेह ॥१९॥
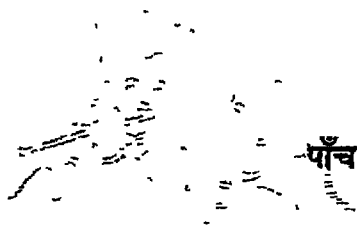
दारिद-दुख सौं जासु हिय होय दीन छत छीन।
साधक ताको व्याधि कौ कहत मृगांक प्रवीन ॥२०॥
मोसे तारौ तौ बदौं तारैं कहा पषान।
बानर हूँ के परस सौं होति सिला जलजान ॥२१॥
बरुनी के नीके बने द्वै पिंजरे कलदार।
फाँसत खंजन-नैन औ फँसत नैन रिझवार ॥२२॥